श्री
शिव पुराण

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में पुराणों को प्रमुख स्थान प्राप्त है और उनमें भी शिव पुराण को सब पुराणों का सिरमौर माना जाता है। यह वह अमृतरूपी पुराण है जो कल्पवृक्ष के समान मानव के सभी मनोरथों को पूर्ण कर देता है। इहलोक और पर-लोक, दोनों में कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों के लिए, यह वेदांत और विज्ञान से परिपूर्ण एक अनु॰पम ग्रन्थ है जो जीव में शिवोऽहम् की भावना को जगाकर उसे शिव बनाने में बड़ी सहायता प्रदान करता है। यह लीजिए, इस अमूल्य ग्रन्थ-रत्न का सर्वप्रथम प्रामाणिक संस्कार, जिसे दिल्ली विश्व-विद्यालय के सुप्रसिद्ध भाषाविद एवं शिक्षा-शास्त्री डॉक्टर रामचन्द्र वर्मा ने अपनी पूर्ण धार्मिक आस्था श्रद्धा एवं आस्तिक भावना के साथ, अत्यन्त विनीत भाव से, धार्मिक जनता को समर्पित किया है।

अनुपम पॉकेट बुक्स के अन्तर्गत अनुभवी व्यवस्थापकों के निदशन में तैयार की गई, देश-विदेश के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों की अत्यन्त सुरुचिपूर्ण पुस्तकें ही प्रकाशित होती हैं।

श्री

शिव पुराण

सम्पादक

डॉ० रामचन्द्र वर्मा

अनुपम पॉकेट बुक्स

श्री शिव पुराण

माहात्म्य वर्णन

शौनक जी ने सर्वसिद्धान्त शिरोमणि तत्त्ववेत्ता सूतजी से प्रार्थना की कि हे महात्मन् ! आप कृपापूर्वक अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ सज्जनों के मन के समग्र विकारों को दूर करने वाला तथा उनके विवेक को जागृत करने वाला सभी पुराणों का सार वताने का कष्ट करें। आप कलि-युग में असुर भाव को प्राप्त दुष्ट चित्त वाले तथा अल्पायु जीवों के सहज और शीघ्र कल्याण का कोई ऐसा सरल उपाय वताने की कृपा करें कि जिससे इन अभागों की आत्मा शुद्ध हो जाय और इन्हें इस जन्म में ही शिवत्व की प्राप्ति हो सके।

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् शिव की महिमा के प्रति अनुरक्त आप सचमुच धन्य हैं। आपकी श्रद्धा को देखते, मैं आपको काल रूपी सर्प के भय से मुक्त करने वाले सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सार-रूप एवं भक्तिवर्द्धक सावन—शिव पुराण—सुनाता हूँ। इस परम पावन पुराण को स्वयं भगवान् शंकर ने सनत्कुमार को सुनाया, सन-त्कुमार से सुनकर महामुनि व्यास जी ने कलियुगी जीवों की कल्याण-कामना से उसका संक्षेप में वर्णन किया है। वही मैं आप लोगों को सुनाता हूँ।

भगवान् शंकर का प्रत्यक्ष रूप यह 'शिव पुराण' चित्तशुद्धि का सर्वोत्तम सावन है। वड़े भाग्यों तथा अनेक जन्मों के पुण्यों से ही बुद्धि-मान् मनुष्यों की इस पुराण में प्रीति होती है। सौ राजसूय तथा सौ अग्निष्टोप यज्ञों से प्राप्त होने वाला फल इस शिव पुराण के अध्ययन -श्रवण से सुलभ हो जाता है। वस्तुत: 'शिव पुराण' के पारायण करने वाले स्वयं रुद्र रूप हो जाते हैं। तभी तो मुनिगण शिव पुराण के वक्ता श्रोता के चरण कमलों की रज को तीर्थरूप मानते हैं। शौनक जी !

प्रकाशक	अनुपम पॉकेट बुक्स कमलानगर, दिल्ली-७
कॉपीराइट	प्रकाशकाधीन
द्वितीय संस्करण	फरवरी १९७९
कलापक्ष	शुक्ल, दिल्ली
मुद्रक	डी० एम० प्रेस गाँधीनगर, दिल्ली-३१

मूल्य : पाँच रुपये

मुक्ति चाहने वाले प्राणी को प्रतिदिन इस पुराण का पठन-पाठन करना चाहिए। कलियुग में दुर्बुद्धि मनुष्यों के हित के लिए शंकर जी ने अमृत रूपी यह पुराण कहा है। अमृत पीने वाला तो स्वयं अमर हो जाता है, परन्तु 'शिव पुराण' की कथा के अमृत को पीने वाला अपने सारे कुल को ही अमर कर देता है।

सूत जी बोले—मुनिवर! इस शिव पुराण में चौवीस हजार श्लोक और सात संहिताएँ—(१) विद्येश्वर संहिता (२) रुद्र संहिता (३) शतरुद्र संहिता (४) कोटिरुद्र संहिता (५) उमा संहिता (६) कलाश संहिता तथा (७) वायवीय संहिता—हैं। सप्त संहिता वाला यह शिव पुराण मोक्षदाता तथा कल्पवृक्ष के समान सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। इस लोक में सुख और परलोक में कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को नित्य प्रति 'शिव पुराण' का पाठ करना चाहिए। कायिक, वाचिक और मानसिक तापों का नाशक यह पुराण ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओं को भी सदा प्रिय है। आत्मज्ञानी पुरुष औढ़रदानी भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिए 'शिव पुराण' का ही आश्रय लेते हैं और इससे सहज ही आत्म-उद्धार कर लेते हैं।

शौनक जी बोले—मुनि सत्तम! इस महापुराण की पुण्य कथा के श्रवण से नष्ट पाप तथा पूत-आत्मा महापुरुषों का इतिहास सुनाने की कृपा करें, जिससे हमारी इस पुराण में प्रीति दृढ़ हो जाए।

सूत जी बोले—हे शौनक जी! दुर्विचार, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, कपट, धूर्त्तता, मिथ्या भाषण, जीवहिंसा, स्वजाति त्याग, व्यभिचार आदि सभी पापों से मुक्ति दिलाने वाला यह पुराण सर्वथा अनुपम है। इस संसार में इस पुराण की तुलना का कोई अन्य ग्रन्थ तथा साधन नहीं। इसके पढ़ने-सुनने से वड़े-से-वड़े पापी भी तर जाते हैं। इस सम्वन्ध में मैं आपको एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ :—

किरातनगर में एक धर्म-कर्म विमुख दरिद्र ब्राह्मण रहता था, जो आचारहीन होने के अतिरिक्त मांस-विक्रय जैसा निकृष्ट कर्म करता था। अधर्म से उसने पर्याप्त धन का संचय कर लिया था। एक दिन वह तालाव में जब स्नान करने गया तो वहाँ उपस्थित शोभावती नाम की सुन्दरी वेश्या को देखकर उस पर मोहित हो गया। ब्राह्मण को अपने प्रति आकृष्ट देखकर उस चतुर वेश्या ने अपने क्रिया-कौशल से उसे अपने वश में कर लिया। अव वह ब्राह्मण वेश्या पर आसक्त होकर

उसके साथ अभक्ष्य भक्षण और अपेय पान ही नहीं करने लगा, अपितु

उस वेश्या का उच्छिष्ट तक भी खाने लगा। ब्राह्मण के माता-पिता और पत्नी ने जब उसे इस दुराचार को हटाने और समझाने की चेष्टा की तो उस दुर्बुद्धि ब्राह्मण ने उन्हें ही मृत्यु का ग्रास बना दिया। अब अपना सारा धन लेकर उस मूर्ख ने वेश्या को ही अर्पित कर दिया। ब्राह्मण के सर्वस्व का अपहरण कर लेने के उपरान्त वह वेश्या उसकी अवहेलना करने लगी।

एक दिन घूमता-फिरता निराश, खिन्न, अभावग्रस्त तथा ज्वर-पीड़ित वह ब्राह्मण अचानक एक शिव मन्दिर में पहुँचा। वहाँ अनेक महात्मा लोग बैठे हुए 'शिव पुराण' का वाचन कर रहे थे। ब्राह्मण ने थोड़ी देर कथा को सुना और फिर घर को चल दिया। कुछ दिनों के उपरान्त वह मर गया, परन्तु इस पुराण की कथा को थोड़ी देर सुनने से ही उसकी वृत्ति शुद्ध हो गई थी।

शौनक जी ! अब इस थोड़ी देर सुनी और भली प्रकार विचारित कथा का क्या फल हुआ, इसे आप सुनिये। उस ब्राह्मण के मर जाने पर जब यमदूत उसके पापों के फलस्वरूप दण्डित करने के लिए उसे बाँध कर मृत्युलोक में ले जाने लगे तो शिवदूतों ने यमदूतों का विरोध किया। शिवदूत उसे कैलाश ले जाना चाहते थे क्योंकि उसने शिव पुराण सुनकर शिव का चिन्तन करते हुए ही प्राण विसर्जन किए थे। यमदूतों ने जब शिवदूतों की बात न मानी तो दोनों में संघर्ष हुआ। कोलाहल सुनकर धर्मराज बाहर आए और अपने ज्ञान से सारे तथ्य को जानकर उन्होंने शिवदूतों का यथोचित आराधन किया और उन्हें उस ब्राह्मण को शिवलोक में ले जाने की अनुमति दे दी।

शौनक जी ! शिव पुराण के सुनने से जीव की बुद्धि शिवमय हो जाती है जिससे उसके उद्धार में तनिक भी सन्देह नहीं रहता। यही कारण है कि योगियों के लिए भी अगम्य शिवलोक उस दुराचारी ब्राह्मण को सुलभ हो गया। अब मैं आपको एक अन्य गुप्त प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ:—

समुद्र के तट पर स्थित देशों के अन्तर्गत वाष्कल नामक एक ग्राम के निवासी स्त्री-पुरुष दुष्ट प्रकृति और पाप-बुद्धि के थे। पुरुष पशु-वृत्ति के और स्त्रियाँ व्यभिचारिणी थी। उस ग्राम में बिन्दुग नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने अपनी कामातुरतावश, अत्यन्त रूपवती भार्या के होते हुए भी, एक सुन्दरी वेश्या को अपना रखा था।

वेश्या में आसक्त वह ब्राह्मण अपनी पत्नी से धीरे-धीरे विमुख होता

गया। कुछ समय तक तो ब्राह्मण की पत्नी, चंचुला काम के वेग को सहन करती रही परन्तु उस युवती के लिए सदा के लिए अपनी इंद्रियों पर नियन्त्रण रखना सम्भव न हुआ। फलतः वह एक जार से रति करने लगी। एक रात्रि को विन्दुग ने अपनी पत्नी को पर पुरुष के साथ रमण करते हुए जब देखा तो वह क्रोध से विक्षिप्त हो उठा। जार पुरुष तो वहाँ से भाग गया और अब विन्दुग अपना सारा क्रोध अपनी पत्नी पर उतारने लगा तथा मुक्कों से उसकी पिटाई करने लगा। चंचुला ने अपने पति से विनयपूर्वक कहा कि जब आप मुझ जैसी पतिव्रता और सुन्दर युवा स्त्री को छोड़कर वेश्यागमन करते हो तो मैं कितनी दुःखी होती हूँ इसका आप अनुमान तो लगाइये कि भला मैं किस प्रकार काम-पीड़ा को अनन्त काल के लिए सहन कर सकती हूँ ? यह सब आप सोच-समझ कर बताइये। पत्नी के वचनों को सुनकर दुर्बुद्धि विन्दुग बोला—प्रिये ! तुम्हारा विश्लेषण सत्य है। तुम निर्भय होकर जार पुरुषों के साथ विहार करो, परन्तु उन्हें रति-सुख देकर उनसे धन कमाओ। उस धन से हम दोनों का बहुत स्वार्थ सिद्ध होगा।

चंचुला ने पति की आज्ञा को स्वीकार किया और दोनों कुकर्मी हो गए। समय आने पर बिन्दुग की मृत्यु हो गई और वह नरक में अनेक दुःख भोग कर पिशाच योनि में उत्पन्न हुआ। चंचुला का भी पर पुरुष संग करते-करते यौवन बीत गया। एक बार वह अचानक भ्रमण करती हुई गोकर्ण क्षेत्र आई और वहाँ उसने मन्दिर में एक पण्डित जी को कथा बाँचते हुए देखा। वहाँ बैठकर वह दत्तचित्त होकर कथा सुनने लगी। उसने कथा में जार पुरुषों में आसक्त स्त्रियों के दुष्परिणाम—नरक भोग—की व्यथाजनक बात ज्यों ही सुनी, त्यों ही वह काँप उठी। कथा की समाप्ति पर, सब लोगों के चले जाने पर वह कथावाचक ब्राह्मण के चरणों में गिर कर बिलखने लगी। ब्राह्मण द्वारा पूछने पर चंचुला ने अपनी सारी करनी कह सुनाई और रो-रो कर अपने उद्धार का उपाय पूछने लगी। ब्राह्मण ने कहा कि जिस शिव पुराण की कथा को सुनकर तुम्हारे चित्त में विवेक की भावना जागृत हुई है, प्रायश्चित्त के रूप में उसी पुराण को सुनने से ही तुम्हारा मोक्ष हो सकता है। जिस प्रकार निर्मल दर्पण में प्रति-विम्ब सही दीखता है, उसी प्रकार शिव पुराण के सुनने से विशुद्ध हुए चित्त में अम्बिका सहित भगवान् शिव का साक्षात्कार हो जाता है।

शिवजी की कथा के श्रवण-मनन तथा निदिध्यासन से चित्तशुद्धि तथा गणेश, कार्त्तिकेय सहित शिव की भक्ति प्राप्त होती है। शंकर का भक्त उनकी कृपा से देव-दुर्लभ मुक्ति भी पा लेता है। अतः हे ब्राह्मण स्त्री ! तुम्हारे कल्याण का एकमात्र उपाय 'शिव पुराण' का श्रवण ही है।

ब्राह्मण के वचन सुनकर, उसके प्रति आभार प्रकट करती हुई चंचुला उससे ही शिवकथा सुनाने का अनुरोध करने लगी। ब्राह्मण ने उस दीन अबला की प्रार्थना को स्वीकार किया। चंचुला ब्राह्मण द्वारा बताई विधि से स्नान करके, जटा-वल्कल धारण करके, शरीर पर भस्म लगा और रुद्राक्ष धारण करके तथा जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा भक्तिपूर्वक शिव पुराण का श्रवण करने लगी। शिव के ध्यान में मग्न होकर ही चंचुला ने शरीर त्याग किया और शिवपुरी में पहुँच कर उसने उमा सहित भगवान् शंकर के साक्षात् दर्शन भी किए। उसकी श्रद्धा-भक्ति को देखते हुए पार्वती ने उसे नित्य के लिए अपना सामीप्य प्रदान किया।

शौनक जी ने सूत जी से निवेदन किया कि वे चंचुला का और आगे का वृत्त सुनाने की कृपा करें। इस पर सूत जी ने कहा कि चंचुला ने अपनी निश्छल भक्ति से भगवती पार्वती का सान्निध्य प्राप्त कर लिया। एक दिन उसने दया करुणा की स्रोतस्विनी भगवती पार्वती से अपने पति के सम्बन्ध में जिज्ञासा की तो भगवती ने उसे बताया कि बिन्दुग नरक की अनेक यातनाएँ भोगने के उपरान्त इस समय पिशाच योनि में पड़ा हुआ कष्टमय जीवन बिता रहा है। यह सुनकर चंचुला खिन्न और उद्विग्न हो उठी। वह भगवती की अनेक प्रकार से स्तुति वन्दना करके उनसे अपने पति के उद्धार की याचना करने लगी। अपने भक्तों को कृतकृत्य करने वाली माता पार्वती ने तुम्बुरु गन्धर्व को बुलाकर उसे विन्ध्याचल पर्वत पर जाकर वहाँ पिशाच योनि में पड़े बिन्दुग को शिव पुराण सुनाने और इससे उसका उद्धार करने का आदेश दिया। माता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए तुम्बुरु विन्ध्याचल पहुँचा और वहाँ उस पिशाच को बलपूर्वक पकड़ कर बिठाते हुए उसे कथा सुनाने लगा। शिवकथा के आयोजन को सुनकर देवता लोग भी वहाँ पहुँच गए। इससे श्रोताओं का वहाँ एक सुन्दर समाज जुट गया। तुम्बरु द्वारा शिवकथा सुनाने पर जहाँ अन्य सभी उपस्थित

सज्जन कृतकृत्य हो गए वहाँ बिन्दुग निष्पाप होकर पिशाच योनि से

मुक्त हो गया। विन्दुग अव निरन्तर शिवजी का गुणगान करने लगा, भगवान् शंकर ने उसकी अचल प्रीति को देखकर उसे अपना गण वना दिया।

सूत जी वोले—हे शौनक महाराज ! इस प्रकार इस शिव पुराण की कथा वड़े से वड़े पापियों का उद्धार करके उन्हें सद्गति प्रदान करने वाली है। अव मैं आपको इस पुराण को सुनने की विधि वताता हूँ, क्योंकि विधिपूर्वक सम्पन्न कार्य अतुल सिद्धिदाता होता है।

सर्वप्रथम सम्पूर्ण शिव पुराण के निर्विघ्न श्रवण के लिए व्राह्मण से शुभ मुहुर्त निकलवाना चाहिए। इसके उपरान्त देश-देशान्तर स्थित अपने वन्धु-वान्धवों को अपने शुभ निश्चय की सूचना देते हुए उन्हें निमन्त्रित करना चाहिए। इसके साथ ही अपने नगर के स्त्री-पुरुषों को भी श्रद्धापूर्वक निमन्त्रण देना चाहिए और आए हुए सभी सज्जनों का यथोचित स्वागत-सत्कार करना चाहिए। शिवालय, तीर्थ अथवा घर में ही सारी व्यवस्था करनी चाहिए। कथास्थल की भूमि का संशोधन कराकर उसे चित्रों से सुसज्जित करना चाहिए। केला-चँदोवा आदि से सुसज्जित एक सुन्दर मण्डप वनाना चाहिए और उसके चारों ओर ध्वजा-पताकाएँ लगानी चाहिए। वक्ता के लिए उपयुक्त स्थान और सुखद आसन की व्यवस्था करनी चाहिए। वक्ता को पूर्वाभिमुख और श्रोता को उत्तराभिमुख होकर वैठना चाहिए। कथावाचक के प्रति उसके आयु, सामाजिक स्थिति और शारीरिक अवस्था के भेद-भाव को छोड़कर आदर भाव रखना चाहिए तथा सदैव उसे श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम भी करना चाहिए। पुराणज्ञ, शुद्ध-बुद्ध तथा शान्तचित व्राह्मण को अपने यजमान के हितसाधन को ही अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते हुए कथा के दिनों में संयम-नियम का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उसे प्रतिदिन सूर्योदय से साढ़े तीन प्रहर तक कथा सुनानी चाहिए। उसके उपरान्त सभी उपस्थित लोगों को मिलकर एक साथ भजन-कीर्त्तन करना चाहिए।

शिवपुराण के वक्ता के पास सहायतार्थ एक पुराणज्ञ व्राह्मण भी रहना चाहिए। कथा में आने वाले विघ्नों के निवारणार्थ विधिपूर्वक गणेश पूजन करना चाहिए। यजमान को कथा अवधि में व्रह्मचर्य तथा शुद्धाचार का पालन अत्यन्त कठोरतापूर्वक करना चाहिए।

कथावाचक व्राह्मण को अपने यजमान को शिव पुराण में साक्षात् महेश्वर की भावना कराते हुए उससे इस पवित्र ग्रन्थ का पूजन कराना

चाहिए और उससे यह प्रार्थना करानी चाहिए कि भगवान् शंकर उस पर प्रसन्न होकर उसे इस ग्रन्थ के मर्म को समझने और निर्विघ्न श्रवण करने की क्षमता प्रदान करें। यजमान को पाँच व्राह्मण पृथक् से नियत करने चाहिएँ जो पञ्चाक्षार शिव मन्त्र का निरन्तर जाप करते रहें। यजमान का यह भी कर्त्तव्य है कि उसे ग्रन्थ समाप्ति पर वक्ता तथा अन्य व्राह्मणों को अन्न-वस्त्र तथा दक्षिणादि से सन्तुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार शिव पुराण का विधिपूर्वक श्रवण निस्सन्देह इहलौकिक सुख और पारलौकिक कल्याण को देने वाला है।

शिव पुराण की कथाश्रवण में असावधानता तथा प्रमाद आदि के दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए सूत जी कहते हैं कि सिर पर पगड़ी धारण करके (अभिमानी व्यक्ति) कथा श्रवण करने वाले स्वयं तथा उनकी सन्तति कुलकंलक वनते हैं। कथा सुनते समय पान चवाने वाले विष्टायोगी वनते हैं। कथावाचक से ऊँचे स्थान पर वैठकर कथा सुनने वाले अनेक नरक भोगकर काक योनि में, वक्ता को प्रणाम किए विना कथा श्रवण करने वाले जोंक की योनि में, असावधान मन से अथवा ऊँघते हुए कथा सुनने वाले कूकर योनि में तथा कथा में वित-ण्डावाद करने वाले गर्दभ योनि में जन्म लेकर नाना दुःख भोगते हैं।

सूत जी वोले—शौनक जी ! यह 'शिव पुराण' पुराणों में श्रेष्ठ और भगवान् शंकर को अत्यन्त प्रिय है। यह संसार के सभी पाप-ताप-शापों, विघ्न-वाधाओं तथा दुःख-शोक-कष्टों से निवृत्ति दिलाने वाला है। भगवान् भूतभावन विश्वनाथ की पुण्य कथा का श्रवण करने वाले संसार-सागर से पार हो जाते हैं तथा अन्त में सम्पूर्ण गुणों के भेद से अपनी महिमा में ही नित्य और अदृश्य, जगत् के भीतर और वाहर प्रकाशित, मन में भीतर और वाहर वाणी, मन और वृत्तिरूप अनन्ता-नन्द, सान्द्र घन, परम शिव में समाकर शिवरूप हो जाते हैं।

इस प्रकार यह 'शिवपुराण' परम पावन, अति गुप्त तथा निश्चित सिद्धि दाता ग्रन्थ है। लोक कल्याण की भावना से ही तुम्हारे अनुरोध पर मैं तुम्हें यह दिव्य ज्ञान सुनाता हू।

विद्येश्वर संहिता

एक समय प्रयाग तीर्थ में शौनकादि ऋषियों ने एक विराट् यज्ञ का आयोजन किया। उस आयोजन में सूत जी के पधारने पर ऋषियों ने उनसे प्रार्थना की कि कलियुग में सभी प्राणी आचारहीन, पथभ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत होकर पाप-ताप से पीड़ित होंगे, वर्णव्यवस्था विच्छन्न हो जाएगी, भोगलिप्सा तथा धनसंचय जीवन के लक्ष्य वन जाएँगे। सदाचार, प्रदर्शन और आडम्बर की वस्तु वन कर रह जाएँगे, कपट और छल सम्मानित होंगे। इस स्थिति में कलियुगी प्राणी किस प्रकार सद्गति प्राप्त करेंगे। इस विषय में सर्वसम्मत और सरलतम कोई ऐसी युक्ति वताने की कृपा करें कि जिसका आश्रय लेकर कलियुगी अपने कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

सूत जी वोले—मुनीश्वरो! आप लोगों ने लोकहित की भावना से उत्तम प्रश्न किया है। 'शिव पुराण' कलि के पापों का नाशक, सव ग्रन्थों में उत्तम तथा वेदान्तसार का भी सर्वस्व है। इसके पढ़ने सुनने से मनुष्य सर्वोत्तम शिवगति को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार का पूर्ण विनाश हो जाता है, उसी प्रकार इस पुराण के पारायण से शास्त्रों के विवाद, अनेक प्रकार के उत्पात, देवताओं की मान्यता सम्वन्धी मतभेद आदि सव नाम शेष हो जाते हैं। वेदान्त और विज्ञान से परिपूर्ण, सव पुराणों का तिलकरूप यह 'शिव पुराण' जीव में 'शिवोऽहम्' की भावना को जगाकर उसे शिव वना देता है।

ऋषियों के अनुरोध पर सूत जी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के वर्णनों से समृद्ध समस्त वेदों के सार शिव पुराण की कथा उन्हें सुनाने लने। सूत जी वोले—इस कल्प के प्रारम्भ में जव ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना में प्रवृत्त थे, उस समय षट्कुलीन मुनियों में मतभेद उत्पन्न

हो गया कि कौन सा पुराण सर्वश्रेष्ठ, कौन परात्पर एवं सर्वाधिक सेवन करने योग्य देव है। आपस में विचार-विमर्श के उपरान्त भी एकमत न हो सकने पर इस विवाद के निर्णय के लिए ऋषि लोग ब्रह्मा जी के पास गए। ब्रह्मा जी ने कहा—महादेव ही आदि देव और सर्वज्ञ जगदीश्वर हैं। मन, वाणी से अप्राप्य भगवान् शंकर सभी देवताओं की अपेक्षा शीघ्र प्रसन्न होने वाले हैं। रुद्र,-हरिहर आदि देवता भी उनके दर्शनों के इच्छुक रहते हैं। भगवान् शंकर परम भक्ति से ही दर्शन देते हैं। हे ऋषियो ! महादेव जी का प्रसाद पाने के लिए आप लोग एक सहस्र वर्ष का सुदीर्घ यज्ञ करो। इससे भगवान् शिव की कृपा से साध्य-साधन वेदोक्त विद्या का सार आप लोगों को प्राप्त होगा।

ऋषियों के अनुरोध पर ब्रह्मा जी ने बताया कि शिव प्राप्ति ही साध्य है और शिव की सेवा करना ही साधन है। निःस्पृह भाव से सेवा करने वाला साधक है। इस प्रकार का साधक जब वेदोक्त विधि से शिव की आराधना करता है तो उसे परमेश्वर पद की प्राप्ति हो जाती है। जो जैसी भक्ति करता है, वह वैसा ही सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य मुक्तिरूप फल प्राप्त करता है। स्वयं भगवान् शंकर द्वारा इस भक्ति के निर्दिष्ट साधनों का संक्षेप इस प्रकार है—

(क) कानों से शिव की कथादि का श्रवण करना।
(ख) वाणी से शिव की महिमा का कीर्तन करना।
(ग) मन से शिव की ईश्वरता का मनन करना।

इस प्रकार ये तीन—श्रवण, कीर्तन और मनन—ही मुक्ति के असन्दिग्ध और अमोघ साधन हैं। साध्य की प्राप्ति के लिए साधन को दृढ़तापूर्वक अपनाना आवश्यक होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यक्ष का विश्वास सहज और सरल रूप में होता है अतः बुद्धिमान साधक को प्रथम गुरु मुख से श्रवण करके कीर्तन और मनन में प्रवृत्त होना और शिवयोग प्राप्त करना चाहिए। उस साधन के प्रारम्भ में साधक को थोड़ा क्लेश भले ही प्रतीत हो, परन्तु बाद में उसे अनुपम और असीम आनन्द-मंगल की ही प्राप्ति होती है।

मुनियों के अनुरोध करने पर श्रवण मननादि का विश्लेषण करते हुए सूत जी कहते हैं :—

—स्थिर बुद्धि तथा दृढ़वृत्ति से भगवान् शंकर के दिव्य गुणों और उनकी महिमा को रुचिपूर्वक कानों से सुनना और चित्त में धारण करना श्रवण है।

—श्रद्धाभक्तिपूर्वक श्री महादेव जी के स्वरूप का ध्यान करते हुए उनके नामों का बारम्बार जाप करना कीर्त्तन है।

—ईश्वर के रूप, गुण, नाम और विलासों में निरन्तर रुचि रखते हुए अपने मन को उनमें स्थिर करना तथा उसे श्रद्धापूर्वक उनके सम्मुख रखना मनन है।

ये तीनों—श्रवण-कीर्त्तन-मनन—मुक्ति के अतिसरल उपाय हैं। भगवान् शंकर के रूप गुणों का श्रवण, कीर्त्तन और मनन करने वाला संसार-सागर से तर जाता है।

सूत जी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो ! अब मैं आप लोगों को इस साधन की महिमा से सम्बन्धित एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। एक बार सरस्वती नदी के तट पर तपस्या करते हुए भगवान् वेदव्यास जी के पास सनत्कुमार जी आकर पूछने लगे – हे ऋषिवर ! शिवजी के प्रत्यक्षत: सबके सहायक होने पर आप किसलिए यह तप कर रहे हैं ? व्यास जी ने उत्तर दिया कि वे मुक्ति के लिए तप कर रहे हैं। इस पर सनत्कुमार जी बोले कि एक समय मुझे भी ऐसा ही भ्रम हो गया था कि तप से मुक्ति होती है, अत: मैं मन्दराचल पर्वत पर तप करने लगा था, परन्तु नन्दिकेश्वर द्वारा मुझे इस तथ्यपूर्ण तत्त्व का ज्ञान हुआ कि शिवजी की महिमा के श्रवण कीर्त्तन-मनन से ही मुक्ति प्राप्त होती है। इससे मेरा भ्रम जाता रहा और मैंने सही मार्ग का अनुसरण किया। सनत्कुमार के इस दिव्य ज्ञान से व्यास जी का मार्ग प्रदर्शन हुआ और सही मार्ग पर चलने से उन्हें सिद्धि सुलभ हो गई।

ऋषियों ने पूछा—महर्षे ! श्रवण, कीर्त्तन, मनन में आसक्त प्राणी के लिए उसकी मुक्ति का क्या उपाय है ? इस पर सूत जी बोले—मुक्ति प्राप्ति के निर्दिष्ट तीन उपायों—श्रवण, कीर्त्तन और मनन—से अशक्त जीव शिवजी के लिंगेश्वर की स्थापना करके नित्य उसकी पूजा करने से संसार-सागर से तर जाता है। शिवलिंग में साक्षात् शिव का निवास है। शिवलिंग निराकार शंकर का साकार रूप है। इसकी पूजा से शिवपूजा के अतिरिक्त अन्य देवताओं की पूजा का फल भी प्राप्त हो जाता है। इस विश्वसंरक्षक लिंगेश्वर की उत्पत्ति के विषय में नन्दिकेश्वर ने सनत्कुमार को जो इतिहास बताया था, वह इस प्रकार से है :—

एक बार ब्रह्मा जी विष्णु लोक में जाकर विष्णु का अपमान करते हुए उन्हें अपना पुत्र बताकर अपना अनुवर्ती होने का आदेश देने लगे।

इस पर विष्णु जी अपने क्रोध को दवाकर ब्रह्मा जी को ही अपनी नाभिकमल से उत्पन्न अपना पुत्र बताने लगे और अपने को सृष्टि का पालक होने के नाते ब्रह्मा जी का भी संरक्षक घोषित करने लगे। व्यंग्य-पूर्वक विष्णु जी ने ब्रह्मा जी से उनके मुख के टेढ़े होने का कारण भी पूछा। ब्रह्मा जी ने अपने को विश्व का पितामह बताते हुए विष्णु पर तथ्य को स्वीकार न करने का आरोप लगाया। उन दोनों के वाचिक विवाद ने सशस्त्र संघर्ष का रूप ले लिया। देवता लोग प्रथम तो रस लेते रहे, परन्तु जब उन दोनों ने एक-दूसरे पर माहेश्वर और पाशु-पात अस्त्रों से प्रहार करना आरम्भ कर दिया तो देवता उन दोनों को अराजकता फैलाने वाले कहने लगे। देवगण भगवान् शंकर को सृष्टि का व्यवस्थापक मानते हुए उनकी शरण में उपस्थित हुए और उनके आगे नतमस्तक होकर उनसे अनुनय-विनय करने लगे। देव-ताओं के अनुरोध पर शिवजी भी अपने गणों सहित वहाँ पधारे और आकाशमण्डल में बादलों में छिप कर ब्रह्मा-विष्णु का युद्ध देखने लगे। उन दोनों के प्रलयंकारी युद्ध को रोकने के लिए भगवान् शंकर स्तम्भ का रूप धारण कर दोनों के मध्य आकर खड़े हो गए। उस ज्योति-स्वरूप स्तम्भ को देखकर दोनों ने युद्ध समाप्त कर दिया और उसके सम्बन्ध में परस्पर विचार करने लगे। दोनों ने उसके रहस्य को जानने का निश्चय किया। विष्णु शूकर का रूप धारण कर उसके मूल को देखने के लिए नीचे चले गए और ब्रह्मा हंस का रूप धारण कर उसके अन्त को देखने के लिए ऊपर चले गए। दोनों को प्रयत्न करने पर भी इस रहस्य का पता न चल सका। ब्रह्मा ने आकाश में केतकी का फूल देखा और उसे लाकर विष्णु से बोले कि मैंने स्तम्भ का अन्त पा लिया है। विष्णु ने ब्रह्मा के चरण पकड़ लिये, परन्तु शिवजी को ब्रह्मा का छल सहन न हुआ और वे तत्क्षण ही प्रकट हो गए। विष्णु ने आविर्भूत शिवजी का चरण स्पर्श किया। तब शिवजी ने विष्णु की सत्यवादिता की प्रशंसा करते हुए उन्हें अपनी समानता प्रदान करने का वरदान दिया।

इधर मिथ्या भाषण के लिए ब्रह्मा जी को दण्ड देने के लिए ज्यों ही शंकर जी के मन में क्रोध जागृत हुआ त्यों ही उनकी भौंहों से भैरव की उत्पत्ति हुई जिसने शिवजी के आदेश से ब्रह्मा जी का पाँचवा सिर काट दिया। जब भैरव ब्रह्मा जी के अन्य सिरों को भी काटने को प्रस्तुत हुआ तो ब्रह्मा जी शिवजी के चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाने

लगे। इधर विष्णु जी भी शिवजी से शान्त होने और ब्रह्मा को क्षमा करने की प्रार्थना करने लगे। तव आशुतोष भगवान् ने प्रसन्न होकर भैरव को विरत होने का आदेश दिया और ब्रह्मा को सत्कार, स्थान और उत्सव से विहीन कर दिया। ब्रह्मा के पश्चात्ताप करने और गिड़-गिड़ाने पर शिवजी ने उन्हें गणों का आचार्य वना दिया। केतकी पुष्प को भी शिवजी ने अपनी पूजा के अधिकार क्षेत्र से वञ्चित कर दिया। बाद में उसकी अनुनय-विनय पर परितुष्ट होकर शिवजी ने अपने मण्डप की रचना का शिरोमणि पुष्प होने का वरदान देकर उसे कृतकृत्य कर दिया।

इसके उपरान्त ब्रह्मा और विष्णु ने विविध वस्तुएँ समर्पित करके भगवान् शंकर की षोड़शोपचार से पूजा की। शंकर भगवान् ने उन दोनों को समझाया कि वास्तव में वे स्वयं ही ईश्वर हैं। अज्ञान और भ्रमवश आप दोनों ने अपने आपको ईश्वर मान लिया था और निर-र्थक दोनों में संघर्ष छिड़ गया था। अव इस मिथ्या कल्पना को छोड़-कर आप दोनों मुझ में ही ब्रह्मदृष्टि करो और मेरी इस पिण्डी (लिंग) को मेरा निराकार-साकार रूप मानकर इसकी पूजा करो। आज का दिन मेरे नाम से शिवरात्रि का दिन कहलाएगा और इस दिन उमा-सहित मेरी (लिंग स्वरूप में) पूजा करने वाला मुझे कार्तिकेय से भी अधिक प्रिय होगा।

ब्रह्मा और विष्णु ने भगवान् शंकर से सर्गादि पंचकृत्य वताने की प्रार्थना की। शिवजी बोले कि मेरे सारे कार्य ज्ञानगम्य हैं और पाँचों कृत्य जगत् में नित्य सिद्ध हैं, वे इस प्रकार हैं :—

१. सृष्टि अथवा सर्ग	संसार का आरम्भ
२. स्थिति	संसार का भरण-पोषण और व्यवस्थापन
३. संहार	संसार का विनाश
४. तिरोभाव	संसार का परिवर्तन अथवा उत्क्रम
५. अनुग्रह	सर्ग से मुक्ति

इन पाँच कृत्यों से मैं ही संसार का संचालन करता हूँ। इन पाँच कृत्यों के संचालन के लिए मेरे पाँच मुख (चार दिशाओं में चार और उन चारों के मध्य पञ्चम है। आप दोनों ने अपनी तपस्या से प्रथम दो कृत्यों—सर्ग और स्थिति को ही प्राप्त किया है। रुद्र और महेश ने भी संहार और तिरोभाव कृत्य प्राप्त किए हैं। अनुग्रह नामक पंचम

कृत्य कोई भी नहीं पा सका है। आप दोनों की उस भूल से और आप में व्याप्त मूढ़ता के कारण सृष्टि की स्थिति के लिए रूप, यश, कृत्य, वाहन तथा आयुधादि का मुझे अपने योग्य संग्रह करना पड़ा है। आप दोनों भी यदि उस अनुग्रह को प्राप्त करना चाहते हैं तो ओंकार द्वारा मेरा पूजन करो। ओंकार मेरा वाच्य है और मैं उसका वाचक हूँ। ओंकार मन्त्र से लिंग का और पञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) से मूर्ति का पूजन करने से मेरा अनुग्रह सुलभ हो जाता है। ब्रह्मा तथा विष्णु ने इस दिव्योपदेश के लिए शिवजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। उन दोनों से पूजित होकर शिवजी अन्तर्हित हो गए।

ऋषियों ने पूछा कि शिवलिंग की स्थापना कहाँ, कब और किस प्रकार करनी चाहिए। सूत जी बोले—हे ऋषियो, गंगा आदि पवित्र नदी के तट पर अथवा जहाँ कहीं भी सुविधा हो, शिवलिंग की स्थापना की जा सकती है—इस सम्बन्ध में न तो स्थान का कोई बन्धन है और न ही समय का। मिट्टी, पत्थर और लोहा आदि के साँचे से इन्हीं धातुओं का बारह अंगुल का लिंग उत्तम होता है। पिसी हुई मिट्टी में गोबर मिला कर अथवा कनेर के फूल, अनेक फल, गुड़ नवनीत, भस्म, अन्नादि यथोपलब्ध वस्तुओं से लिंग की पूजा करनी चाहिए। अँगूठे में भी शिव पूजा की जा सकती है, 'ओम् नमः शिवाय' मन्त्र से शिवलिंग की पूजा करते समय ब्राह्मण को ओम् नमः शिवाय से पहले तथा अन्य वर्णों को नमः शिवाय के अन्त में ओम् लगाना चाहिए। शिवलिंग के चारों ओर चार हजार हाथ की दूरी का वर्ग-क्षेत्र शिवक्षेत्र और उस क्षेत्र के कूप, वापी आदि शिवगंगा कहलाते है। शिवक्षेत्र में निवास बहुत ही पुण्यदायक होता है।

सूत जी ने कहा कि भारतवर्ष में गंगा, सरस्वती आदि कई पुण्य-सलिला नदियों के तटों पर, वनों में, पर्वतों में अनेक ऐसे शिवक्षेत्र हैं, जहाँ निवास करने और शिवलिंग की आराधना करने से सहज में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूत जी ने सावधान करते हुए कहा कि शिवक्षेत्र में किया गया पाप वज्र की तरह दृढ़ हो जाता है और बहुत बड़े प्रायश्चित्त से कहीं उसका क्षय होता है। अतः इन पुण्यक्षेत्रों में भूलकर भी पाप नहीं करना चाहिए। पुण्य-पाप के तीन चक्र हैं—बीज, बुद्धि और भोग। ज्ञान द्वारा इन तीनों को बढ़ाया-घटाया जा सकता है परन्तु इस प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता ही क्या है? उत्तम तो यही है कि साधक न कोई पाप करे और न ही फिर उसे

उसके शमन का उपाय करना पड़े। इस प्रकार शिवभूमि में निष्पाप जीवन सच्चे सुख का आधार है।

ऋषि बोले—हे सूत जी ! अब आप हमें सदाचार का स्वरूप समझाने की कृपा करें, जिससे हमें स्वर्ग-नरक के कारणभूत धर्मअधर्म का ज्ञान हो सके। सूत जी बोले—हे ऋषियो ! सदाचारयुक्त ब्राह्मण ही सच्चे अर्थों में ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है। सदाचार का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—सदाचार को अपनाने का इच्छुक जीव उषाकाल में जाग कर उठने से पूर्व पूर्वाभिमुख होकर धर्म तथा अर्थ के प्रदाता देवों का स्मरण करे। उसके पश्चात् शय्या छोड़कर बायें हाथ से लिंग को और दायें हाथ से मुख को ढक कर मल-मूत्र का त्याग करे। फिर हाथ-पैरों को शुद्ध कर कुल्ला करे तथा पत्ता-लकड़ी आदि से दन्तधावन करे। उसके पश्चात् वापी, कूप, सरोवर आदि में स्नान करके पितृ-तर्पण करे। तदनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण करके भस्म का त्रिपुण्ड मस्तक पर लगाए। उसके उपरान्त मठ, देवालय अथवा घर में ही नियत स्नान पर आसन पर आसीन होकर एकाग्रचित्त से प्रणव-सहित गायत्री मन्त्र का जाप करे। ब्रह्मा, विष्णु और जीवात्मा पर-मेश्वर को ब्रह्मबुद्धि से एक कर 'सोऽहं' भावना से जप करे। इस देवपूजा के उपरान्त अपने व्यवसाय में प्रवृत्त हो तथा धर्मपूर्वक धन का उपार्जन करके परिवार का भरण-पोषण करे।

धन द्वारा किया जाने वाला कार्य—यज्ञ-यागादि, दान, मन्दिर-वापी-कूप आदि का निर्माण द्रव्यधर्म कहलाता है और देह द्वारा किया जाने वाला कार्य—तीर्थ-स्थान, तप-पूजा तथा देव-दर्शन आदि देह-धर्म कहलाता है। द्रव्यधर्म से धनवृद्धि तथा देहधर्म से दिव्यरूप की प्राप्ति होती है। इन दोनों धर्मों को निष्काम भाव से करने से अन्तः-करण की शुद्धि होती है और ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

सूत जी कहते हैं—ऋषियो ! सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में तप से, द्वापर में भजन-योग से ज्ञान की प्राप्ति होती थी परन्तु इस कलि-युग में प्रतिमा-पूजन से ही ज्ञान की प्राप्ति सुलभ है। अतः तत्त्वज्ञान के इच्छुक प्राणी को देहधर्म के रूप भगवान् शंकर की प्रतिमा के पूजन में मन लगाना चाहिए। इस प्रकार जहाँ सत्ययुग, त्रेता आदि में तप-ध्यान योग आदि की प्रतिष्ठा थी, वहाँ कलियुग में द्रव्यधर्म ही प्रशंसनीय है। न्यायपूर्वक अर्जित धन को पुण्य कार्यों में व्यय करने से कलियुग में धर्मलाभ होता है। इस प्रकार प्राप्त धन के तीन भाग

—धर्म, वृद्धि तथा नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म—करने चाहिएँ। एक भाग को धर्म कार्यों में, एक भाग को व्यापार वृद्धि में और एक भाग को भवन निर्माण तथा विवाहादि उत्सव-समारोहों में खर्च करना चाहिए। कृषि से उत्पन्न धन का दशम भाग और व्यापार में उत्पन्न धन का षष्ठ भाग दान न करने वाला सदाचार का घातक होता है। इसके अतिरिक्त दूसरों में दोष-दृष्टि न करना, याचक को निराश न करना, प्रातः-सायं अग्निहोत्र करना तथा गुरु और ब्रह्म का पूजन करना सदाचार के ही अंग हैं।

ऋषि बोले—हे भगवन्! अब आप हमें क्रमशः अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्ति का स्वरूप समझाने की कृपा करें। सूत जी बोले—ये पंच महायज्ञ बड़े ही पुण्यस्वरूप तथा शुभ फलदायक हैं। अब मैं आप लोगों को इनका स्वरूप समझाता हूँ।

अग्नि में द्रव्ययुक्त हवन करना **अग्नियज्ञ** कहलाता है। इस यज्ञ के कई रूप हैं—समिधा द्वारा हवन करना, आत्मा में ही अग्नि को आरोपित करना आदि। सायंकल की अग्नि-आहुति से सम्पत्ति और प्रातःकाल की अग्नि-आहुति से आयु वृद्धि होती है।

इन्द्रादिक देवताओं की तृप्ति के लिए अग्नि में जो आहुति दी जाती है, वह अग्नियज्ञ **देवयज्ञ** कहलाता है। नियमपूर्वक वेद-वेदांगों का अध्ययन **ब्रह्मयज्ञ** कहलाता है। वेदपाठी तत्त्वज्ञ गुरु को अन्न, वस्त्र, धन, धान्यादि से सन्तुष्ट करना **गुरुपूजा** कहलाती है।

नियमपालन करते हुए धर्माचरण आत्मारूप ब्रह्म की तुष्टि है।

एक अन्य आदर्श की चर्चा करते हुए सूत जी कहते हैं कि आदि सृष्टि में सर्वज्ञ, करुणाकर भगवान् महादेव ने लोक कल्याण के लिए प्रथम आदित्यवार तथा बाद में शेष अन्य छः वारों की रचना की। उन्होंने प्रत्येक दिन का देवता और उसकी पूजा का विशेष फल नियत किया। आरोग्य, सम्पत्ति, पुष्टि, आयु, व्याधिनाश आदि के इच्छुक जीव इन वारों में उन देवों की उपासना करते हैं और उस उपासना का फल उन देवों के माध्यम अथवा रूप से भगवान् शिव से ही प्राप्त करते हैं। जिस देवता को प्रसन्न करना हो (१) उसके स्वरूप का ध्यान, (२) उसी के मन्त्र का उच्चारण, (३) उसी का होम, (४) उसी के नाम पर दान और (५) उसी के नाम का जप, पाँच प्रकार की पूजा करनी चाहिए। वारों के देवों और उनकी पूजा के फल का विवरण इस प्रकार है—

वार	देवता	फल	पूजाविधि
१. आदित्यवार	शंकर	रोगनिवृत्ति तथा पापशान्ति	प्रतिमा पूजन, ब्राह्मणों को भोजन।
२. सोमवार	लक्ष्मी	धनप्राप्ति	स्वादिष्ट पदार्थों से ब्राह्मण भोजन।
३. मंगलवार	काली	रोगशान्ति	उड़द, मूँग आदि दालों का दान और ब्राह्मण भोजन।
४. वुधवार	विष्णु	पुत्र, मित्र, स्त्री आदि की पुष्टि	दधि, अन्न से विष्णु पूजा।
५. वृहस्पतिवार	गुरु	दीर्घायु	वस्त्र, यज्ञोपवीत, घृत, दुग्ध आदि से गुरु को सन्तुष्ट करना।
६. शुक्रवार	उशना	भोगप्राप्ति	षट्रस पदार्थों से देवता और ब्राह्मण की पूजा।
७. शनिवार		स्त्रीप्राप्ति	तिल का होम, दान और भोजन।

इन-इन दिनों को उन दिनों के देवों की विधिपूर्वक पूजा करने से शंकर भगवान् यथानिरूपित फल प्रदान करते हैं। ब्राह्मणों को मन्त्र-पूर्वक और शूद्रों को तन्त्रविधि से पूजा करनी चाहिए।

ऋषियों के अनुरोध पर उन्हें **पूजा के योग्य देशकाल** बताते हुए सूत जी कहते हैं—देवयज्ञादि कर्मों से शुद्ध घर बराबर फल देने वाला होता है। घर से दसगुणा गोष्ठ, गोष्ठ से दसगुणा तुलसी व पीपल के नीचे का स्थल, उससे दसगुणा मन्दिर, मन्दिर से दसगुणा गंगा, कावेरी, नर्मदा आदि तीर्थ, उससे दसगुणा समुद्र तट और उससे दसगुणा फल पर्वत शिखर पर पूजन करने से होता है। वस्तुत: सुरम्य और एकान्त स्थल पर पूजा करने से चित्त एकाग्र हो जाता है और इससे थोड़े में बहुत सिद्धि मिल जाती है। इस दृष्टि से जो स्थान जितना अधिक सुन्दर, पवित्र और एकान्त तथा शान्त वातावरण वाला होगा, वह उतना ही अधिक फलप्रद होगा। इस रूप में जहाँ मन रहता हो, वह स्थान सर्वाधिक फलदायी है।

सत्ययुग में यज्ञ-दानादि से पूर्ण फल की, द्वापर में आधी और त्रेता में एक तिहाई फल की प्राप्ति होती थी। कलियुग में यह मात्रा एक चौथाई रह गई और अब आधे से अधिक कलियुग बीतने पर इस मात्रा में और भी कमी आ गई है। इतना होने पर भी शुद्ध हृदय से किया गया पूजन बराबर फल देता है। सामान्य दिन की अपेक्षा रवि संक्रान्ति के दिन किया गया पूजन उससे दसगुणा, तुला और मेष संक्रान्ति के दिन रवि संक्रान्ति से दसगुणा, चन्द्रग्रहण में उससे दस-गुणा और सूर्यग्रहण में उससे दसगुणा अधिक फलदायक है। सूर्य-ग्रहण उत्तम पर्वकाल है और इस समय जपादि करना तथा तपोनिष्ठ ज्ञानी योगियों की पूजा करना पापनाशक तथा पुण्यप्रद है।

पात्र को दान देना अभीष्टदायक होता है। माँगने पर दिए गए दान का आधा फल, सेवकादि को दिए गए दान का चौथाई फल और ब्राह्मण को दान देने का दसगुणा फल होता है। जाति के ब्राह्मण, कर्म से वेदपाठी तथा गायत्री के जाप करने वाले को दान देने से तो वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। शिवभक्त को दान देने से भगवान् शंकर का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ईश्वरार्पण बुद्धि से किया गया दान सब मनोरथों को पूरा करने वाला, धर्मबुद्धि उत्पन्न करने वाला तथा ज्ञान-सिद्धि देने वाला होता है।

ऋषि बोले—हे महात्मन्! मनुष्यों के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण

करने वाले शिवजी की पार्थिव पूजा की विधि वताने की कृपा कीजिए। सूत जी ने ऋषियों की जिज्ञासा की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा कि मैं आप लोगों को अकाल मृत्यु को दूर करने वाला, धन-धान्य, स्त्री-पुत्रादि की प्राप्ति कराने वाला तथा अत्यन्त पुण्य प्रदान करने वाला विधान वताता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनें:—नदी आदि की मिट्टी को दूध से गीला कर अङ्ग-प्रत्यंग सहित गणपति, सूर्य, विष्णु, पार्वती किसी भी अभीष्ट देवता की मूर्त्ति अथवा शिवलिंग वनाकर षोडशोपचार से उसकी पूजा करनी चाहिए। मनुष्य द्वारा निर्मित शिवलिंग पर एक सेर, देवताओं द्वारा स्थापित लिंग पर तीन सेर तथा स्वयं प्रकट हुए लिंग पर पाँच सेर अन्न का नैवेद्य अर्पण करना चाहिए। लिंग का प्रमाण वारह अंगुल चौड़ा और पचीस अंगुल लम्वा है। लिंगपूजा महापूजा कहलाती है। शिवलिंग को अभिषेक कराने से अंत्यशुद्धि, उस पर गन्ध चढ़ाने से पुंण्यप्राप्ति, नैवेद्य चढ़ाने से आयुवृद्धि और मनः स्तृप्ति तथा धूप आघ्रापन से धनप्राप्ति होती है। दीप दर्शाने से ज्ञान और ताम्वूल अर्पण करने से भोग तथा नमस्कार और जप आदि से भोग और मोक्ष सहित सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं।

देवताओं के पूजन का समय विशेष वताते हुए सूत जी कहते हैं:—श्रावण-भादों के शुक्लपक्ष में शुक्रवार चतुर्थी के दिन गणेश पूजा, श्रावणमास रविवार सप्तमी तिथि के दिन सूर्यपूजा, ज्येष्ठ तथा भाद्रपद मास में द्वादशी वुधवार को विष्णु पूजा, अगहन नवमी तिथि सोमवार के दिन दुर्गा पूजा, कार्तिकमास कृत्तिका नक्षत्र सोमवार को कार्त्तिकेय पूजा और वारहों महीनों सभी तिथियों व सभी दिनों शिव पूजा का विधान है।

'योनि' और 'लिंग' इन दोनों स्वरूपों के शिवजी में समाविष्ट होने के कारण शिवजी जगत् के जन्मनिरूपक हैं और इस नाते शिव पूजन ही जन्म की निवृत्ति का आधार है। यह सारा संसार विन्दु नादात्मक है। शक्ति का नाम विन्दु और शिव का नाम नाद है। इन दोनों—विन्दु और नाद—का नाम ही शिवलिंग है। देवी रूप माता विन्दु और शिव-रूप पिता नाद की पूजा करने से सन्तान को निश्चय ही परमानन्द की प्राप्ति होती है। पुरुष और प्रकृति के समान ही शिवलिंग भी जीव के जन्म का कारण है। माया से जन्म और जन्म से जीर्ण होने के कारण ही जीव की जीवसंज्ञा है अतः जन्म के वन्धन से मुक्ति के लिए शिवलिंग की पूजा करनी उचित है। आदि-

त्यवार के दिन पञ्चगव्य—गोवर, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोघृत और मधु —द्वारा शिवलिंग को स्नान कराकर फिर उसे दुग्धादि से स्नान करावे। इसके उपरान्त नैवेद्य अर्पण कर प्रणवपूर्वक महालिंग की पूजा करने से पुनर्जन्म नहीं होता।

ऋषियों के पूछने पर षड्लिंग—प्रणव और पञ्चाक्षरी शिव-मन्त्र (ओं नमः शिवाय)—का माहात्म्य उन्हें बताते हुए सूतजी कहते हैं :—प्रणव के तीन अक्षरों का अर्थ—प्र→प्रपंच, न→निषेधात्मक, व→तुममें (त्वपि)—तुम में कुछ प्रपञ्च नहीं—है। यह प्रणव माया से अतीत होने के कारण सर्वदा नवीन है। यह प्रणव अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नादसहित तथा शुद्ध, काल, कला से युक्त है। यही शिवशक्ति का एकत्व है। श्रद्धापूर्वक इस प्रणव-सहित पञ्चाक्षरी मन्त्र के जाप से आयु, विद्या, यश तथा बल की वृद्धि होती है। प्रणवयुत यह पञ्चाक्षरी शिवस्वरूप है। इस मन्त्र के जाप सहित शिवशक्तिरूप शिवलिंग की पूजा करने वाला शिवरूप होकर शिव को प्राप्त होता है।

सूतजी बोले—ऋषि श्रेष्ठो ! प्रकृति के आठ बन्धनों—बुद्धि, गुणात्मक, अहंकार और पंचतन्मात्रादि—में बँध जाने के कारण ही आत्मा की जीवसंज्ञा है। इन्हीं आठों से यह देह है और इस देह से जो कुछ क्रिया हो रही है, उसी का नाम कर्म है और कर्मों के फल-भोग के लिए बारम्बार देह की प्राप्ति होती है। शरीर तीन—स्थूल, सूक्ष्म और कारण—प्रकार के होते हैं। स्थूल शरीर व्यापार करता है, सूक्ष्म शरीर हड्डियों का भोग करता है तथा कारण शरीर आत्मा के उपभोग का निमित्त है। कर्मों का फल पाप-पुण्य और इनसे दुःख-सुख की प्राप्ति होती है। कर्म-रज्जु से बँधा यह जीव तीनों शरीरों सहित चक्रवत सदैव घूमता रहता है। जीव की इस बन्धन से मुक्ति का उपाय प्रकृति के आठ चक्रों से परे, चक्रकर्त्ता, सर्वज्ञ, निःस्पृह एवं परिपूर्ण शिव की पूजा-प्रसन्नता से ही हो सकती है। शिवलिंग में मन, वचन और कर्म से शिवभावना करके उसकी पूजा करने वाला प्रकृति से अतीत भगवान शिव की कृपा से मुक्त और आत्माराम हो जाता है। लिंगादि के भेद और उनमें शिवजी की पूजा का विधान बताते हुए सूतजी कहते हैं :—सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला प्रणव प्रथम लिंग है, जो स्थूल भी है और सूक्ष्म भी। इसे ही पञ्चा-

क्षर कहा जाता है। इसके अतिरिक्त पुरुष और अष्टोत्तरशत

बहुत-से लिंग हैं, जिन्हें केवल शिवजी ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता। पृथ्वी के विकार से पाँच लिंग कहे जाते हैं :—(१) स्वयम् लिंग (२) बिन्दु लिंग (३) प्रतिष्ठित लिंग (४) चर लिंग (५) गुरु लिंग।

ऋषि अथवा देवता विशेष के फलस्वरूप पृथ्वी को फोड़कर प्रकट होने वाला लिंग **स्वयम् लिंग** कहलाता है।

स्वर्ण, रजत अथवा पृथ्वी आदि की वेदिका पर प्रणव मन्त्र से लिखा गया लिंग **बिन्दु लिंग** कहलाता है।

विधिपूर्वक संपुट पात्र में रखकर घर में स्थापित शिवलिंग **प्रतिष्ठित लिंग** कहलाता है।

प्रत्येक पूजाकाल में रचित और पूजोपरान्त विसर्जित किया जाने वाला लिंग **चर लिंग** कहलाता है।

शिवरूप में से उपासित किया जाने वाला वेदव्रती, ज्ञानदाता गुरु द्वारा प्रतिष्ठापित **गुरु लिंग** कहलाता है।

शिवपूजा का विधान इस प्रकार से है :—सब कार्यों के आदि में सर्वप्रथम विघ्ननाशक गणेश का, सब बाधाओं की शान्ति के लिए देवताओं का और दैहिक, दैविक, भौतिक पाप-तापों की शान्ति के लिए विष्णु भगवान् का पूजन करना चाहिए। जप, हवन के साथ-साथ यथाशक्ति दान—प्रतिमा, घृत-पात्र तथा ब्राह्मणों को भोजदान आदि—करना चाहिए। इन सब के उपरान्त शिवजी का महाभिषेक करके उन्हें नैवेद्य समर्पण तथा उनकी प्रसन्नता के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। एक-सौ आठ मन्त्रों द्वारा सूर्य को और लक्ष मन्त्रों द्वारा भगवान् शंकर को नमस्कार करना चाहिए। शिवजी के प्रति आत्मनिवेदन करते हुए समर्पित-भाव रख कर उनसे कृपादृष्टि बनाने तथा अकिंचन को अपनाने की विनती करनी चाहिए। क्रिया-युक्त प्रणव-जप करते हुए शिव के बलिपीठ—जन्म-मरण का माया-चक्र—से प्रदक्षिणा करनी चाहिए। प्रदक्षिणा और नमस्कार शिव-जी को अत्यन्त प्रिय हैं। संसार के सभी पातक इनके द्वारा विनष्ट हो जाते हैं और भगवान् शिव का प्रसाद सुलभ हो जाता है।

शिवलिंग के षोड़शोपचार वाली पूजा-प्रदक्षिणा से इहलौकिक मनोरथों की पूर्ति होती है और मुक्ति सुलभ हो जाती है। वास्तव में क्रिया की अधीनता ही शरीर का बन्धन है और तीनों प्रकारों—

स्थूल, सूक्ष्म और कारण—शरीरों को स्ववश कर लेना ही मुक्ति है।

बन्धन-मुक्ति रूप मायाचक्र के प्रणेता भगवान् शंकर ही हैं। शिवजी द्वारा कल्पित द्वन्द्व का शिव में ही अर्पण कर देने से शिवजी निश्चय ही उसका निवारण कर देते हैं। अतः जीव को शुद्ध आहार-विहार करते हुए, जीव हिंसा से निवृत्त होकर और मौन धारण करके शिव की भक्ति करनी चाहिए और शिवलिंग का आश्रय लेकर उनकी शरण में ही वास करना चाहिए।

ऋषियों ने शिवलिंग की महिमा सुनाने के लिए सूतजी की प्रशंसा करते हुए और उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए उनसे व्यास जी के मुख से **पार्थिव महेश्वर** की यथाश्रुत **महिमा** का वर्णन करने की प्रार्थना की। सूत जी बोले—पुण्यकर्मा ऋषियो ! मैं आप लोगों के शिवानुराग से प्रसन्न होकर आपको शिव के पार्थिव लिंग की महिमा सुनाता हूँ। पार्थिव लिंग सब लिंगों में श्रेष्ठतम है। ब्रह्मा, विष्णु आदि कितने ही देवता, ऋषि और मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस तथा सिद्ध जन पार्थिव लिंग के पूजन से आप्तकाम हुए हैं। सत्ययुग में रत्न का, त्रेता में सुवर्ण का, द्वापर में पारे का और कलियुग में पार्थिव (मिट्टी का) लिंग श्रेष्ठ है। जिस प्रकार समस्त नदियों में गंगा, सब मन्त्रों में ओंकार, सब वर्णों में ब्राह्मण, सब पुरियों में काशी, सब व्रतों में शिवरात्रि तथा शक्तियों में दैवी शक्ति श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिव लिंग श्रेष्ठ होने के कारण आराध्य एवं पूजनीय है। पार्थिव लिंग का पूजन धन तथा आयु की वृद्धि करने वाला, तुष्टि-पुष्टि देने वाला तथा कर्म सिद्धि करने वाला है। जीवनपर्यन्त पार्थिव लिंग का पूजन करने वाला शिवलोक का मार्गी होता है और असंख्य वर्षों तक वहाँ निवास कर पुनः भरतखण्ड का राजा बनता है। ब्राह्मण होकर भी पार्थिव लिंग की पूजा न करने वाला अत्यन्त दारुण शूल नामक नरक में जाता है।

वैदिक भक्त वेदमन्त्रों की विधि से स्नान, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, तर्पण तथा सम्पूर्ण नित्य कर्म करके भगवान् शंकर का श्रद्धाभक्ति सहित स्मरण करते हुए भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। इसके पश्चात् किसी नदी तट पर अथवा पर्वत पर अथवा सुरम्य वन में अथवा शिवालय में अथवा अन्य किसी पवित्र स्थान पर पार्थिव लिंग की सम्यक् रूप से सावधान होकर इस प्रकार पूजा करें :—

शुद्ध स्थान में उत्पन्न मिट्टी को प्रयत्न से लाकर जल से उसे शुद्ध कर उसके धीरे-धीरे पिण्ड बनावे। वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए

सुन्दर पार्थिव लिंग की रचना करे। 'ओम् नमः शिवाय' इस मन्त्र से पूजन सामग्री का शोधन करे। 'भूरक्षि' इस मन्त्र से क्षेत्र सिद्ध करे। 'आपोऽस्मान्' इस मन्त्र से जल का संस्कार करे। 'नमस्ते रुद्र' इस मन्त्र से स्फटिकबन्ध करे। 'नमः शम्भवाय' इस मन्त्र से क्षेत्रों की शुद्धि करे तथा 'नमः' कहते हुए पंचामृत से प्रोक्षण करे। 'नमो नीलग्रीवाय' इस मन्त्र से लिंग की प्रतिष्ठा करे तथा 'एतत्ते रुद्राय' इस मन्त्र से भक्तिपूर्ण सुरम्य आसन समर्पित करे। 'मनो महान्तस्' इस मन्त्र से आह्वान करके 'याते रुद्र' इस मन्त्र से उपविष्ट कराए (आसन पर विठाए।) 'यामिषुम्' इस मन्त्र से शिवजी का न्यास और 'अयोचदिति' इस मन्त्र से प्रेमपूर्वक अधिवास करे। फिर 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' इस मन्त्र से पाद्य, स्नान, रुद्र, गायत्री से अर्घ्य और त्र्यम्बक मन्त्र से आचमन अर्पित करे। इसके उपरान्त 'दधिक्राव्णो' 'घृतयावः' 'पृथिव्याम्' मन्त्रों से क्रमशः दधि, घृत और दुग्ध से स्नान करावे। इस प्रकार वेदोक्त विधि से पार्थिव लिंग की पूजा करने वाला उत्तम फल पाने वाला होता है।

पार्थिव पूजा की एक अन्य साधारण विधि का उल्लेख करते हुए सूत जी कहते हैं— कि शिवभक्त हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधारी, शिव, पशुपति, महादेव—आदि अनेक शिवनामों का स्मरण—जाप करते हुए मृत्तिका लाकर उसे मिलावे, फिर प्रतिष्ठा और आह्वान कर स्नान, पूजन कराकर और क्षमा याचना करे। 'ओम् नमः शिवाय' मन्त्र का भक्तिपूर्वक जाप करता हुआ शिवजी का ध्यान करे तथा शतरुद्रियों का पाठ करे। हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर भगवान् शंकर से इस प्रकार प्रार्थना करे :—हे शिव ! आपका भजन करने वाला और आप में चित्त लगाने वाला मैं आपका ही हूँ। आप वेद-शास्त्रों तथा सिद्ध-ऋषियों द्वारा भी अज्ञय, अगम्य और अगेय हैं। मैं तुच्छबुद्धि आपकी महिमा का पार कैसे पा सकता हूँ ? अज्ञान अथवा ज्ञानपूर्वक जो भी मैंने आपका भजन किया है, वह आपकी कृपा से सफल हो। आप परम कृपालु, अत्यन्त उदार तथा प्रबल शक्तिशाली, तेज-पुंज हैं। मैं आपका शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा करें। —इस प्रकार विनती करते हुए अक्षत और पुष्प चढ़ा देवे और पुनः साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके प्रदक्षिणा करे। इस सबके पश्चात् अपने को इस पूजा से कृतकृत्य मानता हुआ विसर्जन करे। इस पूजन विधि से भी भक्त को, भक्ति, भुक्ति और मुक्ति प्राप्त होते हैं।

पार्थिव लिंगों की संख्या कामना के अनुसार कही गई है। विद्या प्राप्ति के लिए एक सहस्र, धन तथा वस्त्र की प्राप्ति के लिए पाँच सौ, पुत्र प्राप्ति के लिए डेढ़ सहस्र, भूमि प्राप्ति के लिए एक सहस्र, दया की प्राप्ति के लिए तीन सहस्र, तीर्थ की इच्छा के लिए दो सहस्र और मोक्ष की अभिलाषा के लिए एक करोड़ पार्थिव लिंगों को बनाकर उनका पूजन करना चाहिए। कलियुग में पार्थिव लिंग की पूजा के समान कोई अन्य साधन निश्चित फलदायक नहीं। लिंग का अर्चन करने से सम्पूर्ण स्थावर जंगम पूजित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा अन्य सभी जातियों को शिवलिंग की पूजा करने का अधिकार है। ब्राह्मण अथवा ऋषि आदि के शाप से पीड़ित व्यक्ति भी त्रिजगन्मयी अष्टमूर्ति—शर्व, भव, रुद्र, उग्र भीम, ईश्वर, महादेव, पशुपति—का पूजन करने, ललाट पर भस्म का त्रिपुण्ड लगाने तथा रुद्राक्ष धारण करने से शापमुक्त होकर भगवान् शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।

ऋषियों ने पूछा—महर्षे! हमने सुना है कि शिव नैवेद्य अग्राह्य है और बिल्व शिवजी को अत्यन्त प्रिय है—इन दोनों विषयों पर प्रकाश डालने की कृपा करें। सूत जी बोले—शुद्ध, पवित्र, आचारवान् तथा सत्यव्रती शिवभक्त के लिए नैवेद्य अग्राह्य नहीं। शिव नैवेद्य के दर्शन से ही पाप दूर भाग जाते हैं और उसका भक्षण करने से अनेकों पुण्य प्राप्त होते हैं। जिनके घर में शिवजी के नैवेद्य का प्रचार होता है, वे अपने साथ पड़ोस को भी पवित्र करते हैं। अतः श्रद्धालु शिवभक्त को शिवजी का स्मरण करते हुए बड़े ही प्रयत्न के साथ शिव नैवेद्य का भक्षण करना चाहिए। शिव नैवेद्य को अग्राह्य मानकर उसे ग्रहण न करने वाला घोर नरक में जाता है। हाँ, जहाँ चाण्डालों का अधिकार है, वहाँ मनुष्य नैवेद्य का भक्षण न करे तो पवित्रता और सात्विकता की दृष्टि से क्षम्य है अन्यथा शिव नैवेद्य का भक्षण ब्रह्महत्या के पाप तक का निवारक है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बाणलिंग, लोहलिंग, सिद्धलिंग और स्वयंभूलिंग में तथा सम्पूर्ण प्रतिमाओं के पूजन में चाण्डालों का अधिकार नहीं है, अतः इन लिंगों का नैवेद्य—लिंग स्पर्श से मुक्त होने पर—कदापि अग्राह्य नहीं।

बिल्व महादेव जी का स्वरूप है। संसार के सभी प्रसिद्ध और पवित्र तीर्थों का बिल्वमूल में ही निवास है। क्योंकि बिल्वमूल में

अव्यय महादेव जी का वास रहता है अतः बिल्वपूजा शिवपूजा और

शिवपूजा विल्वपूजा है। विल्वमूल में शिवजी को जल चढ़ाने वाला, गन्धपुष्पादि से पूजा करने वाला, आदरपूर्वक दीपक जलाने वाला तथा विल्वमूल में ब्राह्मण को भोजन कराने वाला और शिवभक्त को घृतदुग्धादि का दान करने वाला अनन्त सुख, श्री, विभूति आदि को प्राप्त करता है।

ऋषियों के पूछने पर उन्हें **शिवनाम, भस्म,** और **रुद्राक्ष** की महिमा बताते हुए सूत जी कहते हैं—शिवजी का नाम, विभूति और रुद्राक्ष ये तीनों महापुण्य रूप त्रिवेणी फल के समान कहे गए हैं और जो इन तीनों को नित्य अपने शरीर में धारण किए रहता है उसका दर्शन ही त्रिवेणी के दर्शन के समान पापनाशक तथा पुण्यदायक है। वस्तुतः शिवजी का नाम सुरसुरी,भागीरथी, विभूति, सूर्यतनया यमुना तथा रुद्राक्ष, सकलोघनाशिनी सरस्वती है। ब्रह्मा जी ने इन तीनों—शिवनाम, विभूति और रुद्राक्ष—की उन तीनों गंगा, यमुना और सरस्वती—से तुलना करने पर इन्हें ही अधिक फलदायक पाया है और उसी दिन से स्वयं ब्रह्मादि ने इन्हें अपनाकर दूसरों के लिए इन्हें अपनाने का विधान किया है।

वास्तव में **शिवनाम** ही ऐसा है कि जिसके स्मरणं करते ही पापों के पर्वत अनायास ही उन्मूलित हो जाते हैं। शिवनाम रूपी नौका को पाकर मनुष्य संसार रूपी सागर को अनायास तर जाता है। शिवनाम का जप करने वाला ही, पुण्यात्मा, पण्डित, पवित्र तथा धर्मशील है। शिवनाम में अखण्ड श्रद्धावान् के लिए मोक्ष सुलभ है। प्राचीन इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है कि शिवजी के नाम में पापरूपी दावाग्नि से सन्तप्त संसारियों को शान्ति देने की अद्भुत क्षमता है। पूर्वकाल में इन्द्रद्युम्न जैसे पापी राजा को शिवनाम के प्रभाव से ही उत्तम गति प्राप्त हुई। आज भी शिवनाम की महिमा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है। गंगा के समान शिवजी के नाम का सामर्थ्य अवर्णनीय है।

भस्म सम्पूर्ण मंगलों को देने वाला तीर्थरूप है। यह भस्म दो प्रकार का है—महाभस्म और स्वल्पभस्म। महाभस्म, श्रोत, स्मार्त्त और लौकिक भेदों से अनेक प्रकार का होता है। स्वल्पसंज्ञक भस्म के भी अनेक प्रकार-भेद हैं। द्विजों के लिए श्रौत और स्मार्त्त तथा अन्यों के लिए लौकिक भस्म धारण करने का विधान है। गोबर से सनी हुई भस्म आग्नेय कहलाती है और इससे भी त्रिपुण्ड किया जाता है, परन्तु विद्वानों को अग्निहोत्र से उत्पन्न भस्म ही धारण करनी

चाहिए। वर्णाश्रमी को आलस्यरहित होकर नित्य भस्म से उद्धूलन और तिरछा त्रिपुण्ड करना चाहिए। त्रिपुण्ड में तीन रेखाएँ होती हैं। मध्यमा और अनामिका अंगुलि से मध्य में प्रतिलोम अंगुष्ठ द्वारा की गई रेखा त्रिपुण्ड कहलाती है। तीन अंगुलियों के मध्य से यत्नपूर्वक भस्म को लेकर भक्तिसहित त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए और तदुपरान्त ही अधिकारी रूप में शिवनाम का जाप करना चाहिए।

ब्राह्मण और क्षत्रिय—'मानस्तोके'—मन्त्र से, वैश्य और शूद्र तथा स्त्रियाँ—'त्र्यम्बकम् यजामहे'—मन्त्र से' वनवासी 'अघोर मन्त्र' से, यति 'प्रणव मन्त्र' से तथा वर्णाश्रम से परे का महात्मा—'शिवोऽहम्' —मन्त्र से ही भस्म का त्रिपुण्ड धारण करें। भस्म के इस त्रिपुण्ड की महिमा को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और अन्य देवता भी कहने में असमर्थ हैं। फिर, मैं उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ। मैं तो संक्षेप में यही कह सकता हूँ कि भस्म साक्षात् शिवरूप है और यह त्रिलोकी को पवित्र करने वाला है। इसके समान कोई भी स्नान, ध्यान, दान और जप आदि नहीं है।

परम पावन रुद्राक्ष शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। स्वयं शिवजी द्वारा पार्वती को सुनाई गई रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार से है :—

पूर्वकाल में जब सहस्रों वर्षों के तप के पश्चात् भी शिवजी का मन सन्तुष्ट न हुआ तो उस शुद्ध, बुद्ध, मुक्त परमेश्वर ने लीलावश अपने नेत्र बन्द कर लिए। उस समय उनके सुन्दर नेत्रपुटों से मल के कुछ कण पृथ्वी पर गिर पड़े और उनसे ही यत्र-तत्र रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हो गए। मथुरा, अयोध्या, लंका, मलयाचल, सह्याद्रि और काशी में उत्पन्न होने वाले रुद्राक्ष शिवजी ने विष्णुभक्तों और चारों वर्णों को दे दिए। जिस प्रकार शिवजी ने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विभिन्न जातियों का विधान किया, उसी प्रकार रुद्राक्ष की भी अनेक जातियों का उन्होंने ही विभाजन-विधान किया। आँवले के परिणाम वाला रुद्राक्ष सर्वोत्तम, बदरीफल के आकार वाला मध्यम तथा चने के आकार वाला अधम है। आँवले के आकार वाला रुद्राक्ष अरिष्ट-नाशक, बेर के आकार वाला रुद्राक्ष सुख-सौभाग्यवर्धक तथा चने के आकार वाला रुद्राक्ष सिद्धिदायक होता है। जिस रुद्राक्ष में स्वयं छिद्र हों, वह प्रशंसनीय होता है। मनुष्य द्वारा छेद किया गया रुद्राक्ष मध्यम कोटि का होता है।

ग्यारह सौ रुद्राक्षों को धारण करने वाला शिवरूप, साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों को धारण करने वाला महान् भक्त, तीन सौ साठ रुद्राक्षों को त्रिसूत्री यज्ञोपवीत के रूप में धारण करने वाला पवित्रात्मा तथा एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला धारण करने वाला दृढ़व्रती कहलाता है। बिना रुद्राक्ष धारण किए शिवनाम के जाप की सिद्धि नहीं होती। त्रिपुण्ड सहित रुद्राक्षधारी रुद्राक्ष की माला से शिव मन्त्र का जाप करने वाला सिद्ध पुरुष बन जाता है।

रुद्राक्ष के एक से चौदह तक मुख होते हैं। एकमुख वाला साक्षात् शिवस्वरूप है और मुक्ति-भुक्ति का दाता होता है। दो मुख वाला पापनिवारक तीन मुखवाला सिद्धिदायक और चतुर्मुख वाला चतुर्वर्ग फलदाता होता है। इस प्रकार जितने अधिक मुख वाला रुद्राक्ष होगा, उतना ही उसके धारण करने वाला उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहलाएगा।

रुद्राक्ष के एक से चतुर्दशमुखी होने से उसके धारण करने के चौदह मन्त्र हैं। जिस मुख का रुद्राक्ष हो, उस संख्या के मन्त्र से उसे धारण करने से वह शुभ फलदायक होता है।

(१) ओम् ह्रीं नम:
(२) ओम् यम:
(३) क्लीं नम:
(४) ओम् ओम् ह्रीं नम:
(५) ओम् क्लीं नम:
(६) ओम् ह्रीं हुं नम:
(७) ओम् हुं हुं नम:
(८) ओम् ओम् हुं नम:
(९) ओम् हुं ह्रीं नम:
(१०) ओम् ह्रीं क्लीं नम:
(११) ओम् क्लीं हुं नम:
(१२) ओम् क्रुं क्षुं रूं नम:
(१३) ओम् हुं क्रुं नम:
(१४) ओम् क्षुं क्लुं नम:

बिना उपर्युक्त मन्त्र के रुद्राक्ष कदापि धारण नहीं करना चाहिए। रुद्राक्ष मालाधारी को देखकर जहाँ, शिवजी, विष्णु, गणपति तथा सूर्य आदि देवता प्रसन्न हो जाते हैं, वहाँ भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी और द्रोह करने वाले अन्याय जीव भाग जाते हैं। रुद्राक्ष धारण न करने वाला प्राणी यमलोक का भागी होता है और उसकी सद्गति नहीं होती। जीव के सहज उद्धार का उपाय त्रिपुण्ड और रुद्राक्ष धारण कर शिवमन्त्र का जाप करना है। इससे बद्ध जीव मुक्त होकर शिव बन जाता है।

रुद्र संहिता

(सृष्टि खण्ड)

एक समय नैमिपारण्य में शौनकादि अनेक ऋषि-मुनियों ने सूत जी से निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देने की प्रार्थना की : —

(१) शिवजी का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप और पार्वती-सहित उनका दिव्य चरित्र क्या है ?

(२) लोक के कल्याणकर्त्ता शिवजी किस प्रकार प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होने पर क्या फल प्रदान करते हैं ?

(३) ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं के शिवजी के अंग से ही उत्पन्न होने पर भी महेश ही पूर्णांश क्यों है ?

सूत जी ने ऋषियों की शिव भक्ति के लिए उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें बताया कि एक समय नारद जी ने भी यही तीनों प्रश्न अपने पिता ब्रह्माजी से पूछे थे। उन दोनों के मध्य हुआ संवाद मैं आप लोगों को सुनाता हूँ। इससे आप लोगों की जिज्ञासा की स्वतः निवृत्ति हो जाएगी।

एक समय नारद जी ने हिमालय पर्वत की एक सुन्दर कन्दरा में सुदीर्घ काल तक तप किया और "अहं ब्रह्मास्मि" की भावना से समाविस्थ होकर ब्रह्मविधान को अपनाया। नारद जी के घोर तप से इन्द्र विचलित हो उठा और उसने कामदेव से सहायता की प्रार्थना की। कामदेव के उपस्थित होने पर इन्द्र ने शिवजी के ध्यान में समाधिस्थ नारद की तपस्या को भंग करने का उससे अनुरोध किया। इन्द्र ने यह आशंका प्रकट की कि अन्यथा तप के सफल हो जाने पर नारद कहीं ब्रह्मा से इन्द्रपद ही न माँग ले अतः इस विषय में सावधानी बरतने और नारद की सफलता के मार्ग में विघ्न-बाधा उप-

स्थित करने की आवश्यकता है और इस सम्बन्ध में आपकी सहायता अपेक्षित है।

इन्द्र के अनुरोध पर कामदेव नारद जी का तप भंग करने चला। वहाँ पहुँच कर काम ने अपनी सभी मोहक कलाओं और कौशलों का प्रयोग किया, अपनी सारी प्रभावी माया का व्यापक प्रसार किया परन्तु नारद जी के चित्त में अणुमात्र भी विकार नहीं हुआ। शिवजी की कृपा से इन्द्र का दर्प दलित हुआ। वस्तुत: नारद जी उस स्थान पर तपस्या कर रहे थे जहाँ शिवजी काम को दग्ध कर चुके थे और उस क्षेत्र को काम के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर घोषित कर चुके थे। काम की असफलता का समाचार पाकर विस्मित इन्द्र नारद जी की प्रशंसा करने लगा।

शिवजी की माया से विमोहित नारद इन्द्र की प्रशंसा से गर्वित होकर अपने को कामजित मानने लगे और अपनी महिमा का विज्ञापन करने को आकुल हो उठे। सर्वप्रथम नारद जी शंकर जी के पास गए और मोहग्रस्त अज्ञानी जीवों के समान अभिमानपूर्वक अपनी कामविजय की कहानी सुनाने लगे। शिवजी ने नारद को इस प्रकार आत्मविज्ञापन और आत्मप्रशंसा न करने का परामर्श दिया, परन्तु शिवजी की ही माया से विमोहित नारद अपने ऊपर संयम नहीं रख सके और उनके सत्परामर्श की उपेक्षा करते हुए ब्रह्मा जी के पास ब्रह्मलोक में जा पहुँचे। वहाँ नारद ने ब्रह्मा जी को अपने तपोबल से अपनी कामविजय की बात कही। ब्रह्मा जी ने यह सब सुनकर शिव जी की प्रबल माया को प्रणाम किया तथा उनके रूप, गुण आदि का स्मरण करते हुए नारद को इस प्रकार आत्मविज्ञान करने की मनाही की, परन्तु नारद ब्रह्मा जी के परामर्श की भी उपेक्षा करके विष्णु-लोक को चल दिए। वास्तव में नारद जी के मन में अभिमान का अंकुर दृढ़मूल हो गया था, अत: उन्हें किसी का कथन उपयुक्त प्रतीत ही नहीं होता था। विष्णुलोक में पहुँचने पर नारद जी का यथोचित स्वागत हुआ। विष्णु जी ने दर्शन देने के लिए नारद जी का आभार माना और सब कुछ जानते हुए भी उनसे आने का कारण पूछा। नारद की कामविजय की गर्वोक्ति पर विष्णु जी ने जहाँ नारद के ज्ञान-वैराग्य, एकनिष्ठ ब्रह्मचर्य और कामातीतता के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, वहाँ नारद के इस आचरण के लिए मायाधारी शिव की सबको नचाने वाली माया को प्रणाम करके भगवान शिव

की मन ही मन स्तुति भी की।

नारद के चले जाने पर शिवजी की इच्छा से विष्णु ने नारद के मोहनाश की योजना बनाई। विष्णु जी ने नारद जी के मार्ग में एक अति सुन्दर नगर की कल्पना की। वहाँ का शासक शीलपति अपनी अद्वितीय सुन्दरी कन्या के स्वयंवर का आयोजन कर रहा था। नगर की दिव्य छटा से मोहित नारद राजा के पास पहुँचे। राजा ने अपनी कन्या को बुला कर उससे नारद जी को प्रणाम कराया। नारद जी उस सुकन्या के रूप-सौन्दर्य को देखते ही काम विह्वल हो उठे। उसकी भाग्य रेखा को पढ़ कर कि—'इसका पति अजेय होगा'—उसे पाने के लिए आकुल तथा आतुर हो उठे। स्त्रियाँ रूप लोभी होती हैं—यह सोचकर नारद विष्णु से उनका रूप लेने उनके पास चल दिए। वहाँ पहुँच कर नारदजी से सारी कहानी और स्वयंवर में अपनी सम्मिलित होने तथा कन्या को वरण करने के लिए विष्णु जी का ही रूप पाने की अपनी इच्छा उन्हें कह सुनाई। विष्णु जी ने नारद का मोह भंग करने के लिए उन्हें वानर का रूप देकर भेज दिया।

नारद जी प्रसन्नमन स्वयंवर स्थल पर जा पहुँचे। शिवजी की माया से वहाँ उपस्थित सभी राजाओं ने नारद जी को उसके वास्तविक रूप में ही देखा। ब्राह्मण वेश में वहाँ पर विद्यमान दो रुद्रगणों ने इस भेद को जान लिया और नारद के पास पहुँच कर वे उनका उपहास-परिहास करने लगे। कामविह्वल मुनि नारद तो रमणी में आसक्त थे अतः कुछ भी ठीक सुन-समझ न सके। वरमाला हाथ में लिए कन्या जब स्वयंवर-स्थल पर उपस्थित हुई तो नारद उसकी रूप सुषमा से मुग्ध होकर उचक-उचक कर इस प्रकार उसे देखने लगे कि सदाचार और मर्यादा की रक्षा तक का भी उन्हें ध्यान न रहा। वास्तव में कामातुर भय और लज्जा की रक्षा कर ही नहीं पाते। यही दशा नारद जी की थी। उधर रमणी बाला नारद के प्रतिबिम्ब तक से त्रस्त थी। उसने सभा में उपस्थित लोगों में किसी को भी अपने अनुकूल नहीं पाया। इसी समय राजा के वेश में विष्णु जी को ज्यों ही बाला ने द्वार पर देखा, त्यों ही उसने उनके कण्ठ में जयमाला डाल दी।

नारद जी अपनी असफलता से बहुत निराश और खिन्न हो गये। इधर रुद्रगणों ने उन्हें अपना वानर रूप दर्पण में देखने को कहा। इस

पर जल में अपना प्रतिबिम्ब देखते ही नारद जी क्रुद्ध हो उठे और

अपने जैसे तपस्वी ब्राह्मण का उपहास करने के लिए उन रुद्रगणों को राक्षस हो जाने का शाप दे डाला। इसके उपरान्त क्रोध में उबलते हुए नारद जी विष्णुलोक में जाकर कपटाचरण के लिए विष्णु जी को खरी-खोटी सुनाने लगे और उन्हें शाप देते हुए कहने लगे कि जिस प्रकार मुझे अपनी स्त्री के वियोग से दु:खी किया है, उसी प्रकार आप को स्त्री के वियोग का दु:ख सहन करना पड़ेगा। जिस प्रकार का वानर रूप आपने मुझे दिया है, उसी प्रकार के वानरों को ही आपको अपना सहायक बनाना पड़ेगा। विष्णु जी ने नारद के इस आचरण के लिए उत्तरदायी शिवजी की माया को प्रणाम करते हुए शाप को शिरोधार्य किया।

शिवजी द्वारा अपनी माया को खींचते ही नारद अपने पूर्व ज्ञानी रूप में आगए और अपने आचरणके लिए पश्चात्ताप करने लगे। विष्णु जी के चरणों में गिर कर वह क्षमायाचना करने लगे। विष्णु जी ने उन्हें बताया कि उनके दर्पदलन के लिए भगवान् शिव ने इस प्रकार से सारी माया का प्रसार किया है। उन्हीं के आदेश से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र क्रमश: सृष्टि की उत्पत्ति, पालन तथा संहार कार्य करते हैं। उन्हीं शिवजी की पूजा, उनके शतनामों के जाप, भस्म-रुद्राक्ष धारण कर प्रणव मन्त्र के उच्चारण तथा उनके शरणागत होने से ही आप के पापों का, अज्ञान और मनस्ताप का क्षय हो सकता है। अब आप ब्रह्म-लोक में जाकर अपने पिता ब्रह्मा जी से शिवस्तोत्र और शिव माहात्म्य सुनिए और शैव बन जाइये। भगवान् शिव आपका कल्याण और उद्धार करेंगे। नारद जी को इस प्रकार प्रबोधित करके विष्णु जी अन्तर्धान हो गए।

इसके उपरान्त नारद जी पृथ्वी पर आकर विभिन्न स्थानों में शिवलिंगों का दर्शन तथा अर्चन करने लगे। वहीं उनकी भेंट शिव-गणों से हुई, जिन्होंने नारद जी को बताया कि ब्राह्मणवेशधारी वे वस्तुत: भगवान् शिव के गण हैं, जिन्हें शिवजी की माया से मोहित होकर उन्होंने (नारद जी ने) शाप दिया है। नारद जी अपनी करनी पर पछताते हुए बोले कि होनी को तो कोई नहीं टाल सकता। हाँ, अब मैं तुम्हारे शापोद्धार का उपाय बताता हू। श्रेष्ठमुनि के घर उत्पन्न होकर तुम राक्षस जाति के शासक बनोगे। तुम्हें अतुल बल, प्रताप और ऐश्वर्य प्राप्त होगा। इतने पर भी तुम जितेन्द्रिय और शिवभक्त

बनोगे और शिवजी के ही अवतारी शरीर से मरकर तुम अपना पद

प्राप्त करोगे। शिवगण प्रसन्न होकर चले गए और नारद जी शिव-लिंगों का दर्शन करते हुए काशी में आए और वहाँ काशीनाथ शिव का पूजन कर ब्रह्मलोक को चले गए और वहाँ उन्होंने ब्रह्मा जी से शिवतत्त्व बताने का अनुरोध किया।

ब्रह्मा जी ने कहा कि प्रलयकाल—स्थावर जंगम के विनाश काल, सूर्य, ग्रह, ताराओं के लोपकाल और सर्वत्र अन्धकार के साम्राज्यकाल—में एक सद् ब्रह्म ही शेष था। उस सत्-असत् से परे, योगियों द्वारा ध्यानगम्य, मन-वाक्-इन्द्रियातीत, नाम-रूप-वर्ण-रहित सत्य-ज्ञान-अनन्त स्वरूप, अमूर्त परतत्त्व सदाशिव का लिंग ही उनकी मूर्त्ति अथवा उनका स्वरूप है। इसी स्वरूप को ही ज्ञानीजन परब्रह्म परमेश्वर की संज्ञा देते हैं। इसी परमेश्वर स्वरूप शिव ने अपने शरीर से स्वच्छन्द-तनु, अनश्वर शक्ति उत्पन्न की। इसी का ही प्रकृति, गुणमय माया तथा निर्विकार बुद्धि नाम पड़ा। यही शक्ति अम्बिका, सर्वलोकेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्य तथा मूल प्रकृति कहलाती है। इसकी आठ भुजाएँ तथा विचित्र मुख है। अचिन्त्य तेजोयुक्त यह माया संयोग से अनेक रूपों वाली हो जाती है।

परब्रह्म परमेश्वर शिव सिर पर गंगा को और ललाट पर चंद्रमा को धारण किए हैं। वे तीन नेत्रों, पाँच मुखों और दस भुजाओं वाले हैं। वे त्रिशूलधारी, प्रसन्नचित्त, कर्पूरगौर, भस्मसिक्त, कालस्वरूप भगवान् हैं। अपनी शक्ति के साथ उनके द्वारा स्थापित शिवलोक क्षेत्र ही काशी है। यहाँ शिवजी अपनी शक्ति अम्बिका के साथ नित्य निवास करते हैं। यहाँ तक कि प्रलयकाल में भी यह क्षेत्र शिव-पार्वती से रहित नहीं होता। इसीलिए ही यह 'अविमुक्त क्षेत्र' कहलाता है।

सृष्टि की इच्छा होने पर शिवजी ने इसका भार किसी अन्य को सौंपने और स्वयं शान्तिपूर्वक काशी में शयन करने का विचार किया। यह विचार उदय होते ही शिवजी के दक्षिण भाग के दशमांश से एक पुरुष का आविर्भाव हुआ, जिसका नाम शिवजी ने विष्णु रखते हुए उन्हें परम कार्य साधक के निमित्त दृढ़ता से तप करने का आदेश दिया। बहुत समय तक कठोर तप करने के उपरान्त शंकर भगवान् की कृपा से विष्णु जी के शरीर से जलधाराएँ निकलीं। उस जल पर मोहित होकर शान्त विष्णु सो गए। उस समय नार(जल)पर सोने के कारण उनका नारायण(नार + अयन)नाम पड़ गया। उस समय विष्णु जी से सब तत्त्वों की उत्पत्ति और विस्तार हुआ। सर्वप्रथम

प्रकृति से महत्तत्त्व, उससे तीन गुण, तीन गुणों से अहंकार, उससे तन्मात्राएँ (रुद्र, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) उनसे पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) प्रकट हुए। इसके उपरान्त पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—नेत्र, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ—वाणी, हस्त, चरण, गुदा और उपस्थ—उत्पन्न हुईं। चौवीस प्रकार का यह सारा तत्त्व—(प्रकृति—१, महत्तत्त्व—१, गुण—१, अहंकार—१, तन्मात्राएँ—५, भूत—५, ज्ञानेन्द्रियाँ—५ तथा कर्मेन्द्रियाँ—५ = २४) शिवजी की इच्छा से ही प्रकट हुआ। ये सब एकत्र होकर ब्रह्मरूप जल में सो गए।

नारायण के जल में सो जाने पर शिवजी की इच्छा से उनकी नाभि से अनन्त योजन विस्तृत और अनन्त योजन उन्नत एक विशाल कमल उत्पन्न हुआ। इसके उपरान्त उस कमलनाभि से शिवजी ने मुझे (ब्रह्मा को) उत्पन्न किया। मुझे उस समय कुछ भी ज्ञान नहीं था, कुछ क्षणों के भीतर ही मुझमें बुद्धि का उदय हुआ और मैं अपने कर्त्ता को ढूँढने लगा। उस कमल की नाल को पकड़ते हुएं सौ वर्ष तक मैं नीचे जाता रहा परन्तु उसके मूल को नहीं पा सका। तव निश्चय करके मैं नाल के सहारे ऊपर जाने लगा। ऊपर जाने पर मुझे कमल की कली मिली और तप करने की आकाशवाणी सुनाई दी। वारह वर्ष तक कठिन तप करने पर मुझे चतुर्भुज, कमलनयन कोटिकामलजावनहारे विष्णु जी के दर्शन हुए। शिवजी की माया से मोहित मैं उन्हें पहचान न पाया और उनसे उनका परिचय पूछने लगा। उनके द्वारा अपने को सर्वज्ञ और मेरा पिता वताए जाने पर मैंने विरोध किया और साथ ही मैंने उनका तिरस्कार किया। दोनों में वाद-विवाद के उपरान्त सशस्त्र संघर्ष छिड़ गया, उस समय युद्धरत हम दोनों के मध्य लिंग प्रकट हुआ। तव हम दोनों ने युद्ध वन्द कर उनसे उनका वास्तविक परिचय देने की प्रार्थना की।

शिवजी ने अपना परिचय देते हुए हम दोनों का गर्व हरण किया। उस समय हम दोनों ने 'ओ३म्' की गम्भीर ध्वनि सुनी। विष्णु जी ने लिंग के दक्षिण भाग में अकार को, उत्तर भाग में उकार को, और मध्य में मकार को देखा। उस 'ओ३म्' में सत्य, आनन्द और अमृतस्वरूप परब्रह्म ही दृष्टिगोचर हो रहा था। हम दोनों उसके आविर्भाव के सम्वन्ध में विचार कर ही रहे थे कि वहाँ पधारे एक महात्मा ने 'ओ३म्' को शिवजी का ब्रह्मशरीर और उनके ही समान अचिन्त्य

मन-वाणी से अगोचर वताते हुए हमारी उत्सुकता को शान्त किया। ओंकार के अ, उ तथा म् वर्ण क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और नीललोहित महादेव के प्रतीक हैं। इसी प्रकार ये तीनों वर्ण क्रमशः सृष्टि मोहन, तथा अनुग्रह कार्यों के द्योतक हैं। अकार बीज, उकार कारणरूप योनि और मकार विभु-बीजी है। बीजी महेश्वर की इच्छा से बीज योनि में गिरकर चारों ओर बढ़ने लगा। उससे अवेद्य और अलक्षण एक सुवर्णमय अण्ड उत्पन्न हुआ, जो बहुत वर्षों तक जल में स्थित रहा। इसके दो भाग किए जाने पर ऊपर के भाग से स्वर्गलोक और नीचे के भाग से पृथ्वीलोक प्रकट हुए। उसके पश्चात् उस अण्ड से चतुर्भुज शंकर प्रकट हुए, जो सभी लोकों के रचयिता और त्रिरूप-धारी (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) प्रभु हैं। हम दोनों ने उस समय महेश्वर महादेव की वेदमन्त्रों से स्तुति प्रारम्भ कर दी, उसके फल-स्वरूप पंचमुख, दशभुज, कर्पूरगौर, परमकान्तिमान, नानाभूषणा-भूषित शिवजी को अपने सामने प्रकट देखकर हम दोनों ने कृतकृत्य होकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्हीं से ४८ अक्षरों वाला गायत्री मन्त्र, आठ कलाओं (मात्राओं) वाला शिवमन्त्र (ओ३म् नमः शिवाय) मृत्युञ्जय मन्त्र, चिन्तामणि मन्त्र तथा दक्षिणी मूर्ति मन्त्र आदि उत्पन्न हुए। विष्णु जी ने और मैंने उन पाँचों मन्त्रों को ग्रहण कर उनसे वरदायक साम्ब शिव की स्तुति करना प्रारम्भ किया।

भगवान् शंकर के प्रसन्न हो जाने पर विष्णु जी ने उनसे प्रार्थना की कि आप हमें यह वताने की कृपा करें—आप किस पूजा तथा ध्यान से प्रसन्न तथा वश में होते हैं और प्रसन्न होने पर क्या फल प्रदान करते हैं? महादेवजी हम दोनों की भक्ति पर प्रसन्न होकर बोले—मेरा लिंग सदा पूज्य और ध्यान करने योग्य है। जिस प्रकार लिंगरूप में पूजित होकर मैंने तुम दोनों का दुःख दूर किया है, उसी प्रकार अन्य दुःखी जीव मुझे लिंगरूप में पूजकर, मुझे प्रसन्न करके अपने समस्त दुःखों का निवारण कर सकते हैं। मैं प्रसन्न होने पर अनेक प्रकार के फलों और सब प्रकार के मनोरथों को देता हूं।

इसके उपरान्त शिवजी ने ब्रह्मा को स्रष्टा, विष्णु को पालक बनने का आदेश देते हुए कहा, कि उनका अपना अंश रुद्र सृष्टि का लय करने वाला होगा। उमा नाम की परमेश्वरी (प्रकृति देवी) की शक्ति सरस्वती नाम से ब्रह्मा की और दूसरी शक्ति लक्ष्मी नाम से विष्णु की तथा तीसरी काली नाम की शक्ति मेरी (रुद्र की) पत्नी होगी।

काली का आश्रय लेकर रुद्र रूप में मैं ही सृष्टि का प्रलय करूँगा। वस्तुत. ब्रह्मा और विष्णु भी मैं ही हूँ। मुझ में और विष्णु में अन्तर न जानने वाला ही मेरा सच्चा भक्त है।

शिवजी ने विष्णु को अनेक अवतार धारण कर जीवों का कल्याण करने और अपनी कीर्ति का विस्तार करने का आशीर्वादात्मक आदेश दिया तथा संकट की घड़ी में लिंगपूजा करने पर सहायता देने का उन्हें आश्वासन दिया। शिवजी ने बताया कि उनका शरणागत सभी दु:ख-तापों से तत्काल मुक्त हो जाता है।

तीनों देवों के आयुर्बल का वर्णन करते हुए शिवजी बोले—चार हजार युग का ब्रह्मा का एक दिन और इतने ही परिमाण की उनकी एक रात्रि होगी। इस परिमाण से ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु होगी। प्रत्येक वर्ष में बारह महीने और प्रत्येक महीने में तीस दिन और प्रत्येक दिन का परिमाण पूर्वोक्त होगा। ब्रह्मा जी का एक वर्ष विष्णु जी का एक दिन कहलाएगा और इस परिमाण से उनकी शतवर्ष की आयु होगी। विष्णु जी का एक वर्ष रुद्र जी के एक दिन के बराबर होगा और इसी क्रम से वे भी शतायु होंगे। रुद्र का एक श्वास ब्रह्मा, विष्णु, हर, गन्धर्व, सर्प तथा राक्षसों का इक्कीस हजार सात सौ अहोरात्रि प्रमाण होगा। रुद्र के ऊपर नीचे एक श्वास लेने से एक पल व्यतीत होगा और इस प्रकार के साठ पलों की एक घड़ी और साठ घड़ियों का रुद्र का एक दिन-रात होगा। रुद्र के नीचे-ऊपर श्वास लेने की कोई संख्या नहीं है। समग्र सृष्टि के लय हो जाने पर भी रुद्र ही शासन करेंगे।

ब्रह्मा और विष्णु ने शिवजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम निवेदन किया तथा उनके आदेश को शिरोधार्य करने का अपना निश्चय प्रकट किया। इस पर शिवजी सन्तुष्ट होकर अन्तर्धान हो गए। उसी समय से लोक में लिंगपूजा प्रचलित है। ब्रह्मा-विष्णु ने लिंगपूजा को अपनाया और अपने अध्यवसाय में वे सफल हुए। वस्तुत: प्रतिठिष्त लिंग की सवधि उपासना अमोघ और अतुल ऋद्धि-सिद्धिदायक है।

सूत जी बोले—ऋषियो ! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों ही भगवान् शिव के अंशरूप हैं, पुनरपि रुद्र की श्रेष्ठता का आधार सृष्टि के लय के लिए स्वयं शिव का वह रूप धारण करता है।

अपने तीनों प्रश्नों के उपयुक्त और सारगर्भित उत्तरों से सन्तुष्ट होकर ऋषियों ने सूतजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनसे शिव-

पूजन की विधि बताने का अनुरोध किया। ऋषियों के प्रश्न को सुन-कर उन्हें सम्बोधित करते हुए सूत जी ने कहा कि यही प्रश्न नारद ने ब्रह्मा जी से, कृष्ण ने उपमन्यु से और व्यास जी ने सनत्कुमार से किया था। उन महात्माओं द्वारा वर्णित शिवलिंग के पूजन का विधान इस प्रकार से है :—

शिवभक्त प्रातः ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर गुरुदेव, शिवजी और तीर्थों का स्मरण करता हुआ शिवस्तोत्र का पाठ करे। दक्षिण दिशा में एकान्त में जाकर मलत्याग करे और फिर, गुदा, लिंग, पैर तथा हाथों को मिट्टी से साफ करे। तदुपरान्त दन्तधावन करके तीर्थों में स्नान करे। आसन पर बैठकर पहले गणेश जी का पूजन करे और फिर शिवजी का स्थापन कर तीन बार आचमन तथा तीन बार प्राणायाम करे। 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पंचमुख, दशभुज, सर्वभूषणालंकृत, अजिनधारी शिवजी का ध्यान करे। फिर प्रणवमन्त्र से षड्न्यास कर शिवजी की पूजा आरम्भ करे और वेद-मन्त्रों द्वारा शिवजी पर सहस्र जलधारा चढ़ावे। चन्दन और पुष्पादि सुगन्धित सामग्री अर्पित करके वेदमन्त्रों द्वारा शिवजी की स्तुति करे तथा प्रणाम निवेदन करे। अञ्जलि में पुष्प लेकर शिवजी से आप्त-काम होने की प्रार्थना करे और पुष्प उन्हीं पर बिखेर दे। अपराध क्षमापन के लिए आचमन करे। इसके उपरान्त प्रसन्न मन से व्यापा-रादि सांसारिक कार्य करे। विधिपूर्वक की गई शिवपूजा पद-पद पर दुःखनाशक और सिद्धि प्रदान करने वाली है।

एक बार देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा जी विष्णुलोक को गए। विष्णु जी ने जब देवताओं से उनके आगमन का कारण पूछा तो देव-ताओं ने उनसे यह बताने का अनुरोध किया कि दुरितविनाश के लिए किस देवता की सेवा करनी चाहिए। इस पर विष्णु जी बोले— भगवान् शंकर सब दुःखों के निवारक और परमसेव्य हैं। शिवजी की पूजा से मनुष्य के न केवल सभी दुरित विनष्ट होते हैं, न केवल उसे सभी सुख प्राप्त होते हैं अपितु मुक्ति भी सुलभ हो जाती है।

विष्णु भगवान् के आदेश पर विश्वकर्मा ने विभिन्न देवताओं के अनुरोध पर उनकी हितकामनाएँ विभिन्न लिंगों की कल्पना कर उन्हें प्रदान किए, ताकि जिससे वे लिंगपूजा द्वारा क्षीणपाप और लब्धकाम हो सकें।

देवता	लिंग	देवता	लिंग
१. इन्द्र	पद्मरागमणि रचित	२. वरुण	श्यामवर्ण
३. विश्वेदेव	रजतमय	४. आदित्य	ताम्र
५. कुबेर	स्वर्णमय	६. विष्णु	इन्द्रनीलमणि
७. अश्विनीकुमार	पीतल	८. चन्द्रमा	मौक्तिक
९. नाग	चन्दन	१०. यक्ष	दधि
११. धर्मराज	पीतमणि	१२. ब्रह्मा	सुवर्णमय
१३. लक्ष्मी	स्फटिक	१४. देवी	नवनीत
१५. छाया	मृद्		

सभी देवता जब लिंग प्राप्त कर चुके तो विष्णु जी ने उन्हें पुनः बताया कि निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का एकमात्र उपाय प्रतिमा पूजन ही है। जिस प्रकार मूल के सिञ्चन से सम्पूर्ण शाखाएँ हरी-भरी हो जाती हैं, उसी प्रकार शिवजी की पूजा से समस्त देवों की प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है। अतः गृहस्थी को शिवप्रतिमा से ही देवपूजा करनी चाहिए। विष्णु जी से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर देवों के साथ ही ब्रह्मा जी लौट पड़े और शिवलिंग की पूजा को अपनाने लगे।

किन पत्र-पुष्पों से शिवजी की पूजा करने से क्या फल मिलता हैं; इसका परिचय देते हुए ब्रह्मा जी नारद जी से कहते हैं—कमल-पत्र, बेलपत्र, शतपत्र तथा शंखपुष्प से शिव का पूजन लक्ष्मीदायक है। पचास कमल पुष्पों का शिवजी पर चढ़ाना रोगनिवारक तथा पच्चीस सहस्र कमलों से की गई पूजा मनोवाञ्छित भार्या दायक है। मुक्ति का इच्छुक कुशा से, आयु का इच्छुक दूर्वा से, पुत्र का इच्छुक धतूरे से, प्रताप के लिए आक के फूलों से, शत्रुनाश के लिए जवा-पुष्पों से दरिद्रता से निवृत्ति के लिए कनेर पुष्पों से, सुख-समृद्धि के लिए हारसिंगार के फूलों से तथा शत्रु की मृत्यु के लिए राई के फूलों से शिवजी की पूजा अभीष्टदायक है। वस्तुत. चम्पा और केतकी को छोड़कर सभी पुष्प शिवजी को प्रिय हैं।

इतना सब सुनने के उपरान्त नारद जी ने शिवजी के अन्तर्हित हो जाने के बाद का वृत्त सुनाने का ब्रह्मा जी से अनुरोध किया। इस पर ब्रह्मा जी बोले—शिवजी के अन्तर्धान हो जाने पर मैंने हंस का और विष्णु जी ने वाराह का रूप धारण कर सृष्टि रचना पर विचार

किया। नारद द्वारा हंस और वाराह का रूप धारण करने के कारण

की जिज्ञासा का निवारण करते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं—हंस की ऊपर जाने की निश्चल गति होती है और तत्त्व-अतत्त्व के विभाग में उसकी क्षीर-नीर जैसी विवेकबुद्धि है तथा ज्ञान-अज्ञान के निर्धारण में वह सक्षम है अतः मैंने हंसरूप धारण किया। वाराह की नीचे जाने में निश्चल गति होती है, अतः विष्णु जी ने वाराह का रूप धारण किया।

नारद जी को सृष्टि रचना के विवरण से परिचित कराते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं कि शिवजी के अन्तर्हित होने पर विष्णु जी ब्रह्माण्ड से वाहर निकल वैकुण्ठ में चले गए। उस समय मैंने भगवान् शिव और विष्णु को प्रणाम कर सर्वप्रथम जल का निर्माण किया। उस जल में एक अञ्जलि डालकर चौबीस तत्त्वों वाला एक अण्ड प्रकट किया जो फिर विराट् हो गया। उस विराट् में चैतन्य लाने के लिए मैंने वारह वर्ष कठोर तप किया और इसके फलस्वरूप विष्णु जी ने अपने अनन्त रूप में उस अणु में प्रविष्ट होकर उसे चैतन्य प्रदान किया, उसके उपरान्त जब मैंने सृष्टि रचना की तो सर्वप्रथम अविद्या और तमःप्रधान पाप की सृष्टि ही मेरे सामने प्रकट हुई। उनसे मैंने स्थावरों की रचना की और पुनः मुख्य सृष्टि की रचना के लिए शिव-जी का ध्यान करने लगा। तब तिरछे चलने वाले जीव उत्पन्न हुए। उनसे असन्तुष्ट होकर मैंने सतोगुणी देवों की सृष्टि की परन्तु उससे भी कार्य साधन न होने पर शिवजी के आदेश तथा अनुमति से मैंने रजोगुणी मानवी सृष्टि की। इस प्रकार पञ्चविध—तामसी, स्थावर, तिर्यक्, देव तथा मानव—सृष्टि हो जाने के उपरान्त मैंने सर्गों की रचना का विचार किया।

नारद जी को सृष्टि रचना के विवरण से परिचित कराते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं—सर्गरचना का विचार करने पर सर्वप्रथम तीन सर्ग—महत्सर्ग, सूक्ष्मभौतिक सर्ग तथा वैचारिक सर्ग—उत्पन्न हुए। वैकारिक सर्ग से अष्टविध प्राकृतिक सृष्टि उत्पन्न हुई। इस प्रकृत्ति में विकृति आने पर अवर्णनीय कुमार सर्ग उत्पन्न हुआ। इसके उपरान्त द्विजात्मक सर्ग के अस्तित्व में आने पर मानसपुत्र सनकादि उत्पन्न हुए। अपनी वैराग्यभावना के कारण जब उन्होंने सृष्टिरचना के मेरे आदेश की अवज्ञा की तो मुझे क्रोध के साथ इतना अधिक दुःख हुआ कि नेत्रों में अश्रु आ गए। इस पर विष्णु जी ने प्रकट होकर मुझे सान्त्वना दी और भगवान् शिव का ध्यान करने का सत्परामर्श दिया। शिवजी के प्रति मेरे तप के फलस्वरूप मेरे भ्रू और नासिका

के मध्य से अर्द्धनारीश्वर, पूर्णांश, तेजोराशि, नीललोहित संज्ञा वाले भगवान् शिव आविर्भूत हुए और मेरी विनय पर अपने तुल्य रुद्रों की सृष्टि करने लगे। मैंने उनके समक्ष करबद्ध होकर मरणधर्मा मानवी सृष्टि करने की प्रार्थना की तो करुणानिधि देवाधिदेव महादेव ने दुःखसागर में निमग्न होने वाली अशोभन सृष्टि करने की अनिच्छा प्रकट थी। उन्होंने कहा कि मैं तो दुःखियों का उद्धारक हूँ, शरणागतों को तत्त्वज्ञान कराने वाला हूँ। अतः मैं तो ऐसा नहीं करूँगा, यह कार्य-सुख-दुःखमय प्रजा की सृष्टि—तुम (ब्रह्मा जी) स्वयं ही करो। हाँ, मेरी आज्ञा से इस कार्य में तुम्हें माया की बाधा नहीं होगी—यह वर देकर नीललोहित भवगान् अन्तर्धान हो गए।

ब्रह्मा जी बोले—इसके उपरांत मैंने पञ्चभूतों के पञ्चीकरण द्वारा पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, पर्वत, समुद्र और वृक्षादि की तथा कालादि से युगपर्यन्त कालों की सृष्टि की। इस पर भी असन्तुष्ट होने पर मैंने पुनः अम्बिका सहित भगवान् शिवजी का ध्यान किया और उनसे प्राप्त शक्ति के द्वारा नेत्रों से मारीचि को, हृदय से भृगु को, सिर से अंगिरा को, कर्ण से पुलह को, उदान वायु से पुलस्त्य, को समान वायु से वसिष्ठ को, अपान वायु से क्रतु को, श्रोत्र से अत्रि को, प्राण से दत्त को, क्रोड (गोद) से नारद (तुम्हें) को और अपनी छाया से कर्दम को उत्पन्न किया। इसके साथ ही मैंने सब साधनों के आधारभूत धर्म को अपने संकल्प से जन्म दिया और इस कार्य से मुझे परम सन्तुष्टि प्राप्त हुई।

इसके पश्चात् मैंने अपने को दो भागों—पुरुष और नारी—में विभक्त करके मनु (पुरुष) और शतरूपा (स्त्री) का रूप धारण किया और विवाह करके मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की। मनु के शतरूपा से दो पुत्र—प्रियव्रत और उत्तानपाद—तथा तीन पुत्रियाँ—आकूति देवहूति और प्रसूति— उत्पन्न हुईं। आकूति को रुचि ने, देवहूति को कर्दम ने और प्रसूति को दक्ष प्रजापति ने ग्रहण किया जिनकी सन्तानों से चराचर जगत् भर गया।

आकूति ने दक्षिणा और यज्ञ को और फिर यज्ञ ने दक्षिणा से बारह पुत्रों को जन्म दिया। देवहूति ने भी बहुत-सी सन्तानें उत्पन्न की और इधर दक्ष के चौबीस कन्याएँ हुईं जिनमें उसने तेरह कन्याएँ —श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति—यम को दे दीं और शेष ग्यारह कन्याओं

—ख्याति, प्रभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनुरूपा, स्वाहा और स्वधा —क्रमशः भृगु, भव, मरीचि, अंगिरा, पुलसत्य, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि और पितर—को व्याह दीं। इसके उपरान्त तो शिवजी की कृपा से असंख्य जातियों की उत्पत्ति हुई, जिनमें ब्राह्मण जाति सर्वोत्कृष्ट है।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! निर्गुण भगवान् शिव का वाम-अंग विष्णु, सत्य-अंग ब्रह्मा और उनका हृदय रुद्र है। इनके क्रम से ही तीन गुण—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—हैं। इनकी ही सतोगुणी माया सती, रजोगुणी माया सरस्वती और तमोगुणी माया लक्ष्मी है। शिवजी की सतोगुणी माया का सतीरूप में शिवजी से विवाह हुआ और पिता के यज्ञ में अपने पति रुद्र का भाग न देख कर उसने वहाँ तत्काल ही अपने प्राणों का त्याग कर दिया। देवताओं की प्रार्थना पर पुनः उसने हिमाचल के घर में पार्वती के रूप में जन्म लिया तथा कठिन तप से करके पुनः शिवजी को प्राप्त किया। इसके ही अनेक अन्य नाम—कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामदा, अम्बा, मृड़ानी तथा सर्वमंगला आदि—हैं। इस प्रकार इन तीनों देवियों ने इन तीनों देवों से मिलकर अनेक प्रकार की त्रिगुणमयी उत्तम सृष्टि उत्पन्न की। शिवजी की आज्ञा से ही मैंने इस सृष्टि की रचना की है। वास्तव में सत्य यह है कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ। कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता तो स्वयं भगवान् शंकर ही हैं, मैं तो उनकी आज्ञा का वाहक उनका सेवक-मात्र हूँ।

नारद जी बोले—पूज्य पितामह ! आप मुझ भगवान् शंकर के कैलाशगमन और वहाँ उनके द्वारा किए कृत्य बताने की कृपा करें।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद जी ! काम्पिल्य नगर में वेद-वेदांग का ज्ञाता, राज पुरोहित तथा यशस्वी यज्ञदत्त नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसका गुणनिधि नामक बेटा बचपन में ही कुसंग में पड़-कर द्यूत कर्म में प्रवृत्त हो गया और घर का सारा धन चुरा कर द्यूत में हारने लगा। दुर्भाग्य यह हुआ कि गुणनिधि की माता अपने पुत्र के दोष-दुर्व्यसन को अपने पति से छिपाने लगी। जब भी यज्ञदत्त गुणनिधि के सम्बन्ध में पूछता तो वह उसके विद्याध्ययन, देवपूजन आदि में व्यस्त होने का मिथ्याभाषण कर देती। यथासमय यज्ञदत्त ने गुणनिधि का विवाह कर दिया। गुणनिधि की माँ अब अपने पुत्र

को कुकर्मों से विरत होने तथा अपने वंशानुरूप शिक्षा प्राप्त करने की कहने लगी। उसने यह भी कहा कि उसके दुष्कर्मों का पता चलने पर उसके पिता जहाँ अत्यन्त दु:खी होंगे, वहाँ राजा उसके दुराचरण से उसकी जीविका भी समाप्त कर देगा। गुणनिधि पर इस शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह उलटे मदिरापान, चौर्य आदि अन्यान्य अनेक दुष्कर्म करने लगा। दिन-प्रतिदिन घर के सारे आभूषण, आदि चुरा कर अथवा माँ से छीन कर वह द्यूत में हारने लगा। माँ ने बालक के दोष छिपाने का दुष्परिणाम—उसकी असाध्य दशा—देख कर सिर पीट लिया।

एक दिन दैववश यज्ञदत्त ने अपनी एक अमूल्य अँगूठी एक द्यूतकार के हाथ में देखकर उस पर जब चोरी का अभियोग लगाया तो जुआरी ने सभी संकोच छोड़कर गुणनिधि का कच्चा चिट्ठा खोला तो यज्ञदत्त अपने पुत्र की करनी को सुनकर लज्जा से पानी-पानी हो गया। उसने घर आकर अपनी पत्नी से उस अँगूठी की माँग की व पत्नी की बहानेबाजी पर यज्ञदत्त प्रथम तो उसे भला-बुरा कहने लगा परन्तु बाद में अपने ही भाग्य को कोसने लगा। दु:खी हृदय से यज्ञदत्त इस प्रकार के कुलकलंकी पुत्र से पुत्रवान् बनने की अपेक्षा पुत्रहीन होने को ही अच्छा बताने लगा।

अपने पिता के विलाप-प्रलाप को सुनकर गुणनिधि अति लज्जित और चिन्तातुर हो उठा। वह घर छोड़कर अन्यत्र चला गया और भूख-प्यास से व्याकुल होकर अपने विद्या-गुणादि से रहित होने के लिए पश्चात्ताप करने लगा। साधनहीन और अभावपीड़ित उस गुणनिधि ने सायंकाल को पास के नगर से शिवरात्रि का व्रत धारण किए अपने बन्धु-बान्धवों और पूजा सामग्री सहित कुछ शिवभक्तों को शिवालय में जाते देखा तो वह उनके पीछे हो लिया। वहाँ शिवालय में गुणनिधि ने उन लोगों को पूजा करते पाया और मिष्ठान्नों की सुगन्ध से आकृष्ट होकर वह द्वार के बाहर इस आशा से बैठ गया कि इन लोगों की आँख लग जाने पर उस शिव-निर्माल्य को चुराकर क्षुधा-निवारण करूँगा। जब शिवभक्त नृत्य-गायन आदि करके सो गए तो गुणनिधि ने दीपक की मन्द लौ से अपना दुपट्टा बत्ती बनाकर जलाया और शिव-निर्माल्य की वस्तुओं को चुनकर शीघ्रता से ज्यों ही वह बाहर भागा, त्यों ही उसका पैर सोते हुए एक शिवभक्त से जा टकराया और वह भक्त 'चोर' 'चोर' का शोर मचाने लगा। अन्य

भक्तों ने जाकर उसका पीछा किया और पुर-रक्षकों के पकड़ने की चेष्टा में उसकी मृत्यु हो गई।

विना नैवेद्य खाए ही उसकी मृत्यु हो जाने पर यमदूत जब उसे पकड़ने आए तो शिवगणों ने उपस्थित होकर उनका विरोध किया और गुणनिधि को शिवलोक में ले जाने लगे; यमदूतों द्वारा उसके पापकर्म गिनाए जाने पर शिवगणों ने कहा कि इसने श्रद्धापूर्वक शिव-पूजन देखा है, शिवकीर्त्तन सुना है और अपने दुपट्टे को जलाकर दीप-दान किया है, अत: इसके पापकम उपरत हो गए हैं। यमदूत शिवगणों से पराजित होकर गुणनिधि को उन्हें सौंप कर धर्मराज के पास आ गए और उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन करने लगे। धर्मराज बोले—हे गणो! मैं अन्य सभी आज्ञाओं का उल्लंघन सहन कर सकता हूँ, परन्तु इस आज्ञा का उल्लंघन कदापि सहन नहीं कर सकता। वह आज्ञा यह है कि त्रिपुण्डधारी, श्वेत विभूति भस्मधारी, रुद्राक्षधारी एवं शिव में आस्थावान् को भूलकर भी यहाँ मत लाया करो। उन्हें सीधे शिवलोक में ही भेज देने का मेरा स्थायी आदेश है।

इधर गुणनिधि शिवलोक में पहुँच कर कुछ समय तक तो अनेक सुख भोगता रहा और पुन: कलिंगनरेश अरिंदम के घर 'दम' नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। बचपन से ही शिवभक्ति में अनुरक्त इस बालक ने पिता की मृत्यु के उपरान्त अपने प्रदेश के सभी शिवालयों में दीपदान का शासकीय आदेश निकलवा दिया और इस आदेश के उल्लंघन को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया। भगवान् शिव की कृपा से मरने पर दम (पूर्वजन्म का गुणनिधि) अलका देश का शासक बना। औढ़रदानी आशुतोष भगवान् शिव की कृपा का ही यह फल था कि निकृष्टकर्मा गुणनिधि का ऐसा उद्धार हो गया। ऐसे कृपालु शिव का भजन करना कितना ही पुण्य देने वाला है—इसके कहने की आवश्यकता नहीं।

अलकाधिपति बन कर तो दम (गुणनिधि) ने भगवान् शिव का इतना भावपूर्ण आराधन किया, ग्यारह हजार वर्षों तक इतना तप किया कि प्रसन्न होकर अम्बिकासहित भगवान् शंकर उसे वर देने स्वयं अलकापुरी पधारे और अपने ध्यान में लीन गुणनिधि को नेत्रोन्मीलन कर अपने दर्शनों से कृतकृत्य होने को कहने लगे। नेत्र खोलने पर उसने भगवान् शंकर और भगवती उमा को देखा। उमा के रूप-सौन्दर्य तथा सौभाग्य के प्रति कुदृष्टि रखने के कारण उसका वाम

नेत्र फूट गया। उसने सव्य नेत्र से अपने प्रति घूरते देख उमा ने शिवजी की ओर जिज्ञासापूर्वक देखा तो शिवजी ने उसे बताया कि यह तुम्हारा पुत्र है और तुम्हारे सौभाग्य की प्रशंसा कर रहा है। इसके पश्चात् भगवान् शिव ने उसे यक्षपति कुवेरे बनने का वर दिया और उसके अलकापुरी के निकट कैलाश पर ही अपने स्थायी निवास के निर्णय की घोषणा की। शिवजी गुणनिधि से उमा के चरण-स्पर्श करने को कहा और उसके वैसा करने पर उमा ने उसे शिवभक्ति का वरदान दिया तथा ही साथ कहा कि मेरे रूप के प्रति तुम्हारे द्वेष के कारण तुम्हारा फूटा नेत्र पीतवर्ण हो जाएगा और तुम्हारा नाम कुबेर होगा। इस प्रकार भगवान् शिव ने अपने भक्त को अनुग्रहीत करते हुए उसके निवास के पास कैलाश को अपना स्थायी आवास बनाया।

भगवान् शिव के आदेश पर विश्वकर्मा ने स्वयं उनके तथा उनके सभी गणों के लिए कैलाश पर सुन्दर, सुविधाजनक आवासों आदि का निर्माण किया। भगवान् अपने सभी गणों सहित वहाँ आकर रहने लगे। कभी वे आत्मस्थ होकर योगलीन हो जाते, कभी विहार करते और कभी अपने गणों से इतिहास चर्चा करते। इस प्रकार कैलाश पर रहकर शिवजी विविध लीलाएँ करने लगे।

सती खण्ड

देवर्षि नारद ने ब्रह्मा जी से पूछा कि आपने प्रथम कैलाशवासी रुद्र को शंकर जी के पूर्णांशों वाला तथा विष्णु आदि देवों से सेवित साक्षात् निर्विकार ब्रह्म बताया है। ऐसे रुद्र ने विष्णु जी की प्रार्थना पर सती से विवाह करके किस प्रकार गृहस्थ को अपनाया ? ये सती और पार्वती एक ही शरीर से दो स्थानों पर कैसे उत्पन्न हुई और फिर वह सती पार्वती रूप में पुन: शिवजी को कैसे प्राप्त हुई ? यह सब तथा अन्य समग्र शिव-चरित्र आप मुझे सुनाने की कृपा कीजिए।

ब्रह्मा जी बोले—नारद जी! जब मैं कामवश प्रगत होकर अपनी कन्या सन्ध्या से मैथुन की इच्छा करने लगा तो धर्म द्वारा स्मरण किए जाने पर भगवान् शिव ने प्रकट होकर मुझे प्रबोधित किया। अपने पुत्रों के सामने धिक्कृत और अपमानित किए जाने पर शिवजी की माया से विमोहित मुझमें प्रतिशोध की भावना बद्धमूल हो गई परन्तु पुत्रों के साथ बहुत विचार-विमर्श करने पर भी मैं शिवजी से बदला लेने का कोई उपाय न निकाल सका। भगवान् विष्णु ने मुझे समझाने का बड़ा प्रयास किया, परन्तु शिवजी की माया के प्रभाव से मैं अपनी जिद्द पर डटा रहा। भगवान् शिव को मोहित करने के लिए दक्ष की स्त्री से शक्ति के जन्म लेने के लिए मैं शक्ति की उपासना करने लगा। मेरी साधना सफल हुई। शक्ति ने दक्ष के घर उमा के रूप में जन्म लिया और उसने कठोर तप करके रुद्र का वरण किया। उमासहित शिवजी कैलाश पर विहार-क्रीड़ा करने लगे।

शिवजी की माया से विमूढ़चित्त दक्ष मदोन्मत्त और शिवनिन्दक हो गया। उसने एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें अन्य सभी देवों को आमन्त्रित किया, परन्तु शिवजी को न तो न्योता दिया गया और न ही उनका वहां भाग रखा गया। उस अभिमानी ने अपनी

पुत्री तक को भी निमन्त्रण नहीं भेजा। उमा फिर भी शिवजी से अनुमति लेकर पिता के यज्ञ में पहुँची और वहाँ पति के अपमान को न सहन कर सकने के कारण उसने अपने शरीर को वहीं यज्ञाग्नि को समर्पित कर दिया। भगवान् शिव ने यह सब सुनते ही अपनी जटा से वीरभद्र को उत्पन्न करके उसे यज्ञ विध्वंस करने का आदेश दिया। वीरभद्र ने शिवजी के आदेशानुसार सभी उपस्थित ब्रह्मा-विष्णु आदि देवों को पराजित करके दक्ष का शिरश्छेद कर दिया।

सब देवताओं द्वारा उपस्थित होकर अनुनय-विनय करने पर भगवान् शिव प्रसन्न हुए और उन्होंने दक्ष को पुनर्जीवित कर दिया। तब दक्ष ने अपनी गलती को सुधारते हुए शिवजी का आराधन किया और फिर यज्ञ सम्पन्न हुआ। सती की देह से उत्पन्न ज्वाला जिस स्थान पर गिरी, उसी का नाम ज्वालामुखी पर्वत है, जिसका दर्शन पापनाशक है। यही सती हिमाचल के घर पार्वती रूप में उत्पन्न हुई और शिव की आराधना करके उसने पुनः उन्हें प्राप्त किया।

नारद जी ने यह सब सुनकर अपने पिता ब्रह्मा जी से सती सहित शिवजी के अद्भुत चरित्रों—दक्ष के घर सती की उत्पत्ति, शिव से उसके विवाह की इच्छा, हिमाचल के घर उसका पुनर्जन्म, उस जन्म में भी शिव से उसका विवाह तथा मदनदाहक शिव के अर्धशरीर में उसकी स्थिति आदि—का विस्तृत विवरण देने का अनुरोध किया। इस पर ब्रह्मा जी ने स्वयं विष्णु जी से सुने हुए और विष्णु जी के साक्षात् शिवजी से सुने हुए सती-शिव के आख्यान को नारद जी को सुनाना प्रारम्भ किया।

सर्वप्रथम निर्गुण, निर्विकार, सत्-असत्, अतीत, सदाशिव, भगवान् के वामांग से विष्णु की, सत्यांग से मेरी (ब्रह्मा जी) और हृदय से रुद्र की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार एक सदाशिव ही त्रिमूर्त्ति हो गए। मैंने शिवजी के आदेश से सृष्टि रचना की। मेरे मन से सन्ध्या नामक एक ऐसी रूपवती स्त्री उत्पन्न हुई, जिस पर मैं और मरीचि आदि मेरे पुत्र मुग्ध हो गए। इसी मध्य मेरे मन से एक अत्यन्त रूपवान् और सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके उत्पन्न होते ही हम सबका मन विकृत हो गया और हम सब सन्ध्या के प्रति कामातुर हो उठे। उत्पन्न पुरुष ने मुझे प्रणाम किया और मुझसे अपने योग्य स्थान तथा कार्यादि पूछा। मैंने कुछ देर विस्मयविमुग्ध रहने के पश्चात् उसका निवास

प्राणियों का हृदय और उसका कार्य सृष्टि-रचना में सहायक होना

बताया। मैंने उसे यह भी कहा कि मेरे सहित विष्णु, रुद्रादि सभी देवता उसके वश में रहेंगे। मेरे पुत्रों ने उसके मन्मथ, मदन, कन्दर्प अनंग, कामदेव तथा पुष्पधन्वा आदि नाम रखे।

कामदेव ने पाँच अस्त्रों—हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण—के प्रभाव की परीक्षा के लिए उनका प्रयोग छोड़ दिया। उन बाणों के प्रभाव से मैं तथा मेरे पुत्र मोहित होने से न बच सके। सन्ध्या में भी कामवासना उत्पन्न हो गई। कामदेव ने हम सबको अपने वश में देखा तो उसे अपनी शक्ति का विश्वास हो गया। इधर धर्म ने हमें विकृत होते देख भगवान् शिव का स्मरण किया। शिवजी ने प्रकट होकर अपनी कन्या में मेरी कामवासना को वेद-विरुद्ध बताकर हमारी भर्त्सना की। उन्होंने हमें प्रबोधित करते हुए बताया कि वेदों की आज्ञा है कि माता, बहिन, भाई की स्त्री और पुत्री में कभी कुदृष्टि नहीं रखनी चाहिए। वेदों को प्रगट करने वाले तुम ब्रह्मा और एकान्त योगी मरीचि आदि ऋषि इस पापकर्म में कैसे प्रवृत्त हो गए? शिवजी के वचनों को सुनकर मैं पानी-पानी हो गया। मैंने कामवासना पर बलपूर्वक काबू पाया। उस समय स्वेद के रूप में मेरे वीर्य के गिरने से अग्निष्वात आदि पितर तथा बर्हिषद् उत्पन्न हुए। दक्ष के स्वेदपात से रति नाम की एक रूपसी कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार भगवान् शिव हमें पतन से बचाकर अन्तर्धान हो गए।

विवेक जाग्रत होने पर मैंने अपनी विकृति के लिए काम को उत्तरदायी मानते हुए उसे शिवजी की नेत्राग्नि से भस्म होने का शाप दे दिया। काम ने भयग्रस्त होकर अपने को निर्दोष बताते हुए मुझे मेरा वरदान—ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि सहित सभी देवों के उसके प्रभावाधीन रहना—स्मरण कराया। तब मैंने क्रोध में दिए गए शाप को अमिट बताते हुए शिवजी के विवाह के उपरान्त उसे पुनः शरीर मिलने की बात बता कर सन्तुष्ट किया।

दक्ष ने कामदेव से अपनी पुत्री रति के वरण की प्रार्थना की। रति के सौन्दर्य पर आसक्त कामदेव ने ब्रह्मा जी के शाप को भुला दिया और रति से विवाह कर आनन्दोपभोग करने लगा।

सन्ध्या के आख्यान को सुनाते हुए ब्रह्मा जी बोले—सन्ध्या अपने को ही मेरी (ब्रह्मा की) कामवासना का, शिवजी द्वारा किए गए मेरे अपमान का और काम को मेरे द्वारा दिए गए शाप का कारण मान कर बहुत व्याकुल हो उठी। उसने प्रायश्चित द्वारा इन से मुक्त

की स्थापना का निश्चय किया कि जिससे कभी किसी पुत्री में पिता की तथा पिता में पुत्री की कामासक्ति हो ही न सके।

इस निर्णय के अनुसार सन्ध्या चन्द्रभागा नदी के समीपस्थ पर्वत पर तप करने लगी। मैंने वसिष्ठ को रूप बदलकर सन्ध्या को दीक्षा देने का आदेश दिया। रूप बदलने का कारण दीक्षागुरू में श्रद्धा उत्पन्न करना था। वसिष्ठ के पूर्वचरित्र के कारण सन्ध्या की उसमें आस्था उत्पन्न नहीं हो सकती थी। वसिष्ठ जी ने ब्रह्मचारी का वेश धारण कर सन्ध्या को दीक्षा दी और उसे समग्र तपोविधान से परिचित किया। 'ओम् नमः शिवाय ओम्" मन्त्र का मौन जप करती हुई वह घोर तपस्या करने लगी। सन्ध्या की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने सन्ध्या को दर्शन दिए। संध्या द्वारा प्रसन्न मन से स्तुति किए जाने पर शिवजी ने उससे वर माँगने का अनुरोध किया। सन्ध्या ने निम्नलिखित वर माँगे :—

(१) प्राणी उत्पन्न होते ही कामवासना में लिप्त होने वाले न हों।

(२) मेरा पति मुझे निश्चय ही प्रिय हो।

(३) मुझे काम दृष्टि से देखने वाला नपुंसक हो जाए।

शिवजी ने 'तथास्तु' कहते हुए घोषित किया कि अब से मनुष्य की तीन अवस्थाएँ—बालकपन, कैशोर्य तथा युवा होंगी और कैशोर्य की समाप्ति तथा यौवन के प्रारम्भ के उपरान्त ही प्राणियों में कामवासना जागृत हुआ करेगी। जन्म से प्राणी कामी न होंगे।

तुम्हारा पति तुम्हारा ही अनन्य प्रमी होगा तथा तुम्हारे पति के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति तुम्हारे प्रति कामवासना रखने पर नपुंसक और पतित हो जाएगा। अगले जन्म में तुम मेधातिथि की पुत्री बन कर अभीष्ट वर को प्राप्त करोगी। यह कह कर शिवजी अन्तर्धान हो गए और इधर सन्ध्या ने यज्ञाग्नि में अपने प्राणों का विसर्जन कर दिया।

सूर्य ने उस अग्निदुत सन्ध्या के दो भाग किए। ऊपर का भाग प्रातःकाल की और नीचे का भाग सायंकाल की सन्ध्या हुआ। जिस यज्ञाग्नि में सन्ध्या ने प्राणविसर्जन किए थे, वहाँ से एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई, जिसका अरुन्धती नाम रखकर मेधातिथि ने पालन-पोषण किया तथा यथासमय वसिष्ठ के साथ उसका विवाह कर दिया।

ब्रह्माजी बोले हे नारद ! शिवजी के अन्तर्धान हो जाने पर मैंने

अपने दक्षादि पुत्रों से शंकर जी द्वारा किए गए अपमान का प्रतिशोध लेने का उपाय ढूँढने को कहा। कामदेव के प्रति मैंने बड़ी आशा से देखा और उससे शिवजी को मोहित करने का अनुरोध किया। कामदेव के कहने पर मैंने वसन्त को उसका साथी बनाकर शिवजी के चित्त में विकार उत्पन्न करने के लिए उसे रवाना किया। कामदेव ने अपनी सारी विद्या, कला, चातुरी और माया का प्रयोग शिवजी पर किया परन्तु वह उनके मन को विक्षिप्त करने में समर्थ न हो सका। निराश लौटकर उसने अपनी असफलता की सूचना मुझे दी। इस पर चिंतित होकर मैंने सहायता के लिए विष्णु जी का स्मरण किया और उनके प्रकट होने पर उन्हें अपनी सारी दुःखपूर्ण गाथा कह सुनाई। विष्णु जी ने शिवजी के साथ ईर्ष्या-द्वेष न रखने की मुझे उत्तम राय दी और मेरे दुराग्रह पर मुझे शिवजी को सस्त्री बनाने के लिए शिवा की उपासना करने को कहा। उन्होंने आगे कहा कि स्वयं शिवजी ने ही उन्हें बताया था कि उनके रुद्ररूप धारण करने पर सती उनकी पत्नी होगी।

इसके उपरान्त जगदम्बिका शिवा देवी को तप द्वारा प्रसन्न कर के मैंने उससे दक्ष की पुत्री होकर शिव जी की पत्नी बनने की प्रार्थना की। भगवान् शिव को मोहित करने की मेरी दुश्चेष्टा के लिए शिवा ने प्रथम मेरी भर्त्सना की और पुनः किए गए मेरे तप के गौरव से मेरा निवेदन स्वीकार कर लिया। इधर मेरे अनुरोध पर दक्ष ने भी कठोर तप द्वारा शिवा को प्रसन्न करके उनसे अपनी पुत्री के रूप में जन्म लेने और शिव की पत्नी बनने का वर प्राप्त किया।

दक्ष प्रजापति मानसी सृष्टि से भी प्रजावृद्धि होते न देख कर ब्रह्मा जी के पास गए और उनकी आज्ञा से दक्ष ने असिक्नी से विवाह करके मैथुन द्वारा हर्यश्व नाम के दस हजार समान धर्मशील और गुण वाले बालक उत्पन्न किए और उन्हें दक्ष ने सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया। हर्यश्वों ने प्रथम सिन्धु तट पर स्थित नारायण तीर्थ में भगवान् का ध्यान करने का अपना निश्चय प्रकट किया और पिता को प्रणाम करके वे सब उधर ही चल पड़े। वहाँ उनका नारद जी से मिलन हुआ, जिन्होंने उन हर्यश्वों को संसार को दुःखमय तथा ब्रह्म-प्राप्ति को सच्चा सुख बताते हुए ज्ञानोपदेश दिया, जिससे वे प्रजोत्पत्ति के विचार से विरत होकर तपोरत हो गए।

दक्ष को जब इस सारी घटना का पता चला तो उसने 'सबलाश्व-

गण' नामक एक सहस्र अन्य पुत्रों को उत्पन्न करके उनसे प्रजोत्पत्ति के लिए कहा। उन्होंने भी दक्ष से प्रथम ईश्वर चिन्तन करने का अपना निश्चय प्रकट किया। नारद जी ने उनसबको भी सत्यज्ञानोपदेश देकर सांसारिकता से विरत कर दिया।

शिवजी की प्रबल माया से मोहित दक्ष को जब इस तथ्य का पता चला तो वह विक्षुब्ध हो उठा और उसने तीन ऋणों—पितृ ऋण, आचार्य ऋण और ऋषि ऋण—को चुकाए बिना ही हर्यश्वों और सबलाश्वगणों को संसार से विरक्त करने के अनौचित्य के लिए नारद को एक स्थान पर स्थिर न रहने का शाप दे दिया।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! इसके उपरान्त दक्ष ने साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। इनमें दस कन्याओं का धर्म से, तेरह का कश्यप मुनि से, सत्ताईस का चन्द्रमा से, दो-दो का भूत, अंगिरा और वृशाश्व से, तथा शेष का गरुड़ जी से विवाह कर दिया और इन कन्याओं की प्रजाओं से चराचर व्याप्त हो गया।

समय आने पर भगवती शिवा ने प्रदत्त वर की रक्षा करते हुए असिक्नी के उदर में प्रवेश किया। दक्ष दम्पत्ति ने विधिपूर्वक पुंसवन आदि संस्कार किए और प्रयत्नपूर्वक गर्भ की भी रक्षा की। यथासमय भगवती ने जन्म लिया, जिससे चारों ओर असीम आनन्द का मनोहारी वातावरण छा गया। हर्यश्व आदि देवों ने उपस्थित होकर भगवती का स्तवन किया और दक्ष के सौभाग्य की सराहना की।

शिवा बाललीला करती हुई धीरे-धीरे बढ़ने लगी और समय आने पर युवति हो गई। अब दक्ष यह चिन्ता करने लगा कि देवी को पतिरूप में शिव की प्राप्ति कैसे हो। पिता की चिन्ता को देखते हुए शिवा ने माता से अनुमति लेकर भगवान् शिव को ही पतिरूप में पाने के लिए घर में ही नन्दाव्रत किया, जिसकी विधि इस प्रकार है:

—अश्विनमास नन्दा तिथि को गुड़, चावल, नमक आदि से शंकर जी का पूजन।

—कार्त्तिक मास की चौदस तिथि को खीर और पुए आदि से पूजन और भजन।

—अगहन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन जौ, तिल, चावल से पूजन और निरन्तर आराधन।

—पौष मास की शुक्लपक्ष की सप्तमी की रात्रि को जागरण और प्रातः खिचड़ी से शिवजी का पूजन।

—माघ मास की पूर्णिमा को रात्रि जागरण और गीले वस्त्रों से नदी तट पर भजन।

—आश्विन से—भाद्रपद मास तक अनेक प्रकार के फलों, पुष्पों, दूब, बेलपत्र आदि ऋतुसुलभ द्रव्यों से निष्ठांपूर्वक शिव का आराधन।

शिवा विधिपूर्वक इस नन्दाव्रत (मनचाहा पति देने वाला व्रत) का उद्यापन करके शिवजी के ध्यान में तन्मय हो गई। उसके इस व्रत से ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता प्रसन्न हुए और शिवा के अभीष्ट साधन के लिए सपत्नीक कैलाश की ओर चल दिए। वहाँ जाकर श्रेष्ठ देवों ने लोक-लोकेश्वर भगवान् भूतभावन को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और विविध स्तुतियों द्वारा उन्हें प्रसन्न किया।

शिवजी ने सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी होते हुए भी हमसे हमारे आने का जब कारण पूछा तो हे नारद जी ! मैंने उनसे निवेदन किया कि हे देवाधिदेव ! आपकी सहायता के बिना मेरे लिए सृष्टि की रचना सम्भव नहीं। जब तक आप असुरों का संहार नहीं करेंगे, तब तक उत्पातों का शमन नहीं होगा और नई सृष्टि के लिए अवकाश नहीं रहेगा। आपने रुद्ररूप में जो अवतार धारण किया है, उसका अपने ही कर्मभेद से रूपभेद का तत्त्व हमें समझाया था। सृष्टिकर्त्ता होने से मैं ब्रह्मा, पालक होने से यह विष्णु और संहर्त्ता होने से आप रुद्र, वस्तुत: आप शिव की ही तो तीन रूप (मूर्त्तियाँ) हैं। हे परात्पर शंकर ! हम दोनों पत्नीधारी हो गए हैं, अब आप भी गृहस्थ बनें—यही हम सबका आपसे विनम्र निवेदन है और इसलिए हम सब यहाँ आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। विष्णु जी ने भी मेरी इस बात का समर्थन किया और शिवजी के विवाहोत्सव देखने की उत्सुकता प्रकट की।

शिवजी ने कहा कि मैं तो योगी हूँ और योग में ही मुझे आनन्द मिलता है। योगी को भोग का क्या काम ? इतने पर भी मैं भक्तों की भावना का अनादर नहीं करता परन्तु क्या आप लोगों की दृष्टि में ऐसी कोई कन्या है जो मेरे तेज को सहन कर सके और मेरी इच्छानुसार भोगिनी और योगिनी बन सके। इस पर मैंने शिवजी महाराज से दक्षपुत्री उमा के घोर तप और पूर्ण योग्यता का वर्णन किया। परम कृपालु शिवजी ने हमारा अनुरोध स्वीकार करते हुए हमें कृतकृत्य कर दिया। हम सब प्रसन्नचित्त अपने-अपने लोक को लौट

आए।

उमा ने पुन: नन्दाव्रत का आश्रय लिया, जिसके फलस्वरूप शिवजी उसके समक्ष प्रकट होकर वर माँगने का अनुरोध करने लगे। लज्जावश उमा मुख से कुछ भी न वोल सकी। भगवान के दर्शनों से मुग्ध होकर चातकी के समान उनकी रूपसुधा का ही पान करती रह गई। इस पर जव शिवजी ने पुन: वर माँगने के लिए कहा तो उमा यही कह पाई—जो आपको रुचिकर हो, वही वर दीजिए। इस पर शिवजी ने उमा को अपनी अर्द्धभंगिनी वनने का वर दिया। हर्षोल्लसित उमा ने वैदिक विधि द्वारा उसे उसके पिता से माँगने का शिवजी से निवेदन किया। इस पर शिवजी ने मुझे दक्ष के पास कन्या माँगने के लिए भेजा। दक्ष ने मेरा यथोचित स्वागत करते हुए मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया।

ब्रह्मा जी वोले—हे नारद ! मैंने शिवजी के पास जाकर दक्ष के निर्णय की उन्हें सूचना दी। मेरे अनुरोध पर शिवजी ने शुभ मुहूर्त निकलवा कर और विष्णु जी, मेरे मरीचि आदि पुत्रों तथा अपने गणों को आमन्त्रित करके चैत्रशुक्ल त्रयोदशी रविवार के दिन फाल्गुनी नक्षत्र में दक्ष के घर की ओर प्रस्थान किया। दक्ष ने वड़ी आदर भावना से वरात का स्वागत-सत्कार किया। दक्ष ने वैदिक विधि से कन्यादान किया और शिवजी ने उमा का पाणिग्रहण किया। उपस्थित देवमण्डली में सर्वत्र हर्ष छा गया और सभी नवदम्पती का अभिनन्दन करने लगे।

ब्रह्माजी वोले—हे नारद ! जव शिवजी और सती विवाह मण्डप में यज्ञवेदी पर वैठे थे तो सती की रूपाभा को देखने के लिए मैं उत्सुक ही नहीं अपितु आकुल-व्याकुल हो उठा। मैंने सती के मुख को देखने की वहुत चेष्टा की परन्तु उसका घूँघट इतना सुदृढ़ था कि मुझे सफलता नहीं मिल सकी। अपनी कामुकता पर संयम न रख पाने के कारण मैंने यज्ञकुण्ड में गीली समिधाएँ डाल कर धुआँ उत्पन्न कर दिया और इस प्रकार सती को मुख से घूँघट हटाने को विवश कर दिया। सती के अनावृत्त मुख को देखते ही मेरा वीर्य-पात हो गया। मैंने छिपाने की वहुत चेष्टा की परन्तु सर्वज्ञ सदाशिव से मेरा कुकृत्य छिप न सका। फलत: वे अपना त्रिशूल उठाकर मुझे मारने के लिए दौड़े। मेरे व मारीचि आदि पुत्रों के हाहाकार करने पर दक्ष मेरी सहायता को आए परन्तु उसका कोई भी सुफल न निकला। अन्तत:

विष्णु जी द्वारा बहुत गिड़गिड़ाने तथा विनम्र भाव से स्तवन करने पर शिवजी का क्रोध शान्त हुआ। मैंने जब भगवान् शंकर की अनेक स्तोत्रों से स्तुति करते हुए प्रायश्चित का उपाय पूछा तो शिवजी मुझ ब्रह्मा के सिर पर जा बैठे और इसी रूप से उन्हें मनुष्य बन कर पृथ्वी पर विचरण करने को कहने लगे ताकि तुम्हें मुझे इस रूप में देखकर पृथ्वी के प्राणी परस्त्रीगमन के विचार से सदा विरत रहें। इस दण्ड को मेरे द्वारा शिरोधार्य करने पर आशुतोष भगवान् शंकर प्रसन्न हो गए और मुझ पर पूर्ववत् अनुग्रह करने लगे। इस घटना के उपरान्त शिवजी दक्ष से अनुमति लेकर सतीसहित अपने कैलाश लोक को आ गए और देवों को विदाई देकर वहाँ विहार करने लगे।

कैलाश पर रहते हुए एकान्त में शिवजी सती के साथ रमण करने लगे। कभी मनोरम पुष्पमाला सती को पहनाते तो कभी दर्पण में मुख देखती सती के पीछे जाकर खड़े हो जाते। कभी उसके उन्नत पयोधरों पर दृष्टि गाड़ते तो कभी उसके कपोलों के स्पर्श की इच्छा से कर्णकुण्डलों को हाथ लगाते। कभी उसका हार ही उठा लेते और कभी बाजूबन्द। कभी भीति से उसका आलिंगन करते तो कभी स्मित हास्य बिखेरते। इस प्रकार पचीस वर्षों तक शिवजी सती के साथ आनन्दपूर्वक रमण करते रहे। बाद में सती की इच्छा से शिवजी हिमालय के उस सुरम्य एवं अपरूप छटा वाले स्थान पर चले गए जहाँ मनुष्यों की तो क्या, पक्षियों तक की गति नहीं है।

एक दिन सती ने शिवजी को प्रसन्न-मन जानकर उनसे पूछा—हे प्रभो! विषयी जीव की परमपद प्राप्ति का उपाय क्या है? यह आप बतलाने की कृपा करें। शिवजी बोले—देवि! जीव की सद्गति के दो ही उपाय हैं :—(१) ब्रह्म का ज्ञान और (२) ब्रह्म का स्मरण। ज्ञान तो दुर्गम है क्योंकि परात्पर ब्रह्म ज्ञानातीत है। ज्ञान का साधन भी स्मरणमूलक भक्ति है। भक्ति विरोधी जीव ब्रह्म तत्त्व को कभी नहीं जान सकता। निर्गुण ब्रह्म की भक्ति उत्तम तो है परन्तु क्लिष्ट होने के कारण सर्वजन सुलभ नहीं। एकमात्र सगुण भक्ति ही सुगम और सर्वजनसुलभ साधन है, जिसे अपनाकर अधम जीव भी आत्मकल्याण कर सकता है। भक्ति के अन्तरायों का विनाश कर भक्त के सिद्ध मार्ग में मैं उसका सहायक बनता हूँ। इस प्रकार भक्ति ही परम विज्ञान है।

नारद जी के अनुरोध पर शिवजी के परम पावन चरित्रों के

वर्णन के अन्तर्गत ब्रह्माजीउन्हें शिवजी द्वारा सती के त्याग की कहानी सुनाते हुए बोले—हे नारद ! एक समय त्रिलोक भ्रमण करते हुए शिवजी सती के साथ दण्डक वन में जा पहुँचे, वहाँ श्रीराम सामान्य संसारी जनों के समान वियोगातुर होकर खग-मृगों से सीता का परिचय पूछते हुए विचर रहे थे। भगवान् शंकर ने आगे बढ़ कर उन्हें ज्यों ही प्रणाम किया त्यों ही सती शिवमाया से विमोहित हो गई। उसने त्रिलोकीनाथ भगवान् शंकर द्वारा पत्नीवियोगपीड़ित एक अज्ञ एवं साधारण मनुष्य को प्रणाम करने पर आश्चर्य प्रकट करते हुए शिवजी से पूछा—स्वामिन् ! यह कैसी विडम्बना है कि स्वामी सेवक को प्रणाम कर रहा है? आपके श्रेष्ठ विधान में यह नियम विपर्यय कैसा? शिवजी बोले—देवि ! वस्तुत. श्यामवर्ण वाले राम विष्णु के और गौरवर्ण वाले लक्ष्मण शेष जी के अवतार हैं। मेरी आज्ञा से पृथ्वी का भार हरण करने के लिए ये लीला कर रहे हैं और मैंने इन्हें दिए गए एक वरदान के कारण ही प्रणाम किया है। यदि मेरी बात पर विश्वास न हो स्वयं जाकर परीक्षा कर लो, तब तक मैं, इस वटवृक्ष की छाया में, तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूँ।

शिवमाया विमोहित सती ने अवसर पाते ही राम की परीक्षा लेने का निश्चय किया। सोच-विचार कर वे सीता का वेश धारण कर राम के समक्ष उपस्थित हुईं। राम ने तत्काल उसकी वास्तविकता को पहचान कर उन्हें प्रणाम किया और अकेले विचरण करने तथा सीता का वेश धारण करने का कारण पूछा। सती ने अपने सन्देह की बात बताते हुए राम को विष्णु का अवतार स्वीकार किया और उनसे त्रिलोकीनाथ शिव द्वारा उन्हें प्रणाम किए जाने का रहस्य बताने का अनुरोध किया।

भगवान् शंकर का स्मरण करते हुए राम ने सती को बताया कि एक समय भगवान् शंकर ने विश्वकर्मा द्वारा एक मनोहर, विस्तृत भवन और उसमें एक दिव्य सिंहासन तथा एक अद्भुत, दिव्य श्रेष्ठ छत्र बनवाया। सभी आमन्त्रित देवों, मुनियों, ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों तथा किन्नरों की उपस्थिति में वैकुण्ठवासी विष्णु को उस पर आसीन किया। भगवान् शिवजी ने विष्णु जी को उस आसन पर बिठाकर अभिषिक्त करते हुए अपना अखण्ड ऐश्वर्य उन्हें प्रदान किया तथा उन्हें सृष्टि का कर्त्ता-भर्त्ता-संहर्त्ता बनाते हुए अनेक अवतार लेने वाला बनाया। शिवजी ने विष्णु को यह भी वर दिया कि पृथ्वी पर

उनके सभी अवतारों का शिवभक्त सम्मान करेंगे। हे देवि ! मैं उसी विष्णु का अवतार हूँ और भगवान् शंकर ने अपने दिए उसी वरदान के गौरव से ही मेरे प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है। पिता की आज्ञा से मैं वन में आया हूँ और यहाँ किसी राक्षस ने मेरी पत्नी का हरण करके मुझे वियोगी बना दिया है। अब आपके और भगवान् शंकर के पुण्य दर्शनों से मुझे अपनी पत्नी की प्राप्ति का विश्वास दृढ़ हो गया है।

श्रीराम के द्वारा इस प्रकार समर्चित-सम्मानित होकर सती सन्तुष्ट मन से शिवजी के पास लौट चली परन्तु अब उसे यह चिन्ता सताने लगी कि शिवजी के समक्ष इस घटना का विवरण किस रूप में प्रस्तुत किया जाय और पति के वचनों पर विश्वास न करने के पातक का प्रक्षालन किस रूप में किया जाए ? इसी चिन्ता में आकुल सती ज्यों ही शिवजी के पास पहुँची तो शिवजी ने मुस्करा कर परीक्षा लेने के सम्बन्ध में पूछा। इस पर सती ने बात को टाल दिया। तब सर्वज्ञ शिवजी ने ध्यानस्थ होकर परोक्ष का प्रत्यक्ष दर्शन किया और सीता वेशधारिणी सती को अपनाने से प्रतिज्ञा भंग होने की आशंका से वे चिंतित हो उठे। सती को त्यागने के शिवजी के निश्चय की जब सर्वत्र प्रशंसा होने लगी तो सती को रहस्य विदित हुआ और वह कान्तिहीन हो उठी। शिवजी ने स्पष्ट शब्दों में अपना प्रणन बताते हुए भी सती के क्षोभ को दूर करने के लिए उसे अनेक प्राचीन आख्यान सुनाए। कैलाश पर पहुँच कर शिवजी ध्यानस्थ होकर आत्मलीन हो गए और सती खिन्न-मन से उनके निकट बैठी रही। समाधि खुलने पर शिवजी ने नतमस्तक सती को पुनः अनेक कथाएँ सुनाईं और उनके हृदय के सन्ताप को दूर करने का भी प्रयास किया परन्तु अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोडी। इसे अज्ञानी लोग शिव-पार्वती का वियोग मान लेते हैं परन्तु ज्ञानीजन, शिवमाया का ही सर्वत्र प्रवर्तन मानते हुए, इसे भी उनकी इच्छा जानकर 'वियोग' की बात ही नहीं सोचते। वस्तुतः शिवचरित्र विलक्षण है, इसे तो विरले तत्त्वज्ञानी ही जान-समझ सकते हैं।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! पूर्वकाल में मुनियों ने एकत्र होकर प्रयाग में एक महान् यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ में मैं भी सपरिवार सम्मिलित हुआ। अपने गणों और सती के साथ भगवान् शंकर भी उस यज्ञ में पधारे। सबने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और

उनके दर्शनों से अपने को कृतकृत्य अनुभव किया। शिवजी के आसनासीन हो जाने के उपरान्त दक्ष जी भी वहाँ पहुचे और मुझे प्रणाम कर वैठ गए। उपस्थित सभी ऋषि-मुनियों ने प्रजापतियों के स्वामी दक्ष की पूजा-वन्दना की। परन्तु लीलाविहारी परमस्वतन्त्र महेश्वर अपने आसन पर ही बैठे रहे। उनके इस व्यवहार पर क्रुद्ध होकर दक्ष ने पुत्रवत् होने पर भी अपने को प्रणाम न करने के लिए उनकी भर्त्सना की, उन्हें अपशव्द कहे और देवों के वर्ग से उन्हें वहिष्कृत करने की घोषणा की। दक्ष के इस व्यवहार पर नन्दीश्वर को भी क्रोध आ गया और उसने शंकर की अवज्ञा के लिए उत्तरदायी भृगु आदि ऋषियों को शाप दे डाला—"तुम सव ब्राह्मण देव का वास्तविक अर्थ समझने में असमर्थ और केवल अर्थवाद पर विश्वास करने वाले रह जाओगे।" शिवजी ने नन्दीश्वर को ब्राह्मणों को शाप न देने की अपनी प्रवृत्ति का स्मरण कराते हुए उससे शान्त होने का अनुरोध किया। नन्दीश्वर तो स्वस्थ हो गया परन्तु दक्ष उस समय से शिवनिन्दक एवं विरोधी बन गया।

शिवजी के प्रति बद्धवैर दक्ष ने शिवजी को अपमानित करने के लिए कनखल तीर्थ में एक वृहत् यज्ञ का आयोजन किया और उसमें सभी देवताओं, अगस्ति, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, व्यास, भारद्वाज, गौतम, पेल, पराशर, गर्ग, भार्गव तथा वैशम्पायन आदि सभी ऋषियों, पार्षदों सहित विष्णु जी आदि को निमन्त्रित किया। मैं भी उस यज्ञ में सपरिवार सम्मिलित हुआ। दक्ष ने सभी आमन्त्रित अतिथियों को सुरम्य भवनों में ठहराया और सवका यथोचित स्वागत किया। उसने शिवजी को निमन्त्रित तक नहीं किया। शिवमाया से विमोहित होने के कारण आमन्त्रित अतिथियों का भी इस ओर ध्यान नहीं गया। शिवभक्त दधीचि ने जव शिवजी के अभाव में यज्ञ के सम्पन्न तथा सफल न होने की वात की तो दक्ष ने शिव को 'कपाली', 'श्मशानवासी', 'अमंगलमूल' वता कर उनकी अवहेलना की और विष्णु को देवों का मूल वताते हुए उनकी उपस्थिति में यज्ञ के सम्पन्न होने के अपने विश्वास की घोषणा की। सव मंगलों के आदि कारण भगवान् शंकर की निन्दा को न सहन करने के कारण दधीचि अकेले ही उस सभा स्थल से उठकर अपने आश्रम को चले गए। अन्य कुछ शिवभक्त ऋषियों ने भी यज्ञ का वहिष्कार किया। उनके जाने पर हर्ष प्रकट करते हुए दक्ष ने कहा कि भूतनाथ के उपा-

सक भूतों का यज्ञ-परित्याग करना ही हमारे लिए मंगल और सुख-कारक है। शिवजी की प्रबल माया के सम्मोहन से अभिभूत ऋषियों और देवों का विवेक इस प्रकार नष्ट हो गया कि वे सभी हर्षपूर्वक यज्ञ-कार्य में प्रवृत्त हो गए। किसी ने भी भगवान् शंकर की दक्ष द्वारा की जा रही उपेक्षा को गम्भीरता से नहीं लिया।

इधर गन्धमादन पर्वत पर क्रीड़ारत पार्वती ने ऋषियों और देवों के समूह को आकाशमार्ग से एक ही दिशा की ओर जाते हुए देख-कर विजया नामक सखी को सत्य का पता लगाने के लिए भेजा। विजया से अपने पिता दक्ष द्वारा किए जा रहे बृहत् यज्ञ के आयोजन की बात सुनकर पार्वती गणों के मध्य विराजमान शिवजी के पास पहुँच कर उनसे अपने साथ अपने पिता के यज्ञ में सम्मिलित होने का अनुरोध करने लगी। सती का अनुरोध शिवजी को अति अप्रिय लगा, पुनरपि उन्होंने संयत स्वर में कहा कि सम्बन्धियों के घर में आने-जाने में निस्सन्देह स्नेह में वृद्धि होती है परन्तु जहाँ वैमनस्य हो, वहाँ अनाहूत जाने से अपमान ही होता है। सत्य तो यह है कि बन्धुजनों के अपमान जैसा घोर दुःख संसार में अन्य कुछ भी नहीं है। सती यज्ञ को सफल बनाने वाले तथा मंगलनिधान भगवान् शिव के अनिम-न्त्रित होना जानकर विक्षुब्ध हो उठी तथा अपने दुरात्मा पिता और उपस्थित अन्यान्य ऋषि-देवादियों के शंकर के प्रति इस दुर्व्यवहार के अभिप्राय की जिज्ञासा से वहाँ जाने की अनुमति माँगने लगी। सती के अभिप्राय को जानकर शिवजी ने महारानी के ठाट-बाट से नन्दी-श्वर पर आरूढ़ होकर उन्हें जाने की अनुमति दे दी और साथ ही साठ हजार रुद्रगणों को भी उनके साथ सेवक-सहायक के रूप में भेज दिया।

सती जब अपने पिता के घर पहुँची तो उनकी माँ असिक्नी और बहनों ने तो सोत्साह स्वागत किया परन्तु पिता और पिता के परि-जनों द्वारा सती को उपेक्षा ही मिली। सती ने यज्ञशाला में सभी देवों के पृथक्-पृथक् भाग को देखा परन्तु शंकर का भाग उन्हें कहीं भी दिखाई न दिया। इस पर रोषाविष्ट होकर सती ने अपने पिता से अत्यन्त कठोर शब्दों में शंकर को निमन्त्रित न करने का कारण पूछा। सती ने स्पष्ट शब्दों में भरी सभा में सबको सुनाते हुए घोषणा की कि हव्य-कव्य और मन्त्रादि के शिवमय होने के कारण शिवविहीन यज्ञ कभी सफल हो ही नहीं सकता है। सती ने वहाँ उपस्थित ऋषियों

और देवताओं, विशेषत:, विष्णु जी को शिवजी का अपमान करने वाले दक्ष के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए खूब जली-कटी सुनाई। सती के कठोर वचनों को सुनकर और उनके द्वारा विष्णु आदि अभ्यागत देवों का अपमान देखकर दक्ष से न रहा गया। वह क्रोधातुर होकर बोला कि तुम यहाँ क्यों आई और तुझे किसने बुलाया। तेरा पति तो 'वेद वहिष्कृत', 'अकुलीन' और 'अमांगलिक' है। मैंने पापी ब्रह्मा के कहने से ही तेरा विवाह उस दुष्ट से किया है। मैं अव उसे अपना नहीं सकता। तुम मेरी पुत्री हो और यहाँ आ गई हो, मैं तुम्हें तुम्हारा भाग दे दूँगा परन्तु तुम्हारे भूतनाथ को मुँह न लगाऊँगा। अव तुम स्वस्थ और सन्तुष्ट होकर बैठ जाओ। दक्ष के वचन सती को बाण के समान लगे और वह क्रोध से काँपती हुई बोलीं—शिवनिन्दक की तो जिह्वा काट लेनी उचित है और यदि वह सामर्थ्य न हो तो कान मूँदकर वहाँ से चला जाना उचित है। शिवनिन्दा करने और उसे सुनने वाले (दोनों ही) नरकगामी होते हैं।

पितृगृह के व्यवहार को देखकर सती को शिवजी के वचन सत्य लगने लगे और उन्होंने ऐसे शिवनिन्दक पापी पिता के शुक्र से सम्भूत शरीर को रखना अनुचित समझकर भरी सभा में आत्मदाह के निश्चय की घोषणा की। अपने पिता को शिवनिन्दा के कारण घोर नरकगामी होने के पाप देकर सती ने योग द्वारा अपने शरीर से अग्नि प्रकट करके अपने प्राण त्याग दिए। सती के दाह से सभा में हाहाकार फैल गया। हजार बीस गण तो इस दृश्य को देखकर कातरभाव से नष्ट हो गए और चालीस हजार गण शस्त्र लेकर दक्ष पर प्रहार करने और यज्ञ विध्वंस करने को आगे बढ़े। इधर महर्षि भृगु यज्ञ में आहुतियाँ देते हुए यज्ञ की रक्षा में जुट गए और उनकी आहुतियों से ऋभु नामक बहुत से असुर उत्पन्न हुए जिन्होंने शिवगणों की शक्ति को युद्ध द्वारा क्षीण कर दिया। इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, मरुद्गण सभी इस दृश्य से चकित और मौन थे। किसी में इस विघ्न के निवारण की शक्ति न थी। सभी निराशा के कारण खिन्न हो उठे। सभी ने स्तब्धभाव से यह आकाशवाणी सुनी—"सर्वेश्वर शिव से विमुख व्यक्ति की कोई देवता सहायता नहीं कर सकता। पूज्यों की अवज्ञा घोर पातक है। विज्ञाजनों के सत्परामर्श की उपेक्षा आत्महत्या के समान है। दक्ष ने भगवान् शंकर का अपमान किया। घर आई परमपूज्या सती का तिरस्कार किया। दधीचि के पथ-प्रदर्शन की उपेक्षा की अत: दक्ष का मुख मल आयगा,

यज्ञ विध्वंस हो जाएगा। यदि देवतादि अभ्यागत कल्याण चाहते हैं तो यज्ञ-मण्डप से बाहर हो जाएँ अन्यथा सबका विनाश निश्चित है।" इस आकाशवाणी को सुनकर सभी चिन्तित और व्याकुल हो उठे। शिवजी की माया से किसी के मुख से एक शब्द तक नहीं निकला।

कथावृत्त को आगे बढ़ाते हुए ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! इधर ऋभुगुणों द्वारा परास्त रुद्रगण भगवान् शंकर के पास पहुँचे और उनसे सतीदाह का वृत्त निवेदन किया। घटना के विवरण को जानने के लिए भगवान् शंकर ने उस समय तुम्हारा स्मरण किया। तुमने तत्काल उपस्थित होकर सारा वृत्तान्त विस्तार से कह सुनाया। इस पर रोषाविष्ट शंकर ने अपनी जटा से एक केश उखाड़ कर उसे पर्वत पर दे मारा और उसके एक भाग से प्रबल पराक्रमी वीरभद्र और दूसरे भाग से महाकाली उत्पन्न हुई। भगवान् शंकर ने वीरभद्र को तत्काल जाकर अहंकारी दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने और उसके सहायकों—यक्ष, गन्धर्व, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा यज्ञ आदि—को भस्म कर डालने का आदेश दिया। शिवजी ने दक्ष को सपत्नीक नाम शेष करके विश्वेदेवों को भस्म करके और दधीचि जी द्वारा निर्दिष्ट सभी शिवविरोधियों को आकुल करके शीघ्र लौट आने की आज्ञा दी।

शिवजी का आदेश पाकर वीरभद्र विपुल सैन्य के साथ दक्ष विनाश को चल पड़ा। इधर काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रावली और वैष्णवी इन नौ दुर्गाओं ने भी दक्ष को मारने के लिए अपने भूतगणों के साथ प्रस्थान किया। वीरभद्र और नवदुर्गाओं के प्रस्थान करते ही दक्ष के वामांग—अक्षि, भुजा जंघा—फड़कने लगे। पृथ्वी काँपने—हिलने लगी। दिशाएँ मलिन हो गईं और सूर्य में कलंक दिखाई देने लगा। उल्कापात, शृगालरव तथा आकाश से रक्तवर्षा आदि उपद्रव होने लगे। इन उत्पातों को देखकर विष्णु आदि सभी देवता भयभीत हो गए और दक्ष तो भयाक्रान्त होकर रक्त-वमन करने लगा। सभी ऋषि और देवता उस स्थान से भाग कर आत्मरक्षा की सोचने लगे। इस सारे दृश्य को देखकर अत्यन्त दुःखी और व्याकुल दक्ष विष्णु जी के चरणों में गिरकर उनसे यज्ञ रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगा। विष्णु जी ने सर्वेश्वर शंकर की अवज्ञा करने के लिए दक्ष की भर्त्सना करते हुए उससे कहा—पूज्यों का अपमान करने से पग-पग पर दरिद्रता, मरण और भय जैसी विपत्तियाँ ही आती हैं। इन विपत्तियों के निवारण का

एकमात्र उपाय भगवान् शंकर का आराधन है। विष्णु जी के वचन सुनकर दक्ष किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर पृथ्वी पर बैठ गया। इतने में वीरभद्र ससैन्य वहाँ आ पहुँचा और उसके पराक्रम को देखकर दक्ष सपत्नीक विष्णु जी की शरण में जाकर उनसे कहने लगा—मैंने यज्ञों के प्रतिपालक एवं वेदधर्म के अधिष्ठाता आपके ही बल के भरोसे इस श्रेष्ठ यज्ञ कर्म को प्रारम्भ किया था। आप ही मेरे इस यज्ञ की अब रक्षा कीजिए। दक्ष के अनुनय-विनय को सुनकर विष्णु जी बोले—मैं धर्मपालन के लिए वचनबद्ध हूँ, परन्तु जब तक तुम अपनी क्रूर बुद्धि का परित्याग नहीं करते, भगवान् शंकर के शरणागत नहीं होते, तब तक तुम्हारा परित्राण असम्भव है। तुम्हारे इस शिवविहीन यज्ञ में सम्मिलित होकर मैं पाप का भागी हुआ हूँ और मुझे इसके दण्डस्वरूप घोर दुःख उठाना पड़ेगा। इस समय यदि हम लोग भागना भी चाहें तो वीरभद्र अपने आकर्षण से हमें खींच लेगा। स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी में उसके शस्त्रों की गति अप्रतिहत है। भगवान् शंकर की कृपा के बिना इस समय उद्धार का कोई अन्य उपाय नहीं। इतने में वीरभद्र वहाँ आ पहुँचा और इधर दक्ष इन्द्र की असहायावस्था पर द्रवित होकर विष्णु का उपहास करता हुआ वीरभद्र से युद्ध के लिए आगे बढ़ा परन्तु वीरभद्र के त्रिशूल से देवसेना आकुल हो उठी। कितने ही अमर मृत्यु का ग्रास बन गए और कितने भयार्त्त होकर भाग निकले। स्वयं इन्द्र के लिए भी वहाँ ठहरना असम्भव हो गया। इन्द्र ने निराश होकर देवगुरु बृहस्पति से अपनी जय का उपाय पूछा तो उन्होंने शंकर जी के विरुद्ध जय को असम्भव ही बताया। इस पर निराश देवता विष्णु जी के पास जाकर उनसे वीरभद्र के साथ युद्ध करने की और इस प्रकार यज्ञ की रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे। विष्णु जी वीरभद्र से युद्ध के लिए ज्यों ही सन्नद्ध हुए त्यों ही वीरभद्र ने शिवशपथ का उल्लंघन करने के लिए उनकी भर्त्सना करते हुए कहा—हे दुराचरिन्! हे शंकर विमुख! अधम विष्णो! क्या तू शिवजी के माहात्म्य को नहीं जानता! तुम शंकर जी की उपेक्षा करके किस प्रकार यज्ञ में पूजित होने आए हो, अभी मैं तुम्हारा वक्ष विदीर्ण करता हूँ। वीरभद्र के वचनों को सुनकर स्मितभाव से विष्णु ने कहा—वीरभद्र! मैं तो शंकर जी का सेवक हूँ और भगवान् शंकर के समान ही मैं भी भक्तों के वश में हूँ। तुम निश्शंक होकर मुझ से

युद्ध करो। मैं तुम्हारे अस्त्रों से व्याप्त होकर अपने आश्रम को लौट

जाऊँगा।

ब्रह्मा जी बोले—हे तपोधन नारद ! तब विष्णु के योग-बल से उनके शरीर से शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी असंख्य सशस्त्र वीर प्रकट होकर वीरभद्र के साथ युद्ध करने लगे परन्तु वीरभद्र ने भगवान् शंकर का स्मरण करके अपने त्रिशूल से उन सबको भस्म कर दिया। उसने विष्णु के वक्ष में भी त्रिशूल मारा, जिससे मूच्छित होकर विष्णु जी पृथ्वी पर गिर पड़े और पुनः सचेत होकर ज्यों ही अपने चक्र से वीरभद्र पर प्रहार को बढ़े त्यों ही वीरभद्र ने उनका स्तम्भन कर दिया। फलतः शस्त्र उनके हाथ में ही थमा रह गया और वे वहीं के वहीं निश्चल-निश्चेष्ट हो गए। याज्ञिकों ने मन्त्रों द्वारा उनका स्तम्भन छुड़ाया। अब विष्णु ने अपना शार्ङ्ग धनुष उठाकर ज्यों ही उस पर बाण चढ़ाया, त्यों ही वीरभद्र ने अपने तीन बाणों से विष्णु के धनुष को काट डाला। विष्णु जी वीरभद्र के तेज को असाध्य समझ कर अन्तर्धान होकर अपने लोक को चले गए। ब्रह्मा जी कहते हैं—हे नारद ! पुत्रलोक से व्याकुल होकर मैं भी सत्यलोक को चला गया। हमारे चले जाने पर मृगरूप धारण करके भागते हुए यज्ञ को पकड़ कर वीरभद्र ने उसका शिरच्छेद कर दिया। उसने अपने नखों से सरस्वती की नाक काट डाली। प्रजापति, धर्म, कश्यप और अरिष्टनेमि आदि मुनियों को लातों से पीटा। देवताओं को पृथ्वी पर पटक-पटक कर प्रताड़ित किया। मणिभद्र ने भृगुजी की छाती पर पैर रखकर उनकी दाढ़ी नोंच ली। चण्ड ने शिवजी के शापित होने पर उन पर हँसने वाले पूषा का दाँत उखाड़ लिया। शिवगणों ने यज्ञ में मल-मूत्र की वर्षा कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसके उपरान्त वीरभद्र ने दक्ष की छाती पर पैर रखकर अपने हाथ से उसका सिर मरोड़ कर तोड़ डाला। यह सब करने के उपरान्त विजयी वीरभद्र कैलाश पर शिवजी के पास पहुँचा। शिवजी ने उसके कृत्य पर प्रसन्न होकर उसे सब गणों का अध्यक्ष बना दिया।

सूत जी बोले—ब्रह्मा जी द्वारा यह सब सुनकर नारद जी ने प्रश्न किया कि शिवभक्त होते हुए भी विष्णु जी उस यज्ञ में क्यों कर गए जिसमें शिवजी निमन्त्रित नहीं थे ? शिवजी के गणों से उन्होंने युद्ध क्यों किया ? मेरे इस सन्देह की निवृत्ति के लिए मुझे शिव-चरित्र सुनाने की कृपा कीजिए। ब्रह्मा जी बोले—दधीचि के शाप से भ्रष्ट-ज्ञान होने के कारण ही विष्णु जी दक्ष के यज्ञ में चले गए। महर्षि

दधीचि का अपने मित्र क्षुव राजा से एक बार एक बहुत ही अनर्थकारी विवाद उत्पन्न हो गया। क्षुव ने तीनों वर्णों में ब्राह्मण की अपेक्षा राजा को श्रेष्ठ बताया और इस प्रकार अपने को श्रुतिसम्मत श्रेष्ठतम प्राणी घोषित किया। लक्ष्मी के मद से चूर्ण होकर उसने अपने को दधीचि के लिए पूज्य बताया। महर्षि दधीचि ने क्रुद्ध होकर क्षुव के सिर पर एक जोर का झापड़ दे मारा, जिससे वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा परन्तु सचेत होने पर क्षुव ने दधीचि पर वज्र से प्रहार कर दिया। इस पर दधीचि ने शुक्राचार्य का स्मरण किया, जिन्होंने प्रकट होकर उन्हें क्षुव पर विजयी होने के लिए महामृत्युञ्जय मन्त्र का जाप करने का परामर्श दिया। दधीचि ने वन में जाकर इस मन्त्र के जप के प्रभाव से भगवान् शंकर को प्रसन्न कर दिया। दधीचि के माँगने पर शंकर भगवान् ने उन्हें तीन वर प्रदान किए :—

(१) शरीर की अस्थियों का वज्र के समान हो जाना।

(२) सबसे अवध्य बन जाना।

(३) किसी भी रूप में दीन-हीन न होना।

शिवजी से वर प्राप्त कर दधीचि ने क्षुव के पास आकर उनके सिर पर अपने चरणों से प्रहार किया। क्षुव ने क्रुद्ध होकर दधीचि की छाती में अपने वज्र का प्रहार किया परन्तु उसके अक्षत रहने पर क्षुव विस्मित हुआ और अपनी पराजय का बदला लेने के लिए वन में चला गया और वहाँ विष्णु जी की आराधना करने लगा। विष्णु जी ने प्रकट होकर कहा कि शंकर के भक्तों को दुःख देने वालों को शापग्रस्त होना पड़ता है। तुम्हारी दधीचि पर विजय की चेष्टा में मुझे भी शापपड़ित होना पड़ेगा। दक्ष के यज्ञ में मेरा विनाश और पुनरुत्थान होगा, पुनरपि अपने भक्त के लिए मैं कुछ न कुछ अवश्य करूँगा।

अपने भक्त क्षुव की सहायता के लिए विष्णु जी ब्राह्मण का वेश धारण कर दधीचि के आश्रम में पहुँचे और उनसे एक वर देने का अनुरोध करने लगे। दधीचि ने शिवजी की कृपा से उनका वास्तविक भेद जान लिया और उनसे छल-कपट छोड़ने को कहा। इस पर विष्णु जी ने दधीचि की स्तुति करते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे क्षुव के पास जाकर एक बार उससे कह दें—"तुम मुझसे अधिक शक्तिशाली हो और मैं तुमसे भयभीत हूँ।" दधीचि ने यह सब कहने-करने से इन्कार कर दिया तो विष्णु ने दधीचि पर अपने चक्र का प्रहार किया परन्तु दधीचि पर वह चक्र चल ही नहीं पाया। इस पर विष्णु ने अपने

अन्य शस्त्रास्त्रों से उस पर प्रहार किया। इन्द्र, वरुण, यम और अग्नि आदि अन्य देवता भी विष्णु की सहायता को आ गए तथा दधीचि पर आयुधों से प्रहार करने लगे। दधीचि ने मुट्ठी भर कुशा उठाकर देवों पर फेंकी और शिवजी की कृपा से वही त्रिशूल वन गई और उससे सभी देवों के शस्त्रास्त्र कुण्ठित हो गए। देवतागण तो निरस्त होकर वहाँ से भाग खड़े हुए परन्तु विष्णु जी युद्ध में डटे रहे। अव विष्णु जी ने अपनी माया का प्रसार किया। दधीचि ने उसे निष्प्रभान्वित करते हुए विष्णु को दिव्य नेत्र देकर अपना वास्तविक रूप दिखाया, जिसमें सारा ब्रह्माण्ड विद्यमान था। इतने पर भी विष्णु जी युद्धसे पराङ्-मुख न हुए। उस समय मैं क्षुव को लेकर वहाँ पहुँच गया। क्षुव ने मुनि के पास पहुँच कर उन्हें प्रणाम करते हुए अपनी दीनता प्रकट की। मैंने विष्णुजी को भी शिवभक्त ब्राह्मण से युद्ध करने के लिए समझाया। दधीचि जी क्षुव पर तो प्रसन्न हो गए परन्तु विष्णु पर उनका क्रोध कम न हुआ। उन्होंने यथासमय भगवान् रुद्र की कोपाग्नि से विष्णुसहित सभी देवों को भस्म होने का शाप दे डाला। इसी के फलस्वरूप दक्ष के यज्ञ में विष्णु जी का पराभव हुआ।

वीरभद्र द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस किए जाने के वाद के वृत्त जानने की नारद जी की इच्छा पर ब्रह्मा जी उन्हें वताते हुए कहते हैं—देवताओं के मुख से यज्ञविध्वंस का समाचार सुनकर मैं देवताओं की कल्याणकामना के लिए चिन्तित हो उठा और परामर्श के लिए विष्णु जी के पास गया। विष्णु जी ने शिवजी को भाग न देने के लिए हम सभी को अपराधी वताया और अपराध-क्षमापन के लिए शिवजी की शरण में चलने का परामर्श दिया। विष्णु जी के नेतृत्व में मैं सभी देवों कोसाथ लेकर शिवलोक को गया और विष्णु सहित सभी देव शिवजी के समक्ष दण्डवत् होकर उनकी स्तुति करने लगे। विष्णु आदि देवों की अनुनय-विनय पर प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा कि अपराधी को दण्ड देना आर्य-मार्ग है। अव तुम लोग सही मार्ग पर आ गए हो, अतः मैं तुम सवको क्षमा प्रदान करता हूँ। दक्ष वकरे के सिर को धारण कर जीवित हो जाएगा। भग देवता सूर्य के नेत्रों से यज्ञ-भाग को देखेंगे तथा पूषा के टूटे दाँत पुनः उग आयेंगे, जिसमें वे यजमान द्वारा समर्पित यज्ञ-भाग का उपभोग कर सकेंगे। भृगु की दाढ़ी फिर से जम जाएगी और देवताओं के क्षत-विक्षत अंग स्वस्थ हो जायेंगे। यह सब सुनकर हम सवको वड़ी प्रसन्नता हुई तथा शिवजी को सादरनिमन्त्रित

करके हम सब यज्ञस्थल—कनखल—में आ गए। भगवान् शंकर ने वहाँ पहुँचकर दक्ष के धड़ पर बकरे का सिर लगाकर उसे पुनर्जीवित कर दिया। भगवान् शिव के दर्शनों से कृतकृत्य और स्वच्छबुद्धि होकर दक्ष उनकी बहुविध स्तुति करने लगा। शंकर भगवान् ने दक्ष को तत्त्वज्ञान कराते हुए यज्ञ सम्पन्न करने का आदेश दिया। समस्त देवताओं के साथ शिवजी को यज्ञभाग दिया गया। सभी देवता, ऋषि, मुनि भगवान् शंकर का यशोगान करते हुए सानन्द अपने-अपने लोक को लौट गए। शिवजी ने भी कैलाश पर आकर अपने गुणों का सारा वृत्त सुनाया।

ब्रह्मा जी बोले—नारद जी! इस प्रकार दक्षपुत्री सती ने यज्ञ में अपना शरीर त्याग किया। अगले जन्म में वह हिमालय के घर मैना के गर्भ से उत्पन्न हुई और महातप द्वारा शिवजी को प्रसन्न कर पुनः उनकी अर्द्धांगिनी बनी।

पार्वती खण्ड

नारद जी की प्रार्थना पर ब्रह्मा जी उन्हें अपने पिता दक्ष के यज्ञ में शरीर त्याग कर पर्वतराज के घर पार्वती के रूप में उत्पन्न होने वाली सती काली तथा उसकी जननी मेनका का चरित्र सुनाते हुए कहते हैं :—हे नारद ! उत्तर दिशा में शैलराज के नाम से प्रसिद्ध सर्वांग-सुन्दर एवं अत्यन्त तेजस्वी हिमाचल अथवा हिमालय नाम का एक राजा था। उसने अपने जंगम भेद से अपनी कुल-स्थिति एवं धर्मवृद्धि के लिए विवाह करने की इच्छा की। देवताओं के अनुरोध पर पितृगणों ने अपनी-अपनी पुत्रियों के शाप का स्मरण करते हुए अपनी एक बेटी मैना का हिमालय के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया।

नारद जी बोले—हे महाप्राज्ञ ! आप कृपा करके मुझे मैना की उत्पत्ति का और उन्हें मिले शाप का विवरण सुनाने का कष्ट करें। ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! दक्ष ने अपनी साठ पुत्रियों का विवाह कश्यप आदि महर्षियों के साथ कर दिया था। उनमें से एक स्वधा का विवाह पितृगण से हुआ था और उसने तीन कन्याओं—मैना, धन्या तथा कलावती—को उत्पन्न किया था। एक समय ये तीनों बहनें श्वेतद्वीप में विष्णु जी का दर्शन करने गईं। वहाँ जुटे बहुत बड़े समाज में जब सनकादिक पधारे तो उनके स्वागत के लिए सारा समाज उठ खड़ा हुआ परन्तु शिवमाया से विमोहित ये तीनों बहनें बैठी की बैठी रह गईं। प्रणाम तक न कर पाईं। सनत्कुमार ने उन तीनों को मनुष्ययोनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। इस पर तीनों बहनें मुनियों के चरणों में गिर कर आर्त्त वाणी से क्षमायाचना करने लगीं। द्रवित होकर सनत्कुमार बोले कि मैना हिमाचल की पत्नी बन कर पार्वती को, धन्या जनक से विवाहित होकर सीता को और

कलावती वृषभानु से विवाह करके राधा को-जन्म देगी और अपनी इन पुत्रियों के द्वारा ही तुम तीनों बहनों का उद्धार होगा और तुम पुनः स्वर्ग लौट आओगी।

इसी मैना का यथासमय हिमाचल से विवाह हुआ तो हरि, इन्द्र आदि देवों ने उनके पास जाकर उनसे तप द्वारा भगवती दुर्गा को पुत्री रूप में प्राप्त करने का अनुरोध किया। देवताओं के अनुरोध को शिरोधार्य करते हुए हिमाचल और मैना ने सत्ताईस वर्ष तक कठोर तप किया, शिव-शिवा की मृण्मयी मूर्ति बनाकर उसका अखण्ड पूजन किया। दम्पत्ति की सत्यनिष्ठा और घोर साधना पर द्रवित होकर भगवती दुर्गा ने उन्हें दर्शन देकर उनसे वर माँगने का अनुरोध किया। मैना ने भगवती को श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनसे दीर्घात्मा सौ पुत्रों का और स्वय उनका पुत्री रूप में उसके उदर से उत्पन्न होने का वर माँगा। देवी 'तथास्तु' कह कर अन्तर्हित हो गई। इस वर से कृतकृत्य होकर पति-पत्नी अपने नगर को लौट आए।

समय आने पर मैना ने प्रथम सौ पुत्रों को जन्म दिया। इसमें सबसे बड़े पुत्र का नाम मैनाक पड़ा। इसके उपरान्त मैना के पुनः गर्भ धारण करने पर जगदम्बा भगवती भवानी का आविर्भाव हुआ। उस समय के सुन्दर, शाभन और सुखमय वातावरण का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। गिरिराज ने कन्या की उत्पत्ति का समाचार सुनकर महोत्सव का आयोजन किया और धन-धान्यादि के दान द्वारा भिक्षुकों को कृतकृत्य कर दिया। मुनियों ने उनका 'काली' 'महाकाली' 'दुर्गा' नामकरण किया। नगर के लोग उन्हें 'पार्वती' 'सुशीला' 'बन्धुप्रियां' आदि नामों से पुकारने लगे। समय के साथ-साथ वे बढ़ने लगीं और गुरु से विद्या पढ़ने लगीं।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! एक समय जब तुम हिमालय के घर गए तो उसने तुम्हारा यथोचित स्वागत-सत्कार करने के उपरांत अपनी पुत्री का हाथ दिखा कर उसका भविष्य तुम से पूछा तो तुमने बताया था कि इस देवी के सभी लक्षण तो शुभ हैं किन्तु एक रेखा अतिविचित्रहै, जिसके फलस्वरूप इसका पति योगी, दिगम्बर, अगुणी, अकामी, पितृविहीन और अमंगल वेष वाला होना चाहिए। तुम्हारे इन वचनों को सुनकर पति-पत्नी तो दुःखित और चिन्तित हो उठे परन्तु भगवती प्रसन्न हो गईं। दुःखित हिमाचल ने तुमसे जब कोई उपाय पूछा तो तुम कौतुकी ने उसे बताया कि यदि शिवजी—जिनमें

ये सारे दोष भी गुणरूप हैं, जो कुवेश और कुलक्षण होते हुए भी सुवेश और सुलक्षण है—इसे ग्रहण कर लें तो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। शिवजी की प्राप्ति का उपाय भी तुमने कन्या द्वारा तप करना बताया। हे नारद ! तुमने पर्वतराज को बताया कि इस कन्या को ग्रहण कर शिवजी अर्द्धनारीश्वर कहलाएँगे। तुमने जब भगवती के पूर्वजन्मों का और शिवजी से साथ उनके अचल-अटल अनुराग का इतिहास बतलाया तो मैना और हिमाचल जहाँ आनन्दित हुए, वहाँ पार्वती लज्जापूर्वक अपना मुख ढाँप कर हँसने लगी।

इसके उपरान्त नारद जी ने कहा—हे पितामह ! मेरे लौट आने के पश्चात् का वृत्त मुझे सुनाने की कृपा करें। ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! तुम्हारे लौट आने पर मैना ने अपने पति से एकान्त में अपनी पुत्री के लिए सुन्दर वर ढूंढने का जब अनुरोध किया तो हिमालच ने उसे तुम्हारे वचनों पर आस्था एवं विश्वास रखने और तदनुसार अपनी पुत्री से शिवप्राप्ति के लिए तप करने को कहने का परामर्श दिया। पति के वचनों के गौरव से मैना पार्वती के पास गई तो अवश्य परन्तु स्नेहवश कुछ कह न सकी। पार्वती ने स्वयं ही एक स्वप्न देखने की बात कही जिसमें एक ब्राह्मण द्वारा शिवप्राप्ति के लिए तप करने का उसे आदेश दिया जा रहा है। मैना यह सब सुनकर हिमाचल के पास आई तो हिमाचल ने भी रात को देखे एक स्वप्न का विवरण इस प्रकार सुनाया कि एक ब्राह्मण मेरे नगर के पास तप करने आया है। मैंने अपनी पुत्री को उसके पास उसकी सेवा के लिए छोड़ा है परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया है। यह कह कर गिरिराज मौन हो गए और उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ समय पश्चात् शिवजी अपने गणों के साथ उस नगर में तप करने पहुँचे और पार्वती अपनी सखियों के साथ नित्य ही उनकी सेवा करने लगी। शिवजी के हृदय में विकार उत्पन्न होता न देखकर देवों ने कामदेव को उनके पास भेजा, जिसे भगवान् शंकर ने नेत्राग्नि से भस्म कर दिया। पश्चात् पार्वती के कठोर तप से प्रसन्न होकर तथा विष्णु जी आदि देवों के अनुरोध को स्वीकार करके शिवजी ने पार्वती से विवाह कर लिया।

नारद जी बोले—हे महाराज ! सती से विरहित होने पर शिवजी ने क्या किया ? हिमाचल के क्षेत्र में कब वे तप के लिए गए ? कामदेव को उन्होंने कैसे भस्म किया और पार्वती ने तप द्वारा कैसे

शिवजी को प्राप्त किया ? यह सब तथा अन्यान्य शिवचरित्र मुझे कुछ विस्तार से सुनाने की कृपा कीजिए।

सूतजी बोले कि नारद की शिवजी के चरित्र श्रवण में ऐसी अचल निष्ठा को देखकर ब्रह्मा जी बोले—हे शैवश्रेष्ठ नारद ! अपनी प्रिया के वियोग से व्याकुल शिवजी प्राकृत मनुष्य के समान उन्मत्त और विक्षिप्त होकर दिगम्बर वेश में इधर-उधर घूमने लगे। पार्वती को कहीं न पाकर वे अशान्त और अव्यवस्थित रहने लगे। हिमाचल पर्वत के क्षेत्र में जाकर उन्होंने कठोर तप किया। समाधि खुलने पर उनके सिर से गिरे स्वेद से चार भुजाओं तथा असह्य तेज वाला एक बालक प्रकट होकर शिवजी के समक्ष किसी प्राकृत मनुष्य के समान रुदन करने लगा। इतने में स्त्री का वेश धारणकर पृथ्वी शिवजी के निकट आई और उस बालक को अपनी गोदी में लेकर उसे स्तन्य पिलाने लगी। कौतुकी शिवजी ने पृथ्वी की प्रशंसा करते हुए उसे इस बालक को ले जाकर उसके पालन-पोषण का आदेश दिया। यही बालक भौम नाम से विख्यात हुआ और शिवजी को तप द्वारा प्रसन्न करके उसने शुक्र से भी आगे का लोक प्राप्त किया।

ब्रह्मा जी बोले—पार्वती के आठ बरस से ऊपर की हो जाने पर शिवजी को हिमाचल के घर उनके जन्म का वृत्त विदित हुआ। शिवजी अपने गणों सहित हिमालय के पास गंगावतरण वाले क्षेत्र में तप करने पहुँचे। शिवजी को अपने प्रदेश में आया सुनकर पर्वतराज उनकी सेवा में उपस्थित होकर अपने योग्य सेवा बताने का अनुरोध करने लगा। शिवजी ने निर्विघ्न तप के लिए गंगावतरण के उस क्षेत्र को सुरक्षित करने और वहाँ किसी ऋषि-मुनि तथा देव-गन्धर्व आदि का प्रवेश वर्जित करने की अभिलाषा प्रकट की। शैलराज ने नगर में पहुँच कर वैसा ही आदेश प्रसारित कर दिया।

कुछ समय बीतने पर एक दिन पर्वतराज अपनी पुत्री पार्वती के साथ अनेक सुन्दर उपहार लेकर शिवजी की सेवा में उपस्थित हुआ और समाधिस्थ शिवजी की समाधि खुलने की प्रतीक्षा करने लगा। शिवजी जब समाधि से उठे तो हिमाचल ने उनकी बहुविध स्तुति की और उनसे अपने नित्य दर्शन की अनुमति देने की और अपनी पुत्री को सेवा का अवसर देने की प्रार्थना करने लगे। शिवजी ने पर्वतराज को तो अपने दर्शन के लिए नित्य आने की अनुमति दे दी परन्तु पार्वती को वहाँ आने का निषेध कर दिया। इस पर जब पार्वती ने विनय-

पूर्वक कारण पूछा तो उन्होंने स्त्री का वैराग्य में वाधक होना बताया। इस पर पार्वती ने कहा मैं आपसे विवाह तो नहीं करती परन्तु इतना अवश्य जानना चाहती हूँ कि प्रकृति के बिना लिंगरूपी महेश्वर किस प्रकार हो सकते हैं ? शिवजी ने कहा कि सत्पुरुष प्रकृति से दूर रहते हैं। पार्वती ने इस पर हँसते हुए कहा—हे योगिराज ! आपका यह कथन क्या प्रकृति नहीं है ? यदि आप प्रकृति से परे हैं तो यहाँ आपको एकान्तप की आवश्यकता ही क्या है ? प्रकृति से गलित होकर आप निज को नहीं ज़ान सकते और जानते हैं तो आपको तप की आवश्यकता नहीं। यदि आप प्रकृति से परे हैं तो मेरे यहाँ आपके समीप रहने पर आपका कोई अहित नहीं होगा। पार्वती जी की तत्त्वपूर्ण बातें सुन कर शिवजी ने उन्हें अपने समीप आने की अनुमति दे दी।

पार्वती अपनी सखियों के साथ प्रतिदिन वहाँ आकर षोड़शोपचार से शिवजी की अराधना करने लगी परन्तु अविकारी शिवजी के मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हुआ। उन्होंने तव पार्वती द्वारा विगलित-मय होने पर ही उसे ग्रहण करने का निश्चय किया। ब्रह्मा जी द्वारा भेजा गया कामदेव भी जव शंकर जी के मन को न डिगा सका, उल्टे स्वयं नामशेष हो गया तव पार्वती ने गर्वपूर्णित होकर तप का आश्रय लिया और फिर तपःपूत पार्वती को भगवान् शंकर ने पत्नी रूप में ग्रहण कर लिया। पार्वती से कार्त्तिकेय को उत्पन्न करके भगवान् शंकर ने देवों को तारकासुर के अत्याचारों से मुक्त कराया।

नारद जी की जिज्ञासा पर देवपीड़क तारकासुर का उसे परिचय देते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं—हे नारद ! अपने पुत्रों—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष—को नरहरि विष्णु द्वारा मारे जाने से विपन्न दिति ने अपने पति कश्यप को प्रसन्न कर पुनः गर्भ धारण किया परन्तु इन्द्र ने छिद्र देखकर दिति के गर्भ में प्रवेश करके अपने वज्र से दिति के उस गर्भ को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इतने पर भी दिति के कठोर तप के फलस्वरूप उसका गर्भपात नहीं हुआ। दिति के गर्भ से उत्पन्न उनचास मरुद्गणों को इन्द्र ने अपना मित्र बना लिया। इससे असन्तुष्ट दिति ने पुनः पति की सेवा का आश्रय लिया। कश्यप ने दिति को कठोर तप द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करने की विधि बताई, जिसे अपनाकर दिति ने वज्रांग नामक अतिबलशाली पुत्र उत्पन्न किया। उसने अपनी माता की आज्ञा से इन्द्रादि देवताओं को पकड़कर उन्हें दण्डित

किया। समय आने पर उसने अत्यन्त उत्पातकारी, महाभयंकर पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम तारकासुर पड़ा। उस तारक ने कठोर तप द्वारा मुझे ब्रह्मा को प्रसन्न करके सभी देवों से अजेय होन का वर प्राप्त कर लिया। इसके उपरान्त उस महाबलशाली ने इन्द्र से ऐरावत, कुबेर से नवनिधि, सूर्य से उच्चैःश्रवा अश्व तथा अन्यान्य देवों और ऋषियों से उनकी श्रेष्ठतम निधि छीन ली। उसने त्रिलोकी को जीतकर देवों को स्वर्ग से ही निकाल दिया और दैत्यों को वहाँ बसा दिया। उसके उत्पातों और अत्याचारों से संत्रस्त देवता इन्द्र के नेतृत्व में मेरे पास आए।

देवताओं की पीड़ा और दीन वचनों से द्रवित होने पर भी मैंने उनसे कहा कि तारकासुर मेरे ही वरदान से शक्तिशाली बना है अतः मेरे द्वारा तो उसका उच्छेद असम्भव है। यह कार्य तो शिवजी के शुक्र से सम्भूत पुत्र ही कर सकता है परन्तु उनका तो कोई पुत्र है ही नहीं। उनके पुत्र उत्पन्न होने का एक उपाय यह है कि तुम सब जाकर शिवजी से हैमसुता ग्रहण करने की प्रेरणा-प्रार्थना करो। यह कह कर मैंने देवों को शिवजी की सेवा में भेजा और इधर मैंने तारकासुर को कहकर स्वर्गलोक देवों को वापस दिला दिया। तारकासुर ने शोणितपुर को अपनी राजधानी बनाया और वहीं शासन करने लगा।

इधर इन्द्र ने कामदेव को बुलाकर उसकी बहुत प्रशंसा की और उससे देवों की सहायता करने का अनुरोध किया। इन्द्र ने बताया कि तारकासुर के उत्पातों से पीड़ित देवों का कल्याण भगवान् शिव से उत्पन्न पुत्र द्वारा ही हो सकता है। भगवान् शिव इस समय हिमालय पर बैठे हुए तपोरत हैं और पार्वती उन्हें पतिरूप में पाने के लिए उनकी सेवा में संलग्न हैं। तुम कुछ ऐसी युक्ति करो कि जिससे वीतराग, जितेन्द्रिय शिव की पार्वती में रुचि-आसक्ति बढ़े। इन्द्र के अनुरोध पर कामदेव अपनी सेना के साथ शिवजी की ओर चल दिया।

हिमालय क्षेत्र में पहुँचकर काम ने अपने साथी वसन्त की सहायता से ऐसा मादक और मनमोहक वातावरण उत्पन्न किया, अम्र, अशोक, उत्पल के विकसित होने से ऐसी सौरभ चारों ओर फैलाई, वीर, कोकिल, भ्रमर आदि के संगीत से कानों में ऐसी माधुरी घोली कि वनवासी मुनि भी विचलित होकर कामातुर हो उठे, परन्तु फिर भी भगवान् शंकर सर्वथा अप्रभावित होकर पूर्ववत् समाधिस्थ रहे।

मदन ने उनके भीतर घुसने के लिए छिद्रान्वेषण का बड़ा प्रयास किया परन्तु उसे सफलता न मिली। फलतः वह प्रतीक्षा में ही बैठा रहा। इतने में पार्वती पुष्पादि लाकर शंकर जी की सेवा में उपस्थित होकर उनकी पूजा करने लगी। शंकर जी ने थोड़ी देर के लिए तप छोड़कर उसके रूप सौंदर्य की ओर ध्यान दिया। बस, इसी छिद्र से कामदेव ने उनके भीतर प्रवेश किया। शंकर जी ने ज्यों ही पार्वती के अनिन्द्य, अपरूप सौंदर्य की ओर दृष्टि गड़ाई, त्यों ही सहज लज्जावश पार्वती संकुचा गई। इससे उसकी रूपसुषमा और भी द्विगुणित हो गई, जिससे शंकर जी का ध्यान और अधिक उसकी ओर आकृष्ट हो गया। पार्वती और दूर हट कर शंकर जी का मन अपने कटाक्ष से मोहित करने लगी। शंकर जी पार्वती की इन चेष्टाओं से सुख अनुभव करते हुए उनके स्पर्श-आलिंगन की इच्छा करने लगे परन्तु शीघ्र ही उन्हें चेतना आई और वे अपनी इस विकृति पर पश्चात्ताप करते हुए पुनः अपने सहज विरक्त एवं निर्विकार रूप में आ गए।

नारद जी बोले—हे विधे! इस पापनाशिनी कथा में मेरी बहुत अधिक रुचि है अतः मुझे आप आगे का वृत्त सुनाने की कृपा करें। ब्रह्मा जी बोले—इसके उपरान्त शंकर जी ने अपने मन के विकृत होने के कारण पर जब विचार किया तो उन्होंने अपने वाम भाग में असफल एवं भयग्रस्त काम को उपस्थित पाया। इसी समय भगवान् शंकर के तृतीय नेत्र से निकली क्रोधाग्नि से कामदेव जल कर भस्म हो गया। काम के दग्ध हो जाने पर देवता विलाप करने लगे, रति मूर्छित हो गई और पार्वती का शरीर भय से पीला पड़ गया।

अंत में सभी देवता मिलकर शंकर भगवान् की स्तुति करके उनसे रति के शोकहरण की प्रार्थना करने लगे। इस पर प्रसन्न होकर भगवान् शंकर बोले—मेरे क्रोध से भस्मीभूत काम तनुधारी नहीं हो सकता। अब तो रति का पति अतन्दु ही रहेगा। हाँ, द्वापर में श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न नाम का एक बालक उत्पन्न होगा, जिसे चुराकर शम्बर दैत्य समुद्र में फेंक देगा। रति वही समुद्र से निकले प्रद्युम्न को अपने पति के रूप में प्राप्त करेगी। यह सब सुनकर रति शम्बर के लोक को और देवगण अपने-अपने लोकों को चले गए।

ब्रह्मा जी बोले—देवर्षे नारद! इधर शंकर जी के नेत्रों से निकली अग्नि की असह्य ऊष्मा से लोक को विचलित देखकर मैंने

समुद्र से अनुरोध किया, जिसने अपने को मर्यादित रखने के लिए उस अग्नि को अपने में समाहित कर लिया। शिवजी के वश में अन्तर्हित हो जाने पर पार्वती वियोगातुर हो उठी। उसके पिता, माता और भाई भी उसके दुःख से दुखी हो गए। उस समय तुमने वहाँ जाकर सबको धैर्य बँधाया और एकान्त में पार्वती की इच्छा पर उन्हें गुरु रूप में अमोघ पञ्चाक्षरी शिवमन्त्र का उपदेश दिया और विश्वास दिलाया कि इस मन्त्र—ओम् नमः शिवाय—के प्रभाव से उन्हें शीघ्र ही अभीष्ट प्राप्ति होगी।

अपने पिता-माता से अनुमति लेकर पार्वती गंगोत्री के समीप गंगावतरण नामक स्थान के अन्तर्गत भृंगी तीर्थ में तप करने लगी। प्रथम वर्ष पार्वती ने केवल फलाहार किया द्वितीय वर्ष केवल पत्तों पर ही निर्वाह किया, तृतीय वर्ष पत्तों को छोड़कर सर्वथा निराहार बिताया। पत्तों तक को छोड़ने से पार्वती का नाम ही 'अपर्णा' पड़ गया। निराहार रहकर और एक पैर पर खड़ी होकर पार्वती ने उस तपोवन में तीन हजार वर्ष तक पञ्चाक्षरी शिवमन्त्र का जप किया। इतने पर भी शिवजी के प्रकट न होने पर पार्वती जी के माता-पिता भाई, बन्धु आदि ने उसे समझाया कि विरक्त तथा कामदेव को दग्ध करने वाले शिवजी की प्राप्ति के लिए उसका यह प्रयास निरर्थक है परन्तु पार्वती ने अपने दृढ़ निश्चय को दोहराया कि मैं भक्तवत्सल भगवान् शंकर जी को अपने तप से अवश्य प्रसन्न करूँगी। पार्वती के तप से सन्तप्त होने पर इन्द्रादि देवता मेरी शरण में आए और मैं सब देवों को साथ लेकर विष्णुजी के पास गया। विष्णु जी ने सबको शिवजी की सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना करने को कहा। देवताओं ने शिवजी के क्रोध से भयभीत होकर वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। विष्णु जी द्वारा आश्वस्त किए जाने पर देवगण हमारे साथ चलने को उद्यत हो गए। हम सबने प्रथम पार्वतीजी के दर्शन किए और उन्हें साक्षात् सिद्धिस्वरूपा समझकर उनकी बहुविधि प्रशंसा की। पुनः शिवलोक में जाकर अपने गणों से परिवेष्टित शिवजी को प्रणाम कर वेदमन्त्रों से उनका स्तवन किया।

हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने हमारे आने का कारण पूछा तो हमारी ओर से विष्णु जी ने तारकासुर के उपद्रवों और देव-पीड़ा का वर्णन किया। विष्णु जी ने शंकरजी से देवों के हित के लिए तपरता पार्वती के पाणिग्रहण करने का अनुरोध किया। शिवजी

ने गिरिजा से विवाह करके काम को पुन: जीवित करना तो स्वीकार किया, परन्तु हम सब देवों को तप द्वारा अपने कष्ट निवारण करने का परामर्श दिया और स्वयं समाधिस्थ होकर आत्मलीन हो गए। ब्रह्मा जी बोले—हे नारद जी ! हमने नन्दीश्वर से शिवजी की प्रसन्नता का उपाय पूछा तो उन्होंने हमें दीन भाव से शिव की स्तुति करने की सम्मति दी। श्रद्धापूर्वक की गई हमारी स्तुतियों से द्रवित होकर शिवजी ध्यान से उपरत हुए और उन्होंने विष्णु जी से, सर्वज्ञ शंकर को प्रणाम कर के उनसे पार्वती के उदर से पुत्र उत्पन्न करके देवों को तारकासुर से मुक्ति दिलाने का अनुरोध किया। विष्णु जी ने कहा कि ब्रह्माजी के वरदान के अनुसार आपके शुक्रसे सम्भूत पुत्र ही तारक का वध कर सकता है। इधर नारद जी के उपदेश से पार्वती आपको पाने के लिए साधना-संलग्न है। रति को आपके द्वारा दिए गए आपका वरदान की पूर्ति का भी समय आ गया है। हम अब शुभ विवाह देखना चाहते है। आशुतोष प्रभो! इसी उद्देश्य से हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर हमारा परि-तोष करने की कृपा करें। शिवजी ने कहा कि यह तुम लोग क्या कहते हो। स्त्री संग को कुसंग और निगड बन्धन के रूप में हुए तुम लोग मुझे विवाह करने को कहते हो ? मुझे विहार और रमण आदि का कुछ भी इच्छा नहीं परन्तु फिर भी मैं तारकासुर के उपद्रवों से तुम को मुक्त कराने के लिए गिरिजा से विवाह करूगा। शंकर की इस वाणी को सुनकर उनका जयजयकार करते हुए हम सब अपने-अपने लोगों को लौट आए।

हमारे लौट जाने पर भगवान् शंकर ने सप्तर्षियों को बुलाकर उन्हें पार्वती की परीक्षा के लिए भेजा। सप्तर्षियों ने पार्वती के पास पहुँचकर उनसे तप का उद्देश्य पूछा तो उन्होंने नारद जी द्वारा निर्दिष्ट विधि से शिव को पति रूप में पाने को ही अपनी साधना का लक्ष्य बताया। इस पर वसिष्ठादि सप्तर्षियों ने पहले तो नारद का 'तन का उजला मन का मैला', 'दूसरों के घर फोड़ने वाला' 'कौतुकी' और 'अनुत्तरदायी' बताकर उसकी निन्दा की, पुन: शंकर को अमं-गलवेषधारी','निर्लज्ज', 'उदासीन','निर्विकार','भूत-प्रेतों का साथी', 'दिगम्बर', बताकर दक्ष पुत्री से निर्वाह न करने और उसे जल मरने को विवश करने का दोषी घोषित किया। इस प्रकार सप्तर्षियों ने नारद और शिवजी की खूब निन्दा की तथा पार्वती से हठ छोड़कर

अपने निश्चय पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया परन्तु पार्वती ने तुम नारद को ही अपना गुरु बताते हुए तुम्हारे प्रति दृढ़ विश्वास का भाव प्रकट किया। सप्तर्षियों ने शिवजी के पास आकर पार्वती से हुई अपनी बातचीत उन्हें कह सुनाई।

ब्रह्मा जी बोले—देवर्षे! भगवान् शंकर ब्रह्मचारी का वेश बना स्वयं पार्वती की परीक्षा के लिए पहुँचे। पार्वती ने पूछने पर वटुवेश-धारी शिवजी को बताया कि वह जन्म-जन्मान्तर में शिवजी को पति रूप में पाने के लिए कृत-संकल्प है। असफलता के कारण इस समय अग्नि में जलना चाहती है।

वटुवेशधारी शिव ने पार्वती के इस निश्चय को अविवेकपूर्ण बताते हुए शिव की बहुत प्रकार से निन्दा की। 'भस्मधारी', 'जटिल' 'व्याघ्राजिनधारी', 'कपाली' 'सर्पों को लपेटने वाला', 'विषपायी', 'भक्ष्याभक्ष्यसेवी', त्रिनेत्रधारी', 'भयंकर जोश वाला' 'गृहस्थ भोगादि से रहित', 'भूत प्रेतों के परिकर वाला' आदि बताकर पार्वती को उससे विरत करने की चेष्टा की। ब्रह्मचारी ने कहा—कहाँ कपाली शंकर और कहाँ स्त्रियों में रत्न तुम! विष्णु इन्द्रादि को छोड़कर शिव में तुम्हारा अनुरक्त होना सर्वथा अज्ञानमूलक है। तुम अपने निर्णय पर अब भी पुनर्विचार करो तो अच्छा है।

यह सब सुनकर पार्वती विचलित हो उठीं और शिवनिन्दक के लिए मृत्युदण्ड ही उपयुक्त बताती हुई बोली—तुम ब्रह्मचारी होकर भी मुझे पथभ्रष्ट व्यक्ति और शिवजी के मूलतत्त्व से सर्वथा अनभिज्ञ प्रतीत होते हो, अन्यथा निर्गुण और सगुण ब्रह्म की आत्मारूप शिव के लिए तुम ऐसा न कहते। यह कह कर पार्वती मौन होकर तपोरत हो गईं। वटु के पुनः कुछ कहने को उद्यत होने पर पार्वती ने अपनी सखी विजया से उस वटु को शिवनिन्दा से विरत रहने का आदेश दिया। वटु के वहाँ से चले जाने से इन्कार करने पर स्वयं पार्वती उस स्थान को छोड़ने को प्रस्तुत हो गईं।

पार्वती की सत्यनिष्ठा को देखकर वटुवेशधारी शिव ने अपने वास्तविक रूप का उसे दर्शन कराया और उसका मनोरथ पूर्ण करने की घोषणा की। भगवान् शंकर के साक्षात् दर्शनों से कृतकृत्य पार्वती ने उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए वेद तथा लोकमर्यादा के अनुसार उसके पिता से उसे माँग कर उसके साथ विवाह करने की शिव-

जी से सविनय विनती की। शिवजी पार्वती के इस अनुनय पर मुग्ध

होकर और 'तथास्तु' कह कर कैलाश की ओर चल दिए।

शंकर जी से वरदान प्राप्त कर पार्वती अपने पितृगृह लौट आई। उसके आने से माता-पिता, सम्बन्धियों और परिजनों को बड़ा ही हर्ष हुआ। एक दिन शिवजी नर्तक वेश में पार्वती के घर में आकर सुन्दर और मोहक नृत्य करने लगे। उन्होंने मैना से भिक्षा में पार्वती को माँगा, जिससे मैना कुछ और विचलित हो उठी। इतने में हिमाचल घर आ गये, वे नर्तक के तेजस्वी वेश से प्रभावित तो हुए परन्तु शिव-माया से विमोहित होने के कारण उसकी माँग स्वीकार न कर सके।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! इधर इन्द्र पर्वतराज हिमालय की शिव के प्रति बढ़ती प्रीति से चिन्तित होकर बृहस्पति जी के पास गया और बाधारूप उपाय पूछने लगा। देवगुरु ने शिवजी के विरुद्ध कुछ भी करने से इन्कार कर दिया। इन्द्र निराश होकर मेरे पास आया, मैंने भी शिवजी के विरुद्ध उसकी सहायता करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। तब वह विष्णु जी के पास गया और गिड़गिड़ाने लगा। विष्णु जी ने कहा—शिवनिन्दा महापाप है, यह कार्य मैं नहीं करूँगा। तुम्हें स्वार्थसाधन करना ही है और हिमाचल को मुक्तिलाभ नहीं करने देना है तो तुम शिवजी के पास जाकर उन्हें प्रसन्न करो कि स्वयं अपनी निन्दा करें तो और बात है, अन्य किसी के लिए न यह उचित है और न ही निरापद है। इन्द्र ने जाकर औढ़रदानी का द्वार खटखटाया और भोलेनाथ ने स्वयं अपनी निन्दा आप करने का इन्द्र का निवेदन स्वीकार कर लिया। ज्योतिषी के वेश में हिमालय के घर जाकर शिवजी ने शंकर को सर्वथा 'निराश्रय', 'निसंग', 'कुरूप', 'अगुण', 'श्मशानवासी', 'व्यालग्राही', 'विकट', 'जटाधारी', 'वेद-मार्ग भ्रष्ट' आदि कहकर उसकी निन्दा की तथा अपनी सुलक्षणा कन्या उसे न देने का अनुरोध किया।

ज्योतिषी की बातों से प्रभावित होकर मैना ने अपने पति से सुदृढ़ अनुरोध किया कि मेरी पुत्री पार्वती भले ही आजीवन अवि-वाहित रह जाए परन्तु मैं उसका विवाह शंकर से कदापि नहीं करूँगी। उसने यह भी कहा कि यदि मेरी बात न मानी गई तो मैं विष खाकर अथवा पर्वत से कूद कर अथवा समुद्र में डूबकर अपने प्राण दे दूँगी। यह कह कर मैना कोपभवन में चली गई और खाना-पीना छोड़कर उदास रहने लगी।

शंकर जी द्वारा सप्तर्षियों का स्मरण करते ही अरुन्धती सहित

वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों ने उपस्थिति होकर सादर प्रणाम किया और सेवा की याचना की। शंकर जी ने पार्वती के कठोर तप, ज्योतिषी रूप में अपनी ही अपने द्वारा की गई निन्दा, तारक के उत्पातों से देवों को मुक्त करने के लिए सन्तान उत्पत्ति की आवश्यकता और मैना-हिमाचल का दुराग्रह आदि से उन्हें परिचित कराया। शिवजी ने सप्तर्षियों को मैना-हिमाचल के पास जाकर उन्हें समझाने-बुझाने तथा पार्वती का उनसे विवाह करने के लिए उन्हें उद्यत करने का आदेश दिया।

अरुन्धती सहित सप्तर्षि पर्वतराज के घर आए। अरुन्धती ने अव-सर पाकर मना को और सप्तर्षियों ने पर्वतराज हिमालय को सम-झाते हुए कहा—लोक और वेद में तीन प्रकार के वचन हैं :—(१) शास्त्र-वाक्य (२) स्वत: सुविचरित-विवेकसम्मत वाक्य तथा (३) तत्त्वज्ञों द्वारा श्रुत वाक्य। इन तीनों वचनों में से जिसके भी परिप्रेक्ष्य में भगवान् शंकर के सम्बन्ध में विचार किया जाए, वे सर्वथा विल-क्षण और अनुपम सिद्ध होंगे। भगवान् शंकर रजोगुण से रहित होने पर भी पूर्ण तत्त्वज्ञ हैं। कुवेर जैसे सेवकों के स्वामी को दु:खी और दरिद्र कहने का दुस्साहस कौन कर सकता है? विलास से सृष्टि के सृजन, पालन और संहार में समर्थ भगवान् शंकर से बढ़कर विश्व में और कौन है?, ब्रह्मा, विष्णु आदि के रचयिता शिवजी की महिमा अपरम्पार है। शिवजी से सम्बन्ध स्थापित कर तुम अपने को ही कृत-कृत्य करोगे। वसिष्ठ जी ने पर्वतराज को सचेत करते हुए कहा कि पर्वतराज! यदि आपने हठ किया तो आपको हानि उठानी पड़ सकती है। जिस प्रकार अनरण्यराज ने ब्राह्मण को अपनी कन्या देकर उसके भय से अपनी सम्पत्ति बचा ली थी, उसी प्रकार आप भी अपनी कन्या शिवजी को समर्पित करके उनके प्रकोप से अपने कुल को बचा लीजिए।

पर्वतराज के अनुरोध पर उसे अनरण्यराज का वृत्त सुनाते हुए वसिष्ठ जी बोले—तेजस्वी अनरण्यराज के अनेक पुत्र और पद्मा नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। राजा अपनी पुत्री से अधिक प्रेम करता था। कन्या के युवती होने पर अनरण्यराज ने उसके लिए सुयोग्य वर की खोज प्रारम्भ कर दी। संयोग की बात कि एक दिन जब रूपसी पद्मा सखियोंसहित जलविहार कर रही थी कि उधर से पिप्पलाद मुनि आ निकले और वे कन्या के रूप-सौन्दर्य पर मोहित

होकर अनरण्यराज से कन्या की याचना करने लगे। राजा उसके वृद्धत्व को देखकर चिन्तत हो उठा परन्तु पुरोहित के समझाने-बुझाने पर ऋषि के शाप से कुलरक्षा के विचार से उसने अपनी कन्या पिप्पलाद को दे दी।

पिप्पलाद कन्या को साथ लेकर अपने आश्रम में आ गए। पद्मा ने इसे विधि का विधान मानते हुए पति की सेवा में ही अपना जीवन अर्पित कर दिया। एक दिन सुन्दर युवा के रूप में विचरते धर्म ने पद्मा को अपनी कामवासना का शिकार बनाने की दुश्चेष्टा की तो पतिव्रता सती ने युवक की भर्त्सना करते हुए उसे नष्ट हो जाने का शाप दे दिया। धर्म ने अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर अपनी दुश्चेष्टा का उद्देश्य ब्रह्मा जी की आज्ञा से पद्मा की परीक्षा लेना बताया। इस पर पद्मा चिन्तित हो उठी और अपने शाप के अन्यथा न होने और धर्म के नष्ट होने पर लोकयात्रा का प्रवर्तन सम्भव न होने की स्थिति ने उसे व्यग्र कर दिया। अन्त में विचार कर पद्मा ने धर्म को द्वापर में एक चरण, त्रेता में दो चरण, कलियुग में तीन चरण विहीन और सत्ययुग में पुनः चारों चरणों से युक्त होने के रूप में अपने शाप का संशोधन किया। इधर धर्म ने पिप्पलाद को यौवन का वरदान किया, जिससे पद्मा ने उसके साथ सुखविलास करके अपने जीवन को सफल बनाया।

यह कथा सुनाकर वसिष्ठ जी बोले—पर्वतराज ! जिस प्रकार अनरण्यराज ने अपने कुल की रक्षा की, उसी प्रकार तुम भी अपनी पुत्री का शिवजी से विवाह करके यश के भागी बनो। एक सप्ताह के पश्चात् ही सुन्दर योग लग्न है, जिसमें चन्द्रमा बुध के साथ और रोहिणी तारागण के साथ युक्त है। मार्गशीर्ष का महीना है और चन्द्रमा सर्वदोषरहित है। ऐसे शुभयोग में मूलप्रकृतिरूपा ईश्वरी जगदम्बा जगत्पिता शंकर को देकर कृतकृत्य हो जाओ।

सप्तर्षियों के वचनों को सुनकर पर्वतराज हिमालय ने अपने पर्वतसमाज—सुमेरु, सह्य, गन्धमादन, मन्दर, मैनाक और विन्ध्य आदि—को बुलाकर उनके साथ सप्तर्षियों के प्रस्ताव पर विचार किया। उन सबका अनुमोदन मिल जाने पर हिमालय ने सप्तर्षियों को अपनी स्वीकृति दे दी। सप्तर्षियों ने हिमालय के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट कीं और लौट कर शिवजी से सारा वृत्त यथावत् निवेदित किया तथा उनसे विवाह की तैयारी करने को कहा।

सप्तर्षियों के चले जाने पर हिमालय ने अपने पुरोहित गर्ग द्वारा लग्नपत्रिका लिखवाई और अनेक उत्तमोत्तम सामग्रियों सहित अपने स्वजनों के हाथ शिवजी के पास भिजवाई। शिवजी ने भी अभ्यागत सम्बन्धियों का सोल्लास स्वागत किया। इसके पश्चात् हिमालय ने विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं और वाञ्छित सामग्री का यथोचित संग्रह करने लगा। हिमाचल ने इस शुभ उत्सव में भाग लेने के लिए अपने सभी बन्धु-बान्धवों को आमन्त्रित किया। नगर को सुचारु रूप से सजवाया और विश्वकर्मा को बुलवा कर दूल्हे और बरातियों के लिए सुखसुविधाओं से सम्पन्न आवासों का निर्माण कराया। यह सव करने के उपरान्त पर्वतराज उत्सुकता से विवाह के दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

नारद जी बोले—हे महाभाग ! आप मुझे कृपा करके शिवजी के मंगल-विवाह का विवरण सुनाइये। ब्रह्मा जी बोले—हे वत्स ! दत्तावधान होकर—सुनो। विवाह की लग्न पत्रिका को पाने के उपरान्त भगवान् शंकर ने तुम्हें स्मरण किया और तुम्हारे वहाँ उपस्थित होने पर तुम्हें, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, तथा सूर्य आदि सभी देवों, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों तथा अप्सराओं को अपने विवाहोत्सव में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देने का आदेश दिया। तुम्हारे द्वारा निमन्त्रण पाकर सभी आमन्त्रितों के कैलाश पहुँचने पर शिवजी ने सबका यथोचित स्वागत किया।

इसके पश्चात् शिवजी को दूलह के वेश में सजाया गया। सप्तमातृकाओं ने शिवजी का यथोचित श्रृंगार किया। उनके सिर पर मुकुट के ऊपर चन्द्रमा तथा तिलक के स्थान में तीसरा नेत्र शोभा देने लगा। दोनों कानों पर दो सर्प कर्णभूषण बने। गजचर्म का दुकूल और चन्दनादि एक प्रकार का अंगराग हो गया था। इस प्रकार भगवान् शिव का अनुपम सौन्दर्य और भी निखर उठा। शिवजी के दूलह के रूप में सुसज्जित होने पर देवों, नागों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं ने बारात के प्रस्थान की बात कही। यह सुनकर शिवजी ने विष्णु जी के कथन पर कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम भृगु, बृहस्पति आदि ऋषियों द्वारा कराई गई सभी विधियाँ सम्पन्न कीं और ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेकर कैलाश से प्रस्थान किया।

शंकर जी की उस बारात में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, लोकपाल, सिद्ध, भूत, प्रेत, बैताल, ब्रह्मराक्षस, यातुधान, शाकिनी, प्रमथ, यक्ष, गन्धर्व,

किन्नर तथा अप्सराएँ आदि सपरिवार सजे-धजे हुए सम्मिलित थे। बारात को नगर के समीप आया देखकर मैना अपनी पुत्री के भावी पति को देखने को व्यग्र हो उठी। उस समय हे नारद ! तुम उसके सहायक थे। वह पास से गुजरते प्रत्येक सुसज्जित, रूपवान् युवा को देखकर उसके शिव होने का अनुमान करती परन्तु पूछने पर तुम इन्कार कर देते और बताते कि यह यक्ष है, यह गन्धर्व है, यह किन्नर है, यह अग्नि है, यह यम है, यह ब्रह्म है और यह विष्णु हैं। तुमने जब मैना को यह बताया कि ये सब तो शिवजी के वंशवद एवं प्रियजन हैं और शिवजी इन सबसे बढ़-चढ़ कर सुन्दर हैं तो मैना मुग्ध हो उठी परन्तु ज्यों ही उसने शिवजी का दर्शन किया, त्यों ही वह शोकाकुल हो गई। पञ्चमुख, त्रिनेत्रधारी, भूतिभूषित शिव को वृषभारूढ़ देख-कर मैना अधीर होकर मूछित हो गई। सखियाँ उसे सचेत करने का प्रयास करने लगीं।

संज्ञा में आने पर मैना अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप और तिर-स्कार की बातें करने लगी। वह ऐसे पति को पाने के लिए तप करने वाली पार्वती को, सप्तर्षियों को, अरुन्धती को और तुम नारद को बहुत कड़े अपशब्द कहने लगी। पार्वती की शिव के लिए की गई साधना को सुवर्ण देकर काँच खरीदना, चन्दन छोड़ कर कीच लपे-टना, गंगाजल छोड़कर गन्दे नाले का जल पीना, सूर्य को त्याग कर जुगनू पकड़ना, तन्दुल छोड़कर तुष भक्षण करना, सिंह छोड़ शृंगाल पालना और मांगलिक यज्ञ-विभूति के बदले चिता-भस्म ग्रहण करना बताकर उसकी बहुत ही अवज्ञा करने लगी। विष्णु जैसे देवों को छोड़-कर शिव के वरण करने को नितान्त मूर्खता बताने लगी। बड़बड़ाती हुई मैना बोली कि इससे तो मैं वन्ध्या ही रह जाती। नारद जी ! मैंने उस समय मैना को समझाने की चेष्टा की तो उसने मुझ दुष्ट अधमशिरोमणि आदि विशेषणों से सम्बोधित कर अपनी आँखों से दूर चले जाने को कहा। उसने देवों की बात सुनने से भी इन्कार कर दिया। उसने घोषणा कर दी कि उसके जीवित रहते पार्वती का विवाह शंकर से नहीं होगा। मैना के इन वचनों से वहाँ तहलका मच गया। सभी लोग हाहाकार करने लगे।

परिस्थिति को विषम होते देख पर्वतराज हिमाचल ने मैना को समझाने का प्रयास किया परन्तु मैना पति की बात को भी सुनने को प्रस्तुत न हुई। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि तुम हठ करके

पार्वती का विवाह शंकर से करोगे तो मैं निश्चय ही अपने प्राणों को त्याग दूँगी। यह देख कर स्वयं पार्वती ने अपनी माँ को समझाने की चेष्टा की। इस पर तो क्रोधातुर होकर मैना पार्वती को गाली देने के साथ-साथ बुरी तरह उसे पीटने लगी। उस समय मैं फिर मैना के पास जाकर युक्तिपूर्वक उसके आगे शिवतत्त्व का वर्णन करने लगा परन्तु वह टस से मस न हुई। अन्ततः विष्णु जी ने मैना को अनेक प्रकार से जब समझाया तो उसने किसी प्रकार यह स्वीकार किया कि यदि शंकर सुवेशधारी बनकर रहना स्वीकार करे तो मैं यह सम्बन्ध मान सकती हूँ। फलतः सुव्यवस्थित और सुसज्जित वेशभूषा में शिवजी को मैना के समक्ष लाया गया और इन्हें इस रूप में देख-कर मन्त्रमुग्ध-सी मैना ने सन्तोष प्रकट किया। इस प्रकार बिगड़ती स्थिति सँभल गई।

इसके उपरान्त अपने गणों सहित शिवजी हिमालय के द्वार पर आए। मैना ने स्वागत-सत्कार करते हुए शिवजी की आरती उतारी। शिवजी की रूप-सुषमा पर मुग्ध होकर मैना अब अपनी कन्या के भाग्य की सराहना करने लगी।

यथासमय पार्वती का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हुआ और फिर शिवजी द्वारा दिए गए वस्त्रों, आभूषणों से उसे अलंकृत किया गया। बृहस्पति जी ने लग्न को देखकर शिवजी की ओर से, गर्ग ने पर्वतराज की ओर से विवाह संस्कार सम्पन्न कराया। गर्गाचार्य ने हिमालय और मैना से कन्यादान कराया। जब गोत्राचार पढ़ने का समय आया तो शिवजी से भी उनसे अपना गोत्र प्रवर और कुल आदि बताने को कहा गया। इस पर तुमने अरूप, परब्रह्म, निराकार, निर्विकार, माया-तीत शिव की महिमा का गान कर कन्या पक्ष वालों को इस प्रकार की लौकिक बातें शिवजी से न पूछने के लिए समझाया। कन्यादान का समय बीतते देख कर मेरु आदि सम्बन्धियों के अनुरोध पर हिमालय ने कन्यादान दिया और दहेज में विपुल सामग्री देकर शिवजी को सन्तुष्ट किया।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! जब यज्ञमण्डप में शिव पार्वती यज्ञ में आहुतियाँ दे रहे थे तो मेरा मन पार्वती के मुख को देखने को विच-लित हो उठा। यज्ञाग्नि में गीली समिधाएँ डालकर मैंने पार्वती को को अपना मुख अनावृत्त करने को विवश कर दिया। पार्वती की उन्मुक्त रूपराशि के दर्शन मात्र से ही मेरा मन इतना अधिक क्षुब्ध

हो गया कि मेरा वीर्य ही पृथ्वी पर स्खलित हो गया। मैंने लज्जित होकर पैर से गुप्तांग को मर्दन करने और वीर्य छुपाने की चेष्टा की। शिवजी को यह सब ज्ञात हो गया था। वे कुपित होकर मुझे मारने को उठे परन्तु देवों ने स्तुति करके उन्हें किसी प्रकार शान्त कर दिया। मेरा मर्दित वीर्य कण-कण हो गया था और उससे हजारों बालखिल्य ऋषि उत्पन्न होकर तत्काल मुझे 'पिता' 'पिता' कहने लगे। उस समय तुमने कुपित होकर उन्हें तप करने के लिए गन्धमादन पर्वत पर भेज दिया। उसके उपरान्त मेरी निश्चल स्तुति को सुनकर शंकर भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो गए और उन्होंने मुझे सृष्टि रचना का वरदान दिया।

लौकिक रीति से विवाह सम्पन्न हो जाने पर—शिव-पार्वती—एक साथ आसनासीन हुए और दोनों ने ब्राह्मणों को बहुत सारा द्रव्य प्रदान दिया। इस अवसर पर रति ने उपस्थित होकर भगवान् शिव से अपने भस्मीभूत पति को जीवित करने का अनुरोध किया। शिवजी ने ज्योंही भस्म पर दृष्टिपात किया त्योंही कामदेव तत्क्षण वहाँ आविर्भूत हो गया। रति के आनन्द की सीमा न रही। शिवजी ने काम को विष्णु-लोक के बाहर रहने का आदेश दिया।

सब कार्य विधिपूर्वक निष्पन्न हो जाने पर बारात लौट आई। हिमाचल ने और अधिक ठहरने का बहुत अनुरोध किया और पुनः बहुत सारा अन्न-धन देकर बारात को रवाना किया। शिवा, शिव के साथ सभी बरातियों ने कैलाश पहुँच कर कुछ दिन मौज उड़ाई और पुनः शिवजी की अनुमति लेकर और उन्हें प्रणाम करके सभी अपने-अपने धाम को लौट गए।

६

कुमार खण्ड

नारद बोले—हे ब्रह्मन् ! शंकर जी ने पार्वती के साथ विवाह करने के पश्चात् क्या किया ? उनके पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए और तारकासुर का वध किस प्रकार हुआ ? यह सब पापनाशक वृत्त तथा अन्य शिवचरित्र आप मुझे सुनाने की कृपा करें। नारद जी की शिवजी में गहन निष्ठा व भक्ति को देखते हुए ब्रह्मा जी उन्हें स्वामी कार्तिकेय के जन्म और तारकासुर के वध की कथा सुनाने लगे।

ब्रह्मा जी बोले—देवर्षे ! कैलाश पर पहुँच कर शंकर जी पार्वती को लेकर सुरम्य एकान्त स्थल को चले गए और वहाँ सहस्त्रों वर्षों तक रतिविहार करते रहे। शंकर जी द्वारा इतने समय के उपरान्त भी पुत्रोत्पन्न न करने पर देवता चिन्तित हो उठे और वे मुझे अग्रणी बनाकर विष्णु जी के पास गए और उनसे शिवजी को रसक्रीड़ा से विरत कर सन्तानोत्पत्ति में प्रवृत्त करने का उपाय पूछने लगे। विष्णु जी ने स्त्री-पुरुष के रतिभोग में बाधा डालने को महापाप बताते हुए देवों को इतिहास के उदाहरण देकर समझाया कि शिव-पार्वती के रतिविलास को भंग करने की सोच कर वे दुःख-ताप के भागी न बनें। विष्णु जी ने उन्हें बताया कि दुर्वासा ने इन्द्र का रम्भा से वियोग कराया जिसके फलस्वरूप उसे अपनी स्त्री का वियोग सहना पड़ा। बृहस्पति ने कामदेव का घृताञ्ची से वियोग कराया जिसके परिणाम-स्वरूप चन्द्रमा ने छः मास के भीतर ही उसकी स्त्री का हरण कर लिया। गौतम ने रतिपीड़ित चन्द्रमा का मोहिनी से वियोग कराया तो उसे स्वयं को सुदीर्घ काल तक स्त्रीवियोग से सन्तप्त रहना पड़ा। राजा हरिश्चन्द्र के निर्जन वन में एक हलधर किसान का किसी शूद्रा से वियोग करने पर उसे विश्वामित्र के कोप का भाजन बन कर स्त्री-पुत्रादि से वियुक्त होना पड़ा। देवो ! इस प्रकार के अनेक उपलब्ध

उदाहरणों से शिक्षा लेकर तुम लोग शिव-पार्वती को वियुक्त करने की दुश्चेष्टा से विरत हो जाओ। मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि सहस्र वर्ष पूर्ण होने पर शिवजी स्वयं ही रतिभोग से विरत हो जाएँगे। विष्णु जी के इस कथन से प्रबोधित देवता अपने-अपने धाम को लौट गए।

इधर शिवजी और पार्वती (शक्तिमान और शक्ति) के विहार से पृथ्वी भाराक्रान्त होकर काँप उठी और त्रिलोकी में भय व्याप्त हो गया। देवता लोग पुनः मेरे पास आए और मैं उन्हें विष्णु जी के पास ले गया। विष्णु जी अब हमें कैलाश पर ले गए और वहाँ भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे। स्तुति करते समय भावविह्वल विष्णु जी के नेत्रों में अश्रु आ गए।

शिवजी देवों की स्तुति से उत्पन्न प्रसन्नता तथा विष्णु जी के प्रति स्नेहातिरेक के कारण पार्वती को छोड़कर घर से बाहर आए और उनसे बोले—"शिर से स्खलित मेरे वीर्य को ग्रहण करने की क्षमता हो तो उसे ग्रहण करो और इससे पुत्रोत्पत्ति करके तारक का विनाश करो।"—यह कह कर शिवजी ने अपना वीर्य पृथ्वी पर फेंक दिया। देवों के अनुरोध पर अग्नि ने कपोत बन कर उस वीर्य को चुग लिया। इधर पार्वती को जब शंकर के स्खलित वीर्य होने के कारण अपना रति भोग तथा मातृत्व नष्ट होता प्रतीत हुआ तो उसने स्वार्थी देवों को सुखी न होने का तथा देवांगनाओं को अपने समान वन्ध्या एवं रतिपीड़ित होने का शाप दे डाला।

अग्नि में होम द्वारा अन्न भक्षण करते रहने से पार्वती के शाप के फलस्वरूप देवों के उदर में शिवजी के वीर्य के पहुँच जाने से उन्हें गर्भ हो गया और इससे मुझ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा अन्यान्य देवों के उदर में शूल होने लगा। इस दुःख की निवृत्ति के लिए हम सब पुनः भगवान् शंकर की शरण में गए और आर्त्तवाणी से उनकी स्तुति करने लगे। प्रसन्न होकर शिवजी ने हम सबको वमन द्वारा वीर्य को बाहर निकालने का आदेश दिया। हमारे वमन करते ही स्वर्णवत् देदीप्यमान् वीर्य बाहर निकलते ही पर्वताकार होकर आकाश को छूने लगा। अग्नि की वेदना पर द्रवित होकर शिवजी ने उसे ताप मुक्त होने का उपाय भक्षित वीर्य को किसी स्त्री की योनि से स्थापित करना बताया उस समय तुम भी वहाँ पहुँच गए और तुम्हारे बताए ढंग से अग्नि ने माघ मास में प्रयाग में स्नान करने से [illegible] सप्तर्षियों की पत्नि-

यों में अरुन्धती को छोड़कर शेष छ: जब अग्निसेवन को आई तो अग्नि ने झट से उनके रोमों द्वारा शिवजी का वीर्य उनकी योनियों में स्थापित कर दिया। गर्भवती हो जाने से पतिपरित्यक्ता वे छ. की छः हिमालय पर जाकर रहने लगीं और यथासमय अपने गर्भ को पर्वतराज पर छोड़ आईं। उस गर्भ को सहन न कर पाने के कारण हिमालय ने उसे गंगा में फेंक दिया और गंगा ने भी सहन न कर पाने से उस गर्भ को अपनी लहरों से उठा कर शरकण्डों के वन में फेंक दिया। वहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी के दिन शिवजी के पुत्र का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे त्रिलोकी में आनन्द का वातावरण छा गया।

कार्त्तिकेय की तेजस्विता का परिचय देते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं—हे नारद! कार्त्तिकेय के उत्पन्न होने पर जब वहाँ विश्वामित्र का आगमन हुआ तो कुमार ने उनसे अपने संस्कार कराने को कहा। विश्वामित्र ने नवजात शिशु के कथन पर बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया और अपने को क्षत्रिय गाधि का पुत्र बताकर पौरोहित्य में अपनी अपात्रता बताई। कुमार ने उन्हें ब्राह्मणोत्तम होने का वरदान दिया और फिर विश्वामित्र ने उनके जातकर्म आदि सारे-संस्कार यथा-विधि सम्पन्न कराए।

कार्त्तिकेय के उत्पन्न होने पर श्वेत् नामक एक अन्य महर्षि ने वहाँ वन जात बालक का चुम्बन किया और उसे शक्ति-शस्त्रादि अर्पण किए। उन शस्त्रों को लेकर कार्त्तिकेय ने क्रौंच पर्वत पर अभि-यान किया और वहाँ वह उस पर्वत के शिखर गिराने लगा। यह देखकर दस वीर राक्षस प्रतिरोध को आए परन्तु कुमार के प्रहार से तत्काल नष्ट हो गए। इन्द्र ने वहाँ पहुँच कर कुमार के दक्षिण, वाम पार्श्वों और हृदय में अपने वज्र से प्रहार किया तो उन स्थानों से क्रमशः शाख, विशाख और निगम नामक तीन महाबली पुरुष उत्पन्न हुए। ये सब चारों स्कन्द हुए और जब इन्द्र पर झपटे तो भयभीत इन्द्र ने इनके शरणागत होकर ही अपने प्राणों की रक्षा की।

इस बालक के स्वर्ग पहुँचने पर सरोवर में स्नान करती कृत्तिका नामक छः स्त्रियाँ उसे पकड़ने दौड़ीं। कुमार ने एकदम अपने छः मुख करके एक-एक मुख से सबका स्तन-पान किया। छः कृत्तिकाएँ उसे अपने घर ले जाकर उसका सोत्साह भरण-पोषण करने लगीं।

ये सारी घटनाएँ सुनाकर ब्रह्मा जी बोले—हे नारद! शिव-जी के पुत्र कार्त्तिकेय सहज-सज्ञान एवं अद्भुत पराक्रमी तथा परम

तेजस्वी थे। वे भगवान् शंकर का ही साक्षात् अवतार थे।

एक दिन पार्वती ने शिवजी से पूछा कि पृथ्वी पर गिरा उनका वीर्य कहाँ गया। क्या वह नष्ट हो गया है अथवा उससे कोई बालक उत्पन्न हुआ है। शिवजी ने तत्काल देवों को बुलाकर पूछताछ की तो खोज-बीन करने पर स्कन्द के रूप में शिव के वीर्य से पुत्रोत्पत्ति का पता चला। इस पर शिवजी ने नन्दीश्वर की अध्यक्षता में अपने गणों को कुमार को लाने का आदेश दिया। नन्दीश्वर ने कृत्तिकाओं के घर जाकर कुमार को इस रहस्य से परिचित कराया कि वे भगवान् शकर के ही आत्मज हैं। यह बताकर नन्दीश्वर कुमार को पार्वती जी द्वारा भेजे गए सुन्दर रथ पर सादर बिठा कर शिवलोक को ले आए।

शिवलोक में पहुँचने पर कुमार का हार्दिक स्वागत हुआ। उसके सम्मान में शिव और पार्वती ने एक महोत्सव का आयोजन किया। इसके उपरान्त शुभ दिन, तिथि और मुहूर्त देखकर कुमार का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया और गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों, समुद्रों, सरोवरों, वापियों और कूपों से लाए पवित्र जल से स्नान कराया गया। इसके उपरान्त उसे एक सुन्दर सिंहासन पर बिठाकर उसका आराधन किया गया इस अवसर पर विष्णु ने उसे अपनी गदा और चक्र, इन्द्र ने एरावत, स्वयं भगवान् शंकर ने त्रिशूल, लक्ष्मी ने कमल तथा अन्य रूप और देवों ने अपनी श्रेष्ठ निधि कुमार को उपहार के रूप में समर्पित की।

देवों ने भगवान् शंकर की स्तुति करके उनसे कुमार को तारिकासुर वध के लिए प्रस्थानोद्यत देववाहिनी का नेतृत्व करने का उपदेश देने को कहा। भगवान् शिव ने देवों की प्रार्थना स्वीकार की और कुमार को देवसेना का सेनापति बनाकर तारकवध के लिए रवाना कर दिया।

अपने प्रदेश में देवसेना की व्यूह रचना को देखकर तारकासुर ने भी अपनी सेना को व्यवस्थित और सावधान किया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। सर्वप्रथम इन्द्र ने तारक से युद्ध किया। तारक ने इन्द्र की सारी युद्ध विद्या निरर्थक करते हुए उसे परास्त कर दिया। अब विष्णु जी तारक के सामने आए। उन्होंने तारक पर अपनी गदा से प्रहार किया तो तारक ने अपने त्रिशिख बाण से गदा के दो टुकड़े कर दिए। विष्णु जी ने अपने शार्ंग धनुष पर बाण चलाकर उस दुष्ट पर प्रहार किया तो असुर ने अपनी शक्ति के प्रहार से विष्णु जी को

धराशायी कर दिया। यह स्थिति देखकर वीरभद्र को बड़ा क्रोध आया और उसने अपने त्रिशूल से तारक को अत्यन्त घायल कर दिया। वीरभद्र ने तारक को मारने का बड़ा पराक्रम किया परन्तु महाकौतुकी तारक ने भीषण संग्राम करके वीरभद्र को युद्ध से मार भगाया।

ब्रह्मा जी बोले—हे नारद ! इस समय मैंने कार्तिकेय कुमार के पास जाकर अपने द्वारा दिए गए वर के प्रभाव से अन्यान्य देवों द्वारा तारक के अवध्य और एकमात्र आपके द्वारा वध्य होने का रहस्य बताकर कुमार से पराक्रम करने का निवेदन किया। कुमार यह सुन-कर ज्यों ही तारक के समक्ष युद्ध करने गए त्यों ही तारक के देवों की भर्त्सना की कि उन कायरों ने स्वयं पीछे हट कर इस बालक को आगे कर दिया है। उसने कुमार से युद्धस्थल से भाग जाने को भी कहा। इधर कुमार ने तारक पर ज्यों ही प्रहार किया, त्यों ही विष्णु, इन्द्र आदि भी उस दैत्य पर टूट पड़े। कुमार ने तारक पर शक्ति से प्रहार किया तो उत्तर में तारक ने भी कुमार पर शक्ति छोडी। तारक की शक्ति के आघात से कुमार मूर्च्छित हो गए। थोड़ी ही देर में सचेत होने पर कुमार ने तारक पर भीषण प्रहार किया। दोनों वीरों का युद्ध इतना उग्र और भयंकर था कि अन्य सभी देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व आदि उस युद्ध को चकित होकर देखने लगे। अन्त में उस राक्षस को काफी खिला चुकने के उपरान्त कुमार ने शिव-पार्वती का स्मरण करके एक प्रबल शक्ति से असुर की छाती में इस तीव्रता से प्रहार किया कि वह दैत्य शीघ्र ही विशीर्ण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तारकासुर के मरते ही देवों में हर्ष की लहर छा गई और उन्होंने पुष्पवर्षा कर कुमार का अभिनन्दन किया।

कुमार की सेवा में उपस्थित होकर राजा क्रौंच ने उसके समक्ष बाणासुर के उत्पातों का वर्णन किया और उससे मुक्ति दिलाने की कुमार से प्रार्थना की तो कुमार ने वहीं से एक प्रबल शक्ति छोड़कर अनुचरों के सहित बाणासुर का विनाश कर दिया। प्रलम्बासुर से पीड़ित शेष जी के पुत्र कुमुद ने कुमार की शरण ग्रहण की तो कुमार ने प्रलम्ब का संहार करके कुमुद को निर्भय किया। वस्तुतः कुमार कार्त्तिकेय ने सभी दारुण असुरों का विनाश करके देवों के दुःख भय को दूर कर दिया।

सभी देवता आततायी के विनाश से कृतकृत्य होकर कुमार को

साथ लेकर कैलाश में आए और भगवान् शंकर के प्रति आभार प्रकट करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। शंकर जी ने कुमार का चुम्बन करते हुए उन्हें बहुत स्नेह दिया और देवों को आश्वासन दिया—मैं सब का कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता और विकाररहित हूँ। देवताओं के लिए कृपा का कोष हूँ। जब भी तुम पर किसी प्रकार का दुःख या संकट आ पड़े, तुम लोग मेरे पास आना, मैं तुम्हें निरापद और सुखी करूँगा। भगवान् शंकर के इन वचनों से हर्षोत्फुल्ल देवता शिवजी को प्रणाम करके अपने-अपने लोक को चले गये।

सूत जी कहते हैं कि स्कन्द जी के इस दिव्य चरित्र को सुनने से कृतकृत्य नारद जी ने ब्रह्मा जी से मंगलनिधान गणेश जी का चरित्र सुनाने का अनुरोध किया। नारद जी की शिवजी में प्रीति को देख-कर ब्रह्मा जी शंकर जी का स्मरण करके नारद जी को गणेश जी का चरित्र सुनाने लगे। ब्रह्मा जी बोले--हे नारद। कल्पभेद से गणेश जी के कई प्रकार के चरित्र हैं। मैं तुम्हें श्वेतकल्प में होने वाले गणेश जी की उत्पत्ति का वृत्त सुनाता हूँ।

ब्रह्मा जी बोले—एक बार पार्वती जी की दो सखियों—जया और विजया—ने अपनी स्वामिनी से कहा कि शंकर जी के द्वार पर विराजमान असंख्य गणों और द्वारपालों पर हमारा अधिकार होते हुए भी कोई अधिकार नहीं है। यदि हमारा कोई अपना गण हो तो हमारी इच्छा चल सकती है। एक बार पार्वती के स्नान करते समय जब शिवजी भीतर आ गए और जगदम्बिका को लज्जा का अनुभव करना पड़ा तो उन्हें अपनी सखियों का वचन स्मरण हो आया और उन्हें अपने विश्वस्त अनुचर की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इस पर उन्होंने अपने शरीर के मल से एक रूपवान्, गुण-सम्पन्न तथा तेजस्वी बालक का निर्माण किया। पार्वती ने उस नवजात सक्षम शिशु के हाथ में एक चष्टि थमा कर उसे द्वाररक्षक नियुक्त कर दिया। पार्वती ने उसे आदेश दिया कि उनकी आज्ञा के बिना कोई भीतर न आने पाए। यह कह कर पार्वती स्नानार्थ चली गईं। इस बीच भग-वान् शंकर भीतर जाने लगे तो गणेश जी ने उन्हें मना कर दिया। इस अनहोनी पर खिन्न होकर शिवजी ने अपने को गृहपति एवं गिरि-जापति बता कर अपने ही घर में जाने से उन्हें रोकने वाले को मूर्ख और उसके कार्य को अनधिकार एवं अविवेकपूर्ण चेष्टा बताया। शंकर जी इस प्रकार अधिकार के रूप में घर में प्रविष्ट होने लगे।

इस पर जब पुन: गणेश जी ने उस चष्टि से शंकर जी को रोका तो उन्होंने अपने गणों को उस वालक की खवर लेने का आदेश दिया।

शिवगणों ने गणेश जी को समझाने-बुझाने की और शिवजी के विरोध से उसे विरत करने की वहुत चेष्टा की परन्तु गणेश जी ने उन्हें डाँट कर भगा दिया। एक वार नहीं, दो वार नहीं, प्रत्युत तीन वार लौट-लौट कर शान्तिपूर्वक तथा रोषपूर्वक समझाने की शिव-गणों ने वहुत चेष्टा की परन्तु उसका कोई फल न निकला। गणेश जी अपने निश्चय—पार्वती की आज्ञा के विना शिवजी का गृह में प्रवेश नहीं—पर अडिग रहे। शिवगणों ने अपने आयुधों से गणेश जी पर प्रहार भी किया परन्तु दण्डपाणि गणेश ने सवको पराभूत कर दिया।

नारद जी! जव तुमने मुझे, विष्णु जी और इन्द्रादि देवों को इस विचित्र घटना से परिचित कराया तो हम सव शिवलोक में पहुँचे और सर्वप्रथम मैं गणेश को समझाने गया परन्तु उसने मेरी एक न सुनी, उल्टे वह मेरी ही दाढ़ी-मूँछ नोचने लगा। मैंने अपना परिचय देकर शान्तिस्थापना का प्रयास ही अपने आने का उद्देश्य वताया परन्तु गणेश ने परिघ उठा कर मुझ पर प्रहार कर दिया।

मैंने लौट कर जव सारी घटना शिवजी को कह सुनाई तो लीला-धारी शंकर ने स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान किया। विष्णु जी और उनकी सारी सेना भी शिवजी के पीछे चली। वहाँ पहुँचकर विष्णु जी उस वालक पर अपने भयानक से भयानक अस्त्रों से प्रहार करने लगे परन्तु वालक ने विकराल रूप धारण कर लिया और विष्णु जी को निरस्त भी कर दिया। इस पर स्वयं शिवजी ने उस वालक पर प्रहार किया परन्तु वालक ने अपनी शक्ति को फेंक कर शिव का धनुष गिरा दिया। परिघ मार कर शिवजी के हाथ से पिनाक को पृथ्वी पर फिकवा दिया। इसके उपरान्त गणेश ने अपने शूल से शिवजी के पाँचों हाथों पर आघात करके उन्हें व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार गणेश जी के परा-क्रम से शिवजी और उनके सभी गण, विष्णु जी और उनके पार्षद ब्रह्मा, इन्द्र और उनके सैनिक सभी पराभूत होकर हतप्रभ रह गए। अन्त में शिवजी ने क्रुद्ध होकर अपने त्रिशूल से उस वालक गणेश का सिर काट दिया। इससे गणों और देवों की सेना निश्चिन्त हो गई।

ब्रह्मा जी वोले—देवर्षे नारद! उस समय तुमने जाकर यह सामाचार पार्वती जी को सुनाया तो अपने पुत्र की हत्या से विक्षुब्ध

भगवती ने एक लाख शक्तियों की रचना करके उन्हें अपने पुत्र के हत्यारों—गणों और देवों के साथ-साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि —को खाने का आदेश दे दिया। शक्तियों के उत्पात से सर्वत्र आतंक छा गया और सभी देवता भयाक्रान्त हो गए। इधर शिवा के क्रोध के कारण शिवजी को घर में जाने का साहस नहीं हो रहा था। हम सभी उस समय निष्प्राण और निस्तेज होकर चिन्ताग्रस्त थे। इतने में तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर सबने आशा से तुम्हारी ओर देखा और तुमने समझौते के प्रयास में शिवा के पास जाकर उनकी बहुविध स्तुति की और उनका क्रोध शान्त किया था। शिवा ने अपने पुत्र के जीवित होने और देवों के मध्य उसे पूजनीय स्वीकार किए जाने की शर्त पर ही समझौता करना माना। शंकर जी के आदेश पर देवों ने उत्तर दिशा में जाकर एकदन्त गज का सिर काट कर गणेश जी के धड़ से जोड़ दिया। गणेश जी के जीवित होने पर देवों ने उनकी आराधना की। यह सब देखकर पार्वती जी का क्रोध शान्त हो गया और शिवा शिव में पूर्ववत् सद्भाव तथा अनुराग हो गया। उस समय मैं, विष्णु जी और अन्य सभी देवता शिवजी से अनुमति लेकर अपने-अपने लोक को चले गए।

कार्तिकेय और गणेश जी के क्रमशः प्रौढ़ हो जाने पर शिव-पार्वती ने दोनों बालकों के विवाह करने का निश्चय किया, जिसे जान कर दोनों बालक अत्यन्त हर्षित हुए। उत्साहातिरेक में आकर दोनों ने एक-दूसरे से पहले अपना विवाह करने का माता-पिता से आग्रह किया। बच्चों के हठ को देखकर शिवजी ने एक शर्त यह रख दी कि दोनों में जो बालक सृष्टि की परिक्रमा करके पहले लौटेगा, उसका विवाह ही प्रथम किया जाएगा। शिवजी के वचनों को सुनकर कार्त्तिकेय पृथ्वी-परिक्रमा को दौड़ पड़े। अपने भाई के चले जाने पर गणेश जी ने शिव-पार्वती को सिंहासनासीन करके उनकी विधिवत पूजा की और सात बार उनकी प्रदक्षिणा की। उसके पश्चात् गणेश ने शिव-पार्वती से अपने विवाह का अनुरोध किया। शिवजी के आश्चर्य करने पर गणेश जी ने कहा कि आपने ही तो यह विधान किया है कि माता-पिता की प्रदक्षिणा से पृथ्वी-प्रदक्षिणा का फल मिलता है। गणेश जी की इस सूझ-बूझ पर शिव-पार्वती अवाक् रह गए और उन्होंने गणेश जी का विवाह करने का निश्चय किया।

इसी समय विश्वरूप प्रजापति ने शिव-शिवा के पास आकर

अपनी सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओं का उनके पुत्र के साथ विवाह की बातचीत की। शंकर-पार्वती ने सभी देवों, ऋषियों को आमन्त्रित करके बड़े समारोह से गणेश जी का दोनों कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। गणेश जी के इन दोनों स्त्रियों से दो पुत्र हुए। सिद्धि के पुत्र का नाम क्षेम और बुद्धि के पुत्र का नाम लाभ रखा गया।

इधर जब कुमार पृथ्वी प्रदक्षिणा करके लौट कर घर आ रहे थे तो नारद जी ! तुमने उसे गणेश जी के विवाह और सन्तानोत्पत्ति आदि का समाचार सुनाते हुए कहा कि जहाँ माता-पिता ही पक्षपाती हों, वहाँ क्या किया जा सकता है। तुम्हारे भड़काने पर कार्त्तिकेय इतना उत्तेजित हो उठा कि वह घर छोड़ कर तप करने के लिए क्रौंच पर्वत पर चला गया। उसने माता-पिता द्वारा कारण पूछने पर उनके कपटपूर्ण व्यवहार पर अपना रोष प्रकट किया। शंकर-पार्वती स्थिति को स्पष्ट करने के लिए जब क्रौंच पर्वत पर गए तो कुमार उन्हें भेंट का अवसर दिए विना ही खिन्नभाव से गुपचुप कहीं अन्यत्र चल दिया।

युद्ध खण्ड

नारद जी बोले —हे पितामह ! अब आप हमें शिवजी के द्वारा किए गए दुष्ट दानवों के वध का विवरण सुनाने की कृपा करें। ब्रह्मा जी बोले कि एक समय व्यास जी ने भी सनत्कुमार से यही पूछा था। उस समय उन्होंने जो कहा था, वही मैं उन्हें सुनाता हूँ। सनत्कुमार जी बोले—हे महाप्राज्ञ व्यास जी ! तारकासुर के तीन तेजस्वी पुत्र थे—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष। तीनों शक्तिपुंज, संयमी, सत्यवादी होने के साथ-साथ जन्मजात देवद्वेषी भी थे। स्कन्द द्वारा अपने पिता तारक के मारे जाने पर तीनों ने पर्वत की गुफा में जाकर अनन्त काल तक घोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर मैं उनके समक्ष प्रकट हुआ। उन तीनों ने मुझसे जरा, व्याधि और मृत्यु से अतीत अमरत्व का वर माँगा। मैंने उन्हें समझा-बुझा कर कोई और वर माँगने को कहा तो उन्होंने अपने निवास के लिए अजेय तथा अभेद्य दुर्गों वाले सम्पन्न एवं समृद्ध तीन पुरों की माँग की और देव-दानव द्वारा उन्हें अवध्य करने का वरदान माँगा। मैंने उन्हें शिवजी के अतिरिक्त अन्य सभी देव-दानवों से अजेय होने तथा सम्पन्न पुरों के अधिपति बनने वरदान दे दिया। मेरी आज्ञा से मयदानव ने आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी पर क्रमशः ज्येष्ठ के लिए सुवर्णमय, मध्यम के लिए रजतमय और कनिष्ठ के लिए लोहमय पुर का निर्माण किया। तीनों महाबली अपने-अपने पुरों में जाकर सुखपूर्वक रहने लगे।

तीनों दैत्य ब्रह्मा जी से प्राप्त वर से उद्धत हो गए और त्रिलोकी को पीड़ित करने लगे। देवलोक के सन्तप्त होने पर देवता मुझ ब्रह्मा की शरण में आकर अपना दुःखड़ा रोने लगे। मैंने देवों को बताया कि शिवजी के प्रसन्न होने पर ही इन दैत्यों का विनाश सम्भव है। मेरे सत्परामर्श पर देवताओं ने भगवान् शंकर की सेवा में उपस्थित

होकर उनकी बहुविध स्तुति की। शंकर जी के पूछने पर देवों ने उन्हें अपनी व्यथा-वेदना कह सुनाई। शिवजी ने देवों के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए उन्हें उपयुक्त समय तक प्रतीक्षा करने को कहा। शिवजी ने बताया कि वे तीनों ही दैत्य मुझसे प्रीति रखते हैं और जब तक वे मेरी भक्ति करते हैं, तब तक उनका विनाश नहीं हो सकता। इतने पर भी शिवजी ने देवों के दुःख दूर करने का उन्हें पूर्ण आश्वासन दिया।

शिवलोक से लौटकर देवगण पुनः मेरे पास आए और मैंने उन्हें विष्णु जी के पास भेज दिया। विष्णु जी ने शिवजी के इस कथन को सत्य बतलाया कि धर्म और भक्ति-नीति के रहते दैत्यों का विनाश नहीं हो सकता। सूर्य के रहते अन्धकार कभी नहीं टिक सकता। इधर त्रिपुरों के रहते न धर्म रह सकता है और न ही देव सुरक्षित रह सकते हैं। विष्णु जी ने कुछ देर सोच कर यज्ञों का स्मरण किया और इन्द्रादि से यज्ञ करने को कहा। देवों द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने से यज्ञ कुण्ड से प्रचण्डकाय, शूलशक्तिधारी सहस्रों भूतों का समुदाय प्रकट हुआ। विष्णु जी ने उन्हें त्रिपुर नगर को नष्ट करने का आदेश दिया। भूत समुदाय ज्यों ही पुर में प्रविष्ट हुआ, उन दैत्यों के तेज से बहुत सारे भूत भस्म हो गए और अवशिष्ट विष्णु जी के पास भाग आए। दैत्यों की अजेयता और देवों की पीड़ा से विष्णु जी चिन्तित हो गए। उन्होंने उपयुक्त और सार्थक उपाय ढूंढ़ने का आश्वासन देकर देवों को विदा किया।

देवों के चले जाने पर विष्णु जी ने अपनी आत्मा से एक अत्यन्त तेजस्वी, मायावी, मुंडितशिर, मलिनवसन, कांष्ठपात्र और चरमधारी, मुख पर वस्त्र लपेटे पुरुष को उत्पन्न करके उसका अर्हन् नाम रखा और उसे आदेश दिया कि वह अपभ्रंश शब्द बहुल प्राकृतभाषा में स्वर्ग-नरक के निषेधक और वर्णाश्रम धर्म के नाशक शास्त्र की रचना करे। विष्णु जी ने अपनी माया को इस कार्य में अर्हन् की यथेष्ट सहायता करने का आदेश दिया। विष्णु ने अर्हन् को इस शास्त्र का त्रिपुर में प्रचार कर असुरों को धर्मविमुख और पथभ्रष्ट करने की आज्ञा दी।

विष्णु जी की आज्ञा पाकर, उस मुण्डी ने पाखण्डमूलक शास्त्र की रचना की और अपने अनेक-अनेक शिष्य बना कर पाखण्ड का प्रचार-प्रसार किया। अर्हन् ने अपने चार प्रमुख शिष्यों—ऋषि, यति, कार्य और उपाध्याय—सहित त्रिपुर नगर को प्रस्थान किया

परन्तु शिवजी के प्रभाव से वहाँ उनकी माया न फैल सकी। इससे निराश होकर अर्हन् ने विष्णु जी को और विष्णु जी ने शिवजी को स्मरण किया। शिवजी की आज्ञा पाकर विष्णु जी ने तुम नारद को स्मरण किया और तुमने त्रिपुरपति के पास जाकर इस नवीन धर्म की प्रशंसा की और अपना इस धर्म में दीक्षित होना बताकर उन्हें भी इस धर्म को अपनाने का परामर्श दिया। त्रिपुरपति विस्मित तो अवश्य हुआ परन्तु माया से मोहित होने के कारण उसने मुण्डी को गुरु बनाकर उससे दीक्षा ले ली। धीरे-धीरे सारा त्रिपुर ही पाखण्ड-धर्म में दीक्षित हो गया।

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यासदेव ! अर्हन् ने अपने धर्म का प्रचार करते हुए लोगों को इस प्रकार उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया—मेरा ज्ञान अनादि और वेदान्त का सार है। आत्मा से लेकर स्तम्भ तक के सभी देहबन्धनों में आत्मा ही एक ईश्वर है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश सभी नश्वर हैं। सभी शरीरधारी समान हैं अतः जीव-हिंसा पाप और अहिंसा परम धर्म है। अपराधीनता मोक्ष और अभि-लषित भोजन स्वर्ग है। भयभीत को अभयदान, रोगी को औषधि, निरक्षर को विद्या और क्षुधार्त्त को अन्न उत्तमदान है। स्वर्ग-नरक इसी लोक में हैं, कहीं अन्यत्र नहीं। सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है। सुखपूर्वक मरना ही मोक्ष है। यज्ञ-यागादि निरर्थक और अज्ञानमूलक हैं। वर्णव्यवस्था निराधार और कल्पित है। एक ही ब्रह्मा से उत्पन्न चार पुत्र विभिन्न वर्ण के कैसे हो सकते हैं? मनुष्य-मनुष्य में किसी प्रकार का भेद मिथ्या है। इस प्रकार के उपदेश पर आचरण करने से धर्म, यज्ञ, तीर्थ और श्राद्धादि का उच्छेद होने लगा। इसके फलस्वरूप दैत्यों की बुद्धि, शक्ति, कीर्ति और लक्ष्मी क्षीण होती गई।

इस प्रकार उन दैत्यों के शिव विमुख हो जाने पर विष्णु जी के नेतृत्व में देवों ने शिवजी के पास जाकर त्रिपुर के अत्याचारों की करुण कथा कही, जिसे सुनकर करुणावरुणालय भगवान् शंकर उस दैत्य का वध करने को उद्यत हो गए। इसी बीच पार्वती जी वहाँ आ पहुँचीं और शंकर जी को अन्तःपुर में ले गईं। देवता पुनः चिन्तित हो गए और विष्णु जी से उपाय पूछने लगे। विष्णु जी के परामर्श पर उनके सहित सभी देवों ने "ओं नमः शिवाय कुरु-कुरु" मन्त्र का एक करोड़ बार जप किया। इससे प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए और

देवों के अनुरोध पर त्रिपुर के वध को चल पड़े।

सनत्कुमार जी बोले—हे वेदज्ञ व्यास जी ! शंकर जी ने त्रिपुर के समीप पहुँच कर उसे अपने बाण का लक्ष्य बनाया परन्तु गणेश जी द्वारा उपस्थापित बाधा के कारण वह दैत्य लक्ष्य बन ही नहीं पाया। अन्ततः गणेश पूजा द्वारा विघ्न-बाधाओं की निवृत्ति के उपरान्त शिवजी ने आग्नेयास्त्र द्वारा त्रिपुर दाह करके सभी दैत्यों और उनके स्वामी तारकाक्ष को भस्म कर दिया। इससे देवों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

त्रिपुरों के नष्ट होने पर सब मुण्डी वहाँ आकर शिवजी, विष्णु जी तथा अन्यान्य देवों को प्रणाम करने लगे तथा शिवभक्ति नष्ट करने के अपने दुष्कर्म कर खेद और पश्चात्ताप करने लगे। विष्णु जी ने मुण्डियों को आश्वस्त किया कि यह सब उनकी ही इच्छा से हुआ है। अतः उनकी दुर्गति नहीं होगी। इसके उपरान्त विष्णु जी की आज्ञा से मुण्डी मरुभूमि में चले गए। देवगण भी शंकर जी को प्रणाम करके और उनकी अनुमति लेकर अपने-अपने धाम को चले गए।

व्यास जी के अनुरोध पर शंकर जी द्वारा किए गए जलन्धर-वध का वृत्त उन्हें सुनाते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं :—एक समय इन्द्र अपने गुरु बृहस्पति के साथ भगवान् शंकर के दर्शन को कैलाश पर्वत पर आया तो शंकर जी ने उनकी परीक्षा लेने के लिए अपने को अन्तर्हित कर लिया और अपने स्थान पर एक जटाजूटधारी बाबा जी को बिठा दिया। इन्द्र ने जब बाबा से शिवजी का पता पूछा तो बाबा मौन रहा। इस पर ऐश्वर्य मदोन्मत्त इन्द्र ने उसकी अवज्ञा की और अपना अपमान करने के लिए दण्डस्वरूप उस पर प्रहार किया परन्तु शिवजी की महिमा से उसका शस्त्र और हस्त स्तम्भित हो गए और उधर तपस्वी बाबा के रूप में स्थित भगवान् शंकर के नेत्रों से क्रोधाग्नि निकलने लगी। बृहस्पति ने भगवान् शंकर को पहचान कर उनकी स्तुति प्रारम्भ कर दी और उनसे इन्द्र के अपराध को क्षमा करने के लिए अनुनय-विनय की। शिवजी के प्रसन्न होने पर इन्द्र स्तम्भन-मुक्त हुआ और भगवान् शंकर की स्तुति करने लगा। शिवजी ने इन्द्र को क्षमा करते हुए माथे के नेत्र से निकले हुए तेज को अपने हाथ में लेकर क्षीर समुद्र में डाल दिया। उनका वह तेज शीघ्र ही एक बालक बन कर गंगासागर के संगम पर बैठकर अत्यन्त उच्च स्वर में रुदन करने लगा। उसके रुदन से [illegible] व्याकुल हो उठे और उनके

अनुरोध पर ब्रह्मा जी जब उस बालक के पास गए तो बालक ने उनके गले में अपनी बाहें डालकर इतने जोर से उन्हें दबाया कि ब्रह्मा जी के नेत्रों से (अश्रु) निकल आया। इस आधार पर ब्रह्मा जी ने उस दुष्ट बालक का नाम 'जलन्धर' रखा। ब्रह्मा जी ने बालक का भाग्यफल बताते हुए घोषणा की कि युवक होकर यह बालक दैत्यों का अधिपति, सर्वविजयी, प्रबल पराक्रमी तथा शंकर जी के सिवाय अन्यों से अजेय और अवध्य होगा। इसकी स्त्री बड़ी ही पतिव्रता, रूपवती और विष्णुप्रिया होगी।

ब्रह्मा जी से उस बालक की तेजस्विता और उज्ज्वल भविष्य का वृत्त जानकर समुद्र ने उसका पालन-पोषण किया और उसके युवा होने पर कालनेमि की पुत्री वृन्दा से उसका विवाह करा दिया। उसके बल-साहस, बुद्धि-कौशल को देखकर शुक्राचार्य ने उसे दैत्यों का अधिपति बना दिया।

एक बार जब जलन्धर अपनी सभा में बैठा था तो शुक्राचार्य वहाँ पधारे। जलन्धर ने उनका यथोचित सत्कार करने के उपरान्त उनसे राहु के शिरश्छेदक का नाम-पता आदि पूछा तो दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने समुद्रमन्थन की कथा सुनाकर उससे निकला अमृत पीने को तत्पर राहु का सिर इन्द्र के पक्षधर विष्णु द्वारा काटे जाने का वृत्त वह सुनाया। इस पर जलन्धर ने घस्मर दूत को भेजकर इन्द्र के पास यह सन्देश भेजा कि वह समुद्र से निकले रत्नों को लौटा दे अन्यथा परिणाम भुगतने के लिए उद्यत रहे। दूत की वाणी सुनकर क्रोधातुर इन्द्र ने कहा—मेरा द्रोही कभी सुखी नहीं रह सकता। जिस प्रकार शंखासुर की उद्धतता पर मेरे अनुज हरि ने उसे मार डाला था, जलन्धर की भी उसी प्रकार वही गति होगी। अन्यथा यदि वह अपना हित चाहता है तो मेरा विरोध छोड़ दे। दूत ने लौट कर जब इन्द्र के प्रत्युत्तर से जलन्धर को अवगत कराया तो वह आग बबूला हो उठा। उसने शुम्भ-निशुम्भ आदि करोड़ों दैत्य सेनापतियों के साथ इन्द्र के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा और दोनों ओर के वीर युद्धभूमि में सोने लगे। शुक्राचार्य अपनी मृतसंजीवनी से मृत दैत्यों को और बृहस्पति द्रोणागिरि से लाई औषधि से मृत देवों को पुनर्जीवित करने लगे। जलन्धर ने अपने गुरू शुक्राचार्य से पूछा कि जब मृतसंजीवनी औषधि केवल आपके पास ही है तो मरे देवता कैसे जीवित हो रहे हैं। इस पर दैत्याचार्य ने बृह-

स्पति द्वारा द्रोणागिरि से औषधि लाने के रहस्य का उद्‌घाटन किया और जलन्धर को उस पर्वत को उखाड़ कर समुद्र में फेंकने की राय दी। जलन्धर ने अत्यन्त वेग के साथ अपनी प्रवल भुजाओं से द्रोण पर्वत को जड़ से उखाड़ कर समुद्र में फेंक दिया। इसके उपरान्त उसने देवताओं का प्रवल वेग से संहार करना आरम्भ कर दिया। वृहस्पति ने द्रोणाचल को नष्ट प्राय: देखकर निराशा से देवों को युद्ध वन्द करने की सलाह दी। देवों से अजेय बना वह जलन्धर अमरावती में निश्शंक भाव से घुसकर इन्द्र की खोज करने लगा। सभी देवता भयवश इधर-उधर भाग कर छुप गए।

इन्द्रादि देवता आत्मरक्षा के लिए भगवान् विष्णु की शरण में गए तो विष्णु जी देवों के साथ युद्ध में जाने को तैयार हो गए। यह देखकर लक्ष्मी जी के मन में अपने भाई-समुद्रपुत्र जलन्धर के प्रति ममता जाग उठी। जिससे विष्णु जी ने अपनी पत्नी को जलन्धर का वध न करने का आश्वासन दिया। विष्णु जी के नेतृत्व में देवों ने दैत्यों पर धावा वोल दिया। इधर दैत्यों ने डटकर मुकावला किया। फलत: इन्द्रादि देवों के पैर उखड़ गए और वे युद्धक्षेत्र से भाग खड़े हुए। यह स्थिति देखकर गरुड़ पर आरूढ़ भगवान् विष्णु जलन्धर से युद्ध करने आए। विष्णु जी ने अपने वाणों से उस दैत्य की ध्वजा, छत्र और धनुष-वाण काट डाले। इधर जलन्धर ने गरुड़ पर अपनी गदा का ऐसा प्रचण्ड प्रहार किया कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने विष्णु की छाती में भी एक तीक्ष्ण वाण मार कर उन्हें घायल कर दिया। विष्णु जी ने जलन्धर की गदा को काट दिया तो वह धनुष-वाण से युद्ध करने लगा। विष्णु जी ने जलन्धर की छाती में गदा से प्रहार किया जिसे उसने सुखपूर्वक सहन कर लिया। उस दैत्य ने विष्णु जी पर त्रिशूल से प्रहार किया तो विष्णु जी ने नन्दक खड्ग से उस त्रिशूल को काट डाला। अन्त में विष्णु जी ने उसकी युद्धविद्या, शक्ति, साहस और पराक्रम पर प्रसन्न होकर उसको वर माँगने को कहा तो उसने—"वहन (लक्ष्मी) और कुटुम्वियों सहित विष्णु भगवान् के अपने घर में निवास करने का"—वर माँगा। जिसे भगवान् ने 'तथा-स्तु' कहकर स्वीकार किया। लक्ष्मी और देवों के सहित विष्णु जी के अपने घर निवास को देखकर जलन्धर कृतकृत्य हो गया और सभी देवों, यक्षों, गन्धर्वों आदि को अपना वशवर्ती बनाकर धर्मपूर्वकशासन करने लगा।

जलन्धर के बढ़ते ऐश्वर्य से देवता चिन्तित हो उठे। जलन्धर ने देवों के सभी श्रेष्ठ वाहन, आयुद्ध और रत्न अपने अधीन कर रखे थे। देवता लोग जलन्धर से मुक्ति पाने के लिए शिवजी की शरण में गए। शिवजी ने देवकार्य के लिए नारद जी का स्मरण किया और उन्हें उपयुक्त विधि ढूंढ़ने को कहा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए नारद जी जलन्धर की सभा में आए। जलन्धर ने यथोचित स्वागत करके उनसे दर्शन देने का कारण पूछा तो नारद ने कहा कि शिवलोक की समृद्धि का निरीक्षण करते हुए शिव के समकक्ष के रूप में मुझे तुम्हारा स्मरण हो आया और मैं तुम्हारी सम्पन्नता देखने चला आया हूँ। जलन्धर इस पर हर्षोन्मत्त हो उठा और नारद जी को अपनी सारी विभुता दिखाने लगा। नारद जी ने सब कुछ देखने के पश्चात् उसकी बहुत प्रशंसा की और उससे कहा कि तुम्हारा ऐश्वर्य सचमुच ही प्रशंसनीय है परन्तु तुम्हारे घर में स्त्री-रत्न न होने से लवण के बिना व्यंजनों के समान सारे पदार्थ निरर्थक हैं। स्त्री से ही गृह और द्रव्य की शोभा है। नारद के इन वचनों को सुनकर जलन्धर ने जब अपने उपयुक्त सुन्दर नारी बताने का नारद से अनुरोध किया तो नारद ने त्रिलोकी में अतिसुन्दर तथा दिव्यरूप वाली पार्वती का उल्लेख किया। नारद जी ने बताया कि उस रमणी-रत्न की महिमा का ही प्रभाव है कि दिगम्बर शिव सकल ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। नारद जी ने यह भी कहा कि दैत्यराज! बस, इस स्त्री-रत्न के अभाव के कारण ही तुम शिवजी से वैभव में न्यून हो।

नारद जी की बात सुन कर जलन्धर मदनज्वर से पीड़ित हो गया और वह पार्वती को पाने को आतुर हो उठा। उसने अपने दूत को शिवजी के पास पार्वती माँगने के लिए भेजा। दूत के वहाँ पहुँचने पर नन्दीश्वर ने उसे भीतर जाने से मना किया परन्तु अपनी शक्ति से वह उनकी सभा में जा पहुँचा और उनसे जलन्धर का सन्देश कहने लगा। दूत के यह कहते ही एक भयंकर शब्द हुआ तथा पृथ्वी से प्रकट एक भीषण प्राणी उस दूत को खाने दौड़ा। अपनी सुरक्षा का अन्य कोई उपाय न देखकर दूत शिवजी का शरणागत हुआ। कृपालु शंकर ने इस पर उस दूत को अपने गण के आतंक से मुक्त कर दिया।

दूत ने आकर जब जलन्धर को सारा समाचार सुनाया तो उसने अपनी सेना सजा कर शिवलोक पर चढ़ाई कर दी। इधर देवों ने

दैत्य सेना के अभियान की शिवजी से चर्चा की। देवों ने यह बताया कि अपने द्वारा आदिष्ट विष्णु जी ने तो जलन्धर का विनाश न करके उल्टे घर को अपना निवास बना लिया है। शिवजी के स्मरण करते ही विष्णु जी ने उपस्थित होकर शिवजी का चरणस्पर्श किया। शिव-जी द्वारा जलन्धर वध न करने का कारण पूछने पर विष्णु जी अत्यत विनम्र स्वर में बोले "आपका अंश होने के कारण ही मैंने उसका विनाश नहीं किया है। इसके अतिरिक्त वह महाबली दैत्य अजेय ही है।" इस पर हँसते हुए शिवजी ने स्वयं ही जलन्धर का वध करने की घोषणा की। शिवजी के उद्घोष को सुनकर देवता निश्चिन्त होकर चले गए।

शिवजी के आदेश पर नन्दी, वीरभद्र, कार्त्तिकेय तथा गणेश जी के नेतृत्व में सज-धज कर शिवगण चल पड़े। कैलाश के समीप दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। दैत्याचार्य शुक्र अपनी सञ्जीवनी विद्या से मृत दैत्यों को पुनर्जीवित करने लगे। शुक्राचार्य के इस कृत्य से क्रुद्ध भगवान् शंकर के मुख से एक बड़ी भयं-कर कृत्या उत्पन्न होकर असुरों का चवण करने लगी। उसने शुक्रा-चार्य को शीघ्र ही अपनी योनि में गुप्त कर दिया। शुक्र के गुप्त होते ही दैत्यों का मनोबल गिर गया और वे युद्ध क्षेत्र से भागने लगे। शुम्भ, निशुम्भ और कालनेमि आदि सेनापति भागते हुए दैत्यसैनिकों को रोक कर भीषण युद्ध करने लगे।

दैत्य सेनापतियों ने शिवसेना पर भीषण प्रहार किया और वे अपना-अपना प्रतिद्वन्द्वी ढूँढकर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। तब नन्दी, वीर-भद्र, कार्त्तिकेय और गणेश जी आदि ने अपने प्रबल पराक्रम से शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि आदि का वध कर दिया। अपने सेनापतियों के वध से क्षुब्ध दैत्यराज जलन्धर ने अपनी शक्ति से कार्त्तिकेय को बाणों से गणेश को परिघ से और वीरभद्र को रक्ताक्त कर धराशायी कर दिया। जलन्धर के नरसंहार से शिवसेना विचलित हो गई और शिवगण भाग खड़े हुए।

अपने एक गण से अपनी सेनाके पराभवका समाचार पाकर शिव-जी अपने वाहन पर आरूढ़ होकर स्वयं रणक्षेत्र में आए। शिवजी को देखकर सैनिकों में उत्साह की लहर दौड़ गई। शिवजी ने उस दैत्य के धनुष, गदा, परिघ आदि नष्ट-भ्रष्ट कर दिए। इतने पर भी वह हतोत्साहित न होकर वीरता के साथ लड़ता रहा। जलन्धर ने शिव-

जी के समक्ष अपने को टिकता न देखकर गन्धर्वी माया का प्रसार किया। अनेक गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नर आविर्भूत होकर नाचने-गाने लगे। शिवजी मोहित होकर संगीत में तन्मय हो गए। युद्ध रुक गया, इससे अवसर पाकर जलन्धर शिवजी का वेष धारण कर वृषभ पर आरूढ़ होकर पार्वती के पास जा पहुँचा। सखियों के साथ बैठी पार्वती अपने प्राणेश को देखकर उठी और अभिवादन करके उन्हें भीतर ले गई। पार्वती के रूप-सौन्दर्य को देखते ही जलन्धर का वीर्यपात हो गया और वह जड़ हो गया। इससे उसका रहस्य खुल गया।

जलन्धर के व्यवहार से क्षुब्ध पार्वती ने विष्णु के पास आकर जलन्धर के व्यवहार की बात कही तो विष्णु जी ने नतमस्तक होकर इस दुष्कृत्य की घोर निन्दा की। पार्वती ने "शठे शाठ्यं समाचरेत" की नीति के अन्तर्गत विष्णु जी को जलन्धर का वेश धारण कर उसकी पत्नी का पातिव्रत्य भंग करने का आदेश दिया।

सनत्कुमार जी बोले—व्यासदेव ! विष्णु जी की माया से वृन्दा ने रात में एक दुःस्वप्न देखा कि उसका मुंडितशिर और नग्नकाय पति महिष पर आरूढ़ होकर दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है। उसका सारा नगर समुद्र में डूब गया है। वृन्दा स्वप्न से घबरा कर जाग पड़ी और व्याकुल होकर अपनी सखियों के साथ उपवन में गई। वहाँ सिंह के समान अत्यन्त भयंकर दो राक्षसों को देखकर वह बहुत अधिक विचलित हो गई। इतने में उसे एक शान्त मौनी तपस्वी दिखाई दिया। घबराहट के कारण वृन्दा ने उसके गले में अपनी बाहें डाल दीं और रक्षार्थ प्रार्थना करने लगी। मुनि की एक ही हुँकार से दोनों राक्षस अदृश्य हो गए। कृतज्ञता प्रकट करते हुए वृन्दा ने युद्धरत अपने पति के सम्बन्ध में जब उस मुनि से पूछा तो मुनि ने ऊपर-नीचे देखा और उस समय दो वानर उनके समक्ष करबद्ध होकर उपस्थित हुए। मुनि के भृकुटि-संकेत से आकाश में जाकर उन वानरों ने जलन्धर का सिर और धड़ ला दिया, जिसे देखते ही वृन्दा मूर्छित हो गई। सचेत होने पर वह उस मुनि से अपने पति को जीवित करने की प्रार्थना करने लगी। मुनि ने शिव द्वारा मारे गए को पुनर्जीवित करना अनुचित बताते हुए भी शरणागत की रक्षा के गौरव से उसे पुनर्जीवित कर दिया। वृन्दा अपने पति से लिपट गई और पूर्व घटनाओं को स्वप्न मात्र मानकर वह उससे रतिभोग करने लगी। उस उद्यान में कई दिनों तक वह उससे रतिविलास करती

रही। अन्ततः एक दिन रहस्य खुल ही गया। उस पतिव्रता को छल-पूर्वक विष्णु द्वारा अपने भोगे जाने का पता चल गया। उसने विष्णु की भर्त्सना करते हुए राक्षसों द्वारा स्त्री का हरण किए जाने, वानरों द्वारा सहायता करने और शिष्य के साथी बनने का विष्णु को शाप दिया और अपने उस अधम शरीर को अग्निसात् कर दिया। वृन्दा का तेज पार्वती जी में समा गया और विष्णु जी तब से अशान्त रहने लगे।

इधर गान्धर्वी माया के विलीन होने पर भगवान् शिवलौकिक भाव से अतिक्रुद्ध होकर जलन्धर से युद्ध करने लगे। जलन्धर शंकर जी पर अपना वश चलता न देख कर माया की पार्वती बना कर उसे अपने रथ पर बाँध कर व्याकुल करने लगा। लौकिक लीला दिखाते हुए शंकर जी अपनी प्रिया की वेदना और यन्त्रणा से व्याकुल हो उठे। पार्वती को यातना देने वाले को शिवजी शाप देने लगे। यह सब सुन-देखकर जलन्धर शिवजी के समक्ष आकर उन्हें अपशब्द कहने लगा और उन पर प्रहार करने लगा। शिवजी ने अब रुद्र रूप धारण किया और जलन्धर पर वे अपना उग्र रोष प्रकट करने लगे परन्तु वह दैत्य मेरु पर्वत के समान विकट शरीर धारण करके सामने खड़ा हो गया और डट कर मुकाबला करने लगा। अन्त में अति-क्रोधित होकर शिवजी ने अपने चरणांगुष्ठ से बनाए सुदर्शन चक्र को चलाकर उसका सिर काट डाला। एक प्रचण्ड शब्द के साथ उसका सिर पृथ्वी पर गिरा और उसके शरीर के दो टुकड़े हो गए। उसके मरते ही प्रकृति में सामञ्जस्य आ गया और सभी देवता स्वस्थ और प्रसन्न हो गए। भगवान् शंकर की स्तुति करके सभी प्रसन्नचित्त अपने घर लौट गए। इधर शंकर जी को जब विष्णुजी के वृन्दा की स्मृति में विक्षिप्त होने का पता चला तो उन्होंने विष्णु जी को बुला-कर अपनी दुस्तर माया समझाई, जिससे विष्णु जी का मोह जाता रहा और वे स्वस्थ हो गए। भगवान् शंकर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करके विष्णु जी भी वैकुण्ठ को चले गए और वहाँ पूर्ववत् प्रसन्न भाव से भगवान् शंकर जी का स्मरण करने लगे।

व्यास जी के शिवजी के अन्य पवित्र एवं मनोहारी चरित्र श्रवण करने की इच्छा पर सनत्कुमार जी उन्हें शिवजी द्वारा शंखचूड़ दानव के वध की पापनाशक कथा सुनाते हुए कहते हैं—कश्यप जी की तेरह स्त्रियों में एक परम साध्वी और रूपवती स्त्री दनु थी। उसका विप्रा-

चित नामक एक पराक्रमी पुत्र था। उसका एक दम्भ नामक जितेन्द्रिय तथा धार्मिक पुत्र था। उसकी जब कोई सन्तान न हुई तो उसने पुष्कर तीर्थ में जाकर घोर तप किया और भगवान् विष्णु के प्रकट होकर वर माँगने को कहने पर उसने उसके समान ही त्रैलोक्यविजयी और अजेय पुत्र माँगा। विष्णु जी ने 'तथास्तु' कह दिया। कुछ समय पश्चात् उसकी स्त्री गर्भवती हुई और राधा से शापित सुदामा गोप उसके गर्भ में आया। समय आने पर बालक ने जन्म लिया। उस नवजात बालक का नाम शंखचूड़ पड़ा।

शंखचूड़ ने पुष्कर में जाकर कठोर तप द्वारा ब्रह्मा जी को प्रसन्न करके उनसे देवों से अजेय होने का वर प्राप्त किया और पुनः ब्रह्मा जी के ही अनुरोध पर उसने बदरिकाश्रम में तपोरता तुलसी से विवाह किया। उसके घर लौटने पर शुक्राचार्य ने उसका असुराधिपति के पद पर अभिषेक किया और देवताओं से असुरों के स्वाभाविक वैर का वर्णन कर उसका संक्षिप्त इतिहास उसे कह सुनाया, फलतः यथासमय शंखचूड़ ने दैत्यों की विकटवाहिनी को साथ लेकर अमरावती को घेर लिया और अपने प्रबल पराक्रम से सूर्य, चन्द्र, अग्नि, कुबेर, यम तथा वायु आदि सभी को अपना वशवर्ती बना लिया। उसने इन्द्र का पद स्वयं संभाल लिया तथा सम्पूर्ण भवनों पर शासन करने लगा। राज्यहरण से पराजित देवता ऋषियों को साथ ले ब्रह्मा जी की सभा में गए। ब्रह्मा जी उन्हें साथ ले विष्णु जी के पास वैकुण्ठ में गए। देवों की पीड़ा सुनकर विष्णु जी ने हँसकर कहा कि शंखचूड़ भक्ति में रत परम वैष्णव साधु है और वह केवल बन्धु-वैर के कारण देवताओं को दुःख देता है अन्यथा उसकी बुद्धि दानवी नहीं है। पुनरपि मैं इस सम्बन्ध में शिवजी से परामर्श करना अच्छा समझता हूँ। देवों के अनुरोध पर विष्णु जी उन्हें साथ लेकर शिवलोक की ओर चल दिए।

शिवलोक पहुँचकर वहाँ शिवजी की सभा की दिव्य शोभा देखकर सभी लोग विस्मित रह गए। विष्णु जी ने शिवजी की स्तुति करने के उपरान्त देवों के साथ अपने आगमन का उद्देश्य निवेदित किया तो शिवजी गुरु-गम्भीर वाणी में बोले—शंखचूड़ का इतिहास मुझे ज्ञात है। वह पूर्वजन्म का श्रीकृष्ण का एक परमभक्त गोप सुदामा है और इस समय राधा के शाप से असुर योनि में उत्पन्न होकर राज्य कर रहा है। इतने में शिवजी के दर्शनों के लिए गोलोक से राधा

और पार्षदों के साथ श्रीकृष्ण वहाँ आ गए और शिवजी के दर्शन कर उनकी मनोहारिणी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण शिवजी के शरणागत हो उनसे शापोद्धार की प्रार्थना करने लगे। शंकर जी ने उन्हें अभय करते हुए आशीर्वाद दिया कि वाराह कल्प में तरुणी राधा के साथ शाप भोग कर तुम अपने धाम को लौटोगे। श्रीकृष्ण को आश्वास्त कर शंकर जी विष्णु जी तथा देवों की ओर उन्मुख होकर बोले कि मैं तुम लोगों का क्लेश अवश्य दूर करूँगा और यथासमय शंखचूड़ का वध करके तुम्हें सुखी करूँगा। शिवजी से आश्वासन पाकर देवगण निश्चिन्त भाव से लौट आए।

शिवजी ने परमप्रतापी गन्धर्वराज पुष्पदन्त को अपना दूत बनाकर शंखचूड़ के पास उसे समझाने के लिए भेजा। गन्धर्वराज ने अनेक युक्तियाँ और तर्क देकर शंखचूड़ को शिवजी का विरोध छोड़ने और देवों का मित्र बनने को समझाया परन्तु उसने देवों को अपना जन्मजात शत्रु बता कर देवों के सहायकों से मित्रता न करने का अपना निश्चय दोहराया। पुष्पदन्त ने आकर अपनी वार्त्ता से भगवान् शंकर को अवगत कराया।

शंकर जी ने सारी बात सुनकर अपनी विपुल वाहिनी सजाकर शंखचूड़ के वध के लिए प्रस्थान किया। उधर शंखचूड़ ने भी अपनी सेना को सन्नद्ध किया। शंखचूड़ ने अपना एक दूत शिवजी के पास भेज कर उनसे देवों का पक्ष न लेने का अनुरोध किया। दूत ने शिवजी की सेवा में उपस्थित होकर अनेक उदाहरण देकर सिद्ध करने का प्रयास किया कि देवों ने सदैव दैत्यों को ठगा है। छल-कपट का आश्रय लेकर उन्हें अपने न्यायोचित अधिकारों से वंचित किया है। दूत ने कहा—त्रिलोकीनाथ ! मधुकैटभ का सिर किसने काटा ? त्रिपुर को किसने भस्म किया ? बलि का सर्वस्व हरण कर उसे पाताल क्यों भेजा गया ? समुद्र मन्थन से निकले अमृत का देवताओं ने ही क्यों पान किया ? भगवन् ! सत्य तो यह है कि क्लेश सदा दैत्य उठाते रहे हैं और फल देव भोगते रहे हैं ! यह कह कर दूत ने शंखचूड़ की ओर से कहा कि देवाधिदेव महादेव जी ! आप देवों का पक्ष छोड़ दीजिए। हमारा आपसे कोई वैर-विरोध नहीं। शिवजी ने उत्तर दिया कि हम तो भक्तों के आधीन हैं और उनकी रक्षा के प्रति वचनबद्ध हैं। दूत निराश होकर लौट आया और शंखचूड़ शिवजी से युद्ध करने को विवश हो गया।

दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। दोनों पक्षों के वीर सैनिक गाजर-मूली की तरह विरोधी पक्ष के सैनिकों को काटने लगे। सर्वत्र कटे धड़ और सिर दिखाई देने लगे। रक्त की नदी बह निकली और लाशों से युद्ध-स्थल भर गया। देवों की पराजय का वृत्त सुनकर शिवजी स्वयं युद्ध-क्षेत्र में आए और असुरों का विनाश करने लगे। असुरों के हतोत्साहित होने का समाचार सुनकर शंखचूड़ भी स्वयं युद्ध में कूद पड़ा। शिवजी की ओर से काली, स्कन्द और वीरभद्र आदि ने भयंकर उत्पात मचाया। शंखचूड़ ने अपनी विषाक्त शक्ति का प्रहार करके कार्तिकेय को मूर्छित कर दिया। यह देखकर काली ने शंखचूड़ पर अति भयंकर नारायणास्त्र चलाया, परन्तु दानवेन्द्र ने प्रणाम द्वारा उसे शान्त कर दिया। काली ने पाशुपत अस्त्र छोड़ा तो दानवेन्द्र ने रौद्रास्त्र से उसका वेग रोक दिया। इस प्रकार भद्रकाली और शंखचूड़ में भयंकर और प्रतिस्पर्धात्मक युद्ध हुआ परन्तु शंख-चूड़ देवी के सभी प्रहारों से अपने को बचा गया।

इसके उपरान्त स्वयं शिवजी शंखचूड़ से युद्ध करने आए और उस पर अपने त्रिशूल से प्रहार करने लगे। इतने में आकाशवाणी हुई कि अपने कवच और पतिव्रता स्त्री के रहते दानवेन्द्र सर्वथा अव-ध्य है। यह सुनकर विष्णु जी ब्राह्मणवेश में शंखचूड़ के पास जाकर उससे प्रतिज्ञा कराकर कवच की भिक्षा माँगने लगे। शंखचूड़ ने प्राणों के संकट का जोखम उठा कर भी अपना कवच ब्राह्मण वेशधारी विष्णु को दे दिया और विष्णु ने वह कवच पहन कर शंखचूड़ का वेश धारण कर वृन्दा के साथ शक्ति से रतिविहार किया। इस प्रकार शंखचूड़ के कवच और पत्नी के पातिव्रत्य के नष्ट हो जाने पर शिव-जी ने उस पर शूल से प्रहार किया और शंखचूड़ मर गया। शंखचूड़ के मरते ही सर्वत्र हर्षोल्लास का वातावरण छा गया।

व्यास जी बोले—हे मुनिसत्तम ! विष्णु जी ने तुलसी जी में अपनी शक्ति का आवान कैसे किया ? यह मुझे बताने की कृपा कीजिए। सनत्कुमार जी ने कहा—देवों की मंगलकामना से प्रेरित विष्णु जी ने शंकर-पार्वती के वचनों को और आकाशवाणी को गौरव देते हुए शंखचूड़ का वेश धारण किया और उस वेश में उसके घर जा पहुँचे। दानवी मर्यादा के अनुरूप दुन्दुभि बजवा कर शंखचूड़ रूपधारी विष्णु ने अपनी पत्नी को अपने आगमन की सूचना दी। उसने सुवेश और उत्तम शृंगार धारण कर अपने पति का स्वागत किया और युद्ध

का समाचार पूछा। शंखचूड़ ने उसे बताया कि ब्रह्मा जी ने देवों और दानवों में सन्धि करा दी है अतः उपद्रव शान्त हो जाने में दोनों पक्ष के योद्धा अपने-अपने स्थानों को लौट गए हैं। ऐसे मधुर वचन कहकर रमापति ने वृन्दा का मन मोह लिया और उसके साथ शयन कर रतिभोग किया। उनके रमण से तुलसी को सन्देह उत्पन्न हुआ और वह तर्क करने लगी। विष्णु जी की वास्तविकता का पता चलने पर तुलसी उन्हें कोसती हुई विलाप करने लगी। उसने क्षुब्ध होकर विष्णु को पत्थर हो जाने का शाप दे दिया। स्थिति की विषमता को देख कर विष्णु जी ने शिवजी का स्मरण किया, जिन्होंने वहाँ प्रकट होकर तुलसी को तत्त्वज्ञान कराया और उसे बताया कि तुम यह शरीर छोड़कर हरिप्रिया गण्डकी बनोगी और तुम्हारे उस शाप से विष्णु जी गण्डकी के तट पर ही पाषण रूप से स्थित रहेंगे। वहाँ पैने दाँतों वाले करोड़ों कीड़े उस शिला को छेदकर उसमें चक्र बना देंगे और उसका नाम शालिग्राम होगा। इस प्रकार शालिग्राम शिला से तुम्हारा संगम बड़ा ही पुण्यदायक होगा। शंकर जी ने उसे यह भी वरदान दिया कि तुलसी बन कर तुम सभी वृक्षों में श्रेष्टतम स्थान की अधिकारिणी बनोगी और हरि की प्राप्ति का साधनभूत बनोगी। शिवजी यह कह कर अन्तर्धान हो गए और तुलसी ने प्रसन्न होकर देह त्याग दी और पुनः उत्तम दिव्य शरीर ग्रहण किया।

शिवजी के पावन-चरित्र को सुनने से अतृप्त व्यास जी ने सनत्कुमार से शिवचरित से सम्बन्धित अन्यान्य वृत्त सुनाने का अनुरोध किया। इस प्रकार प्रसन्नचित्त सनत्कुमार उन्हें हिरण्याक्ष-वध की कथा सुनाते हुए बोले— एक समय शंकर जी मन्दराचल पर्वत पर जाकर विहार कर रहे थे कि पार्वती जी ने कनक-कमल-सी प्रभा वाले हाथों से शंकर जी के नेत्र बन्द कर लिए तो क्षण-भर के लिए चारों ओर महान् अन्धकार छा गया और महेश्वर का शरीर स्पर्श करने से पार्वती के दोनों हाथों से मद-जल बहने लगा। उस जल से एक अन्धा, विकराल, जटिल, कृष्णवर्ण, कुरूप तथा भयोत्पादक मनुष्य उत्पन्न होकर नृत्य करने लगा। आश्चर्यचकित पार्वती के पूछने पर शंकर जी ने उसे अपने नेत्र मींचने का ही यह फल बताया। उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हारे हाथों में लगे मेरे मस्तक के स्वेद से उत्पन्न यह बालक तुम्हारी सन्तान होने के कारण तुम्हारे द्वारा ही पालन-पोषण किए जाने का अधिकारी है। यह सुनकर पार्वती ने उसकी रक्षा का यथोचित प्रबन्ध

किया।

इधर अपने अग्रज की सन्तान वृद्धि को देखकर अपने पुत्र की कामना से हिरण्याक्ष दैत्य ने शंकर जी को प्रसन्न करने के लिए घोर तप किया तो शिवजी ने समझा-बुझाकर अपना वह अन्धक पुत्र उसे सौंप दिया, जिसे लेकर वह अपने घर चला आया। हिरण्याक्ष के मरने पर यही अन्धक पाताल का सम्राट् बना।

अन्धक के पैतृव्य भाइयों ने उसे दत्तक पुत्र और राज्य का अनाधिकारी बताते हुए उसका अपमान किया तो उसने विचारपूर्वक सत्य को स्वीकार करते हुए तप के लिए प्रस्थान किया। घोर तप से ब्रह्मा जी को प्रसन्न करके अन्धक ने उनसे यह वर माँगा कि, "प्रह्लादादि मेरे भाई मेरे भृत्य हो जाएँ, मुझ अन्धे के दिव्य नेत्र हो जाएँ, इन्द्रादि देवता मुझे वर देवें और मैं देव-दानव आदि किसी से भी मारा न जा सकूँ।" ब्रह्मा जी ने इस वर में थोड़ा संशोधन—शिवजी के अतिरिक्त अन्य किसी से भी अवध्य—करके 'तथास्तु' कह दिया।

वर प्राप्त कर अन्धक घर लौटा और उसने अपने भाइयों को अपने आधीन करके उद्धततापूर्वक शासन करने लगा। शक्ति, सत्ता, धन और वैभव की मदान्धता ने अन्धक को कुमार्गगामी बना दिया। एक दिन मन्त्रियों ने उसे बताया कि एक जटाजूटधारी तपस्वी के पास परम सुन्दरी रमणी है, आप उसे चल कर प्राप्त करें तो आपका मन अतीव प्रसन्न होगा। अन्धक ने उस ललना को वहां लाने का आदेश दिया। मन्त्रियों ने मन्दराचल की गुफा में बैठे हुए शिवजी को अन्धक का सन्देश सुनाया तो उन्होंने हँसकर उन लोगों की बड़ी अवज्ञा की तथा पार्वती को सर्वव्यापिनी परमशक्ति बताया। उन्होंने मन्त्रियों से कहा कि यदि साहस है तो उस देवी से स्वयं बात करो।

मन्त्रियों ने अन्धक के पास आकर नमक-मिर्च लगाकर सारी बात कह सुनाई। इस पर वह कामातुर होकर उस रमणी का बलपूर्वक हरण करने स्वयं वहाँ जा पहुँचा। उसके साथ विरोचन, बलि, बाणासुर, सहस्रबाहु और प्रह्लाद जैसे तेजस्वी वीर थे परन्तु वहाँ पहुचने पर शिवगणों ने उन्हें गुफा के भीतर न घुसने दिया। दैत्यों ने संघर्ष करके गुफा में जाने का बड़ा भारी प्रयास किया परन्तु वे सफल न हो पाए। शंकर जी अपने पाशुपात व्रत बाधा में पड़ते देख वहाँ से कहीं अन्यत्र अकेले ही साधना करने चल दिए।

मन्दराचल में अकेली रहती पार्वती की गुफा में एक दिन काम-

पीड़ित अन्धक घुस आया। वारक ने उसके निवारण का प्रयास किया परन्तु अन्धक की प्रवल शक्ति के सामने वह टिक न पाया। इस बीच पार्वती ने ब्रह्मा, विष्णु आदि का स्मरण किया तो सभी देवगण अन्तःपुर के नियमानुसार स्त्रीवेश में वहाँ उपस्थित हुए और अन्धक से युद्ध करने लगे। बहुत वर्षों तक युद्ध चलता रहा। स्वयं पार्वती को रणक्षेत्र में कूदना पड़ा। अन्तत: शिवजी के लौट आने पर युद्ध रुक गया और दैत्य ने उनसे अपनी स्त्री उपहार में देने का अनुरोध किया। शंकर ने क्रुद्ध होकर युद्ध का सन्देश भेजा।

महाबली गिल को आगे करके अन्धक शिवजी से युद्ध करने लगा। देवताओं ने अपनी पूरी शक्ति से उसे रोकने की चेष्टा की परन्तु उस दैत्य ने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवताओं के साथ-साथ नन्दी को निगल लिया। यह समाचार सुन शिवजी स्वयं रणभूमि में आए और उन्होंने अपने तीव्र शरों के प्रहार से दैत्य के मुख से सभी को बाहर उगलवा दिया। शंकर ने मृत असुरों को जीवित करने को उद्यत शुक्राचार्य को निगल लिया और इससे दैत्यों का मनोबल गिर गया। देवों ने दैत्यों का खूब संहार किया। इन्द्र अन्धक को ललकार-ललकार कर मारने लगा और इधर अन्धक अपने पैने शरों से पार्वती और शंकर को पीड़ित करने लगा। शंकर जी ने अपने त्रिशूल से जब अन्धक पर प्रहार किया तो उसके शरीर से निकले रुधिर-प्रवाह से बहुत सारे दैत्य उत्पन्न होकर युद्ध करने लगे। देवों ने चण्डी का आह्वान किया और वह देवी दैत्यों का रुधिर पान करने लगी। अन्त में शिवजी ने त्रिशूल से उसका हृदय विद्ध करके सूर्य की किरणों से उसके शरीर को जला दिया। मरते समय अन्धक ने भगवान् शंकर की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर भोलेनाथ ने उसे गाणपत्य पद दिया। युद्ध बन्द हो गया, हरि आदि देवता अपने स्थान को और शंकर भगवान् पार्वती सहित गुफा में चले गए।

व्यास जी ने पूछा—हे महामने! शुक्राचार्य शिवजी के उदर से कैसे बाहर आए और उन्होंने मृतसञ्जीवनी विद्या कहां से प्राप्त की? —यह सब आप मुझे सुनाने की कृपा करें। सनत्कुमार जी बोले—शिवजी के उदर में पहुँच कर दैत्याचार्य ने बाहर निकलने का बड़ा उद्योग किया और शिवजी के शरीर में छिद्रों की बड़ी खोज की परन्तु उसे सफलता न मिली। तब उसने भगवान् शिवजी द्वारा पूर्वोपदिष्ट इस मन्त्र का जप करना प्रारम्भ कर दिया।

"ओं नमस्ते देवेशाय सुरासुर नमस्कृताय।
भूतभव्य महादेवाय हरित पिंगललोचनाय॥"

इस मन्त्र के प्रभाव से दैत्यगुरु शिव के वीर्यरूप में लिंगमार्ग से बाहर निकल आए। लिंगमार्ग से वीर्यरूप में निकलने के कारण ही उसका नाम शुक्र पड़ गया।

इन्हीं शुक्राचार्य ने वाराणसी में जाकर ज्योतिर्लिंग स्थापित करके जब भगवान् शिव की आराधना की तो भगवान् शिव ने आविर्भूत होकर उसकी प्रार्थना पर उसे मृतसञ्जीवनी विद्या प्रदान की। सनत्कुमार जी बोले—भगवान् शंकर सचमुच ही भोलेनाथ और औढ़रदानी हैं। वे अपने विरोधी को भी मुँहमाँगा वर प्रदान करते हैं। तभी तो उन्होंने पार्वती पर कुदृष्टि रखने वाले और स्वयं उन्हीं से शत्रुता बाँध कर युद्ध करने वाले अन्धकासुर को क्षमा-याचना और स्तुति-वन्दना करने पर दुर्लभ गाणपत्य पद प्रदान कर दिया। शिवजी की महिमा सचमुच ही विलक्षण तथा अपरम्पार है।

व्यास जी के अनुरोध पर उन्हें वाणासुर के गाणपत्य ग्रहण करने का वृत्त सुनाते हुए सनत्कुमार जी बोले—हिरण्यकशिपु के प्रपौत्र प्रह्लाद के पौत्र और विरोचन के पुत्र वलि का पुत्र वाणासुर था। वह अपने पिता-पितामह के समान ही अत्यन्त उदार, दानी और शिव-भक्त था। उसने शंकर जी से अपनी नगरी में सपरिवार निवास करने का वर माँग लिया था। एक दिन शिवजी ने शोणित नगरी के बाहर नदी तट पर नृत्य-गीत आदि का आयोजन किया। उस समय शिवजी की जलविहार की इच्छा हुई परन्तु पार्वती अभी नहीं आई थीं। विहार करती हुई स्त्रियों ने सोचा कि जो शिवजी के साथ विहार करने में सफल हो जाएगी, वह वहुत वड़ी भाग्यशालिनी वन जाएगी। वाणासुर की पुत्री ऊषा अपनी सौभाग्यवृद्धि के लिए पार्वती का वेश धारण कर शिवजी के साथ विहार करने के लिए उनके पास पहुँची ही थी कि पार्वती जी आ गईं और उन्होंने क्रुद्ध होकर ऊषा को वैशाख शुक्ल द्वादशी की अर्धरात्रि को सोते समय किसी अज्ञात-पुरुष से भोगे जाने का शाप दे दिया।

इधर शंकर जी की सेवा में उपस्थित होकर वाणासुर ने अपने किसी प्रतिद्वन्द्वी के अभाव में अपने प्रवल भुजदण्डों की व्यर्थता का उनसे उपालम्भ दिया। वाणासुर के गर्वोद्धत्व पर हँसते हुए शिवजी ने शीघ्र ही उसे उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वी मिलने और भुजाओं की शक्ति

दिखाने का अवसर उपलब्ध होने का आश्वासन दिया।

पार्वती जी के शाप के अनुसार वैशाख मास की द्वादशी को विष्णु पूजा करके ऊषा जब सो रही थी तो अर्धरात्रि में श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने अन्तःपुर में प्रवेश किया और वह उसके अनिन्द्य सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उसने ऊषा के साथ बलात्कार से भोग किया। ऊषा आत्मग्लानि से दुःखी होकर आत्महत्या करने ही जा रही थी कि उसकी सखी चित्रलेखा ने उसे समझाया-बुझाया और उसे गुप्तपति उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया। चित्रलेखा ने सभी देवों, विशिष्ट व्यक्तियों और महावीरों के चित्र ऊषा को दिखाए तो उसने अनिरुद्ध के चित्र को पहचान कर लज्जा से सिर झुका दिया।

चित्रलेखा ने अपनी सखी की प्रणयपीड़ा को अनुभव करते हुए अनिरुद्ध की खोज की और द्वारिका जाकर अपने तामसी योग से खाट पर सोते उसे खाट-सहित उठा कर ऊषा के अन्तःपुर में ले आई।

अपने प्रियतम को पाकर ऊषा आनन्द निमग्न होकर उसके साथ रतिविलास करने लगी। इस तथ्य की जानकारी द्वारपालों को हो गई और उन्होंने बाणासुर को सारे तथ्य से अवगत कर दिया। इस पर बाणासुर ने अन्तःपुर में आकर अनिरुद्ध को युद्ध के लिए ललकारा। अनिरुद्ध ने बड़ी भारी वीरता दिखाई! इस पर बाणासुर ने कपट युद्ध का आश्रय लेकर नागपाश से उसे बाँध कर पिंजड़े में डाल दिया। इसके उपरान्त उसने अनिरुद्ध को प्राणों से नष्ट करने का अपने सेवकों को आदेश दिया। महामन्त्री कूष्माण्ड ने अपने स्वामी बाणासुर को समझा-बुझा कर अनिरुद्ध की प्राणहत्या न करने को राजी कर लिया। अनिरुद्ध ने अपने साहस और शौर्य से पिंजरा तोड़-कर अपने को बन्धन मुक्त करा लिया और अपनी प्रियतमा के पास जाकर रतिविलास करने लगा।

अनिरुद्ध के चुरा लिए जाने पर श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के रुदन पर द्रवित होकर दूतों द्वारा उसकी खोज कराई और पता चलने पर प्रद्युम्न, युयुधान, साम्ब, धारण, नन्द, उपनन्द और बलभद्र आदि यादवों को लेकर शोणितपुर को घेर लिया। श्रीकृष्ण की बारह अक्षौहिणी सेना से अपने को घिरा देखकर बाणासुर उनसे युद्ध करने चला। इधर रुद्र भी बाणासुर की सहायता को आ पहुँचे। कृष्ण का शिव से, प्रद्युम्न का कूष्माण्ड से, कूप का कर्ण से, बाणपुत्र का साम्ब से, बाण का सात्यकि से और गरुड़ का नन्दी से भयंकर युद्ध हुआ।

शिवजी के तेज से यादव टिक नहीं पा रहे थे। इतने में श्रीकृष्ण ने शीत, लास्य ज्वर प्रसारक वाणों का प्रयोग किया। उसे आता देख शिवजी ने अपना ज्वर प्रसारण वाण छोड़ा। दोनों वाण टकरा गए और विष्णु ज्वर वाला वाण निरस्त हो गया। श्रीकृष्ण ने करबद्ध होकर शिवजी की स्तुति की और उनसे कहा कि मैं तो आपकी ही आज्ञा से वाणासुर की भुजाएँ काटने आया हूँ। आप कृपा करके संग्राम से विरत हो जाइये। शिवजी की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने उन्हें जृम्भास्त्र से जृम्भित कर दिया तब शिवजी के युद्धविरत होने पर उन्होंने वाणासुर की भुजाएँ काट डालीं।

भुजाएँ कट जाने पर भी वाणासुर ने प्रचण्ड पराक्रम दिखाया। उसने घोड़े पर सवार होकर भयंकर युद्ध किया। उसने अपनी गदा से श्रीकृष्ण को ऐसा ताड़ित किया कि वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उसने और उसके सेनापतियों ने अन्यान्य यादवों को भी नाकों चने चबवा दिए। अन्ततः श्रीकृष्ण अत्यन्त क्रोध करके अपने सुदर्शन चक्र द्वारा वाणासुर का सिर काटने लगे परन्तु शिवजी की आज्ञा से रुक गए। शिवजी ने श्रीकृष्ण और वाणासुर में मित्रता करा दी। वाणासुर श्रीकृष्ण को आदर-प्रेम सहित अन्तःपुर में ले गया और वहाँ उसने अपनी पुत्री का अनिरुद्ध के साथ विवाह कर दिया। श्रीकृष्ण अपने पौत्र और पौत्रवधू को लेकर ससैन्य द्वारिका लौट आए।

ऊषा-अनिरुद्ध के प्रस्थान के उपरान्त वाणासुर ने अनेक स्तोत्रों और ताण्डव नृत्यों द्वारा शिवजी को प्रसन्न किया और उनसे शोणितपुर में ऊषा के पुत्र का राज्य, विष्णु से निर्वैरिता तथा उसे शिवभक्ति प्रदान करने का वरदान माँगा। शिवजी ने उसकी इच्छा पूरी करते हुए उसे गाणपत्य प्रदान किया। शिवजी के प्रसाद से महाकालतत्व पाकर वाणासुर कृतकृत्य हो गया।

व्यास जी को शिवजी द्वारा गजासुर और दुन्दुभि-निर्ह्लाद के वध का वृत्त सुनाते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं :—आपके पिता महिषासुर के वध का बदला लेने के लिए उसके पुत्र गजासुर ने तप करके ब्रह्मा जी से वर प्राप्त किया और देवों को दुःख देने लगा। वह पृथ्वी के सभी तपस्वी ब्राह्मणों को पीड़ित करने लगा। एक समय नन्दन वन में जाकर उसने इतना अधिक आतंक फैलाया कि इन्द्रादि देवता त्राहि-त्राहि करते हुए शंकर जी की शरण में उपस्थित हुए। शिवजी ने ज्यों ही त्रिशूल उठाकर उस पर मारा त्यों ही वह शिव

जी की स्तुति करने लगा। शिवजी के प्रसन्न हो जाने पर उसने उनसे अपनी देह के चर्म का ओढ़ना बनाने का वरदान माँगा, जिसे शिवजी ने स्वीकार किया और तभी से वे गजचर्मधारी कहलाए।

अपने पिता हिरण्याक्ष की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए उसका पुत्र दुन्दुभि-निर्ह्लाद विचारपूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी अनर्थों की जड़ ब्राह्मण हैं, क्योंकि देवता यज्ञाधीन और यज्ञ वेदाधीन और वेद ब्राह्मणों के आधीन हैं। ब्राह्मणों के नष्ट होने पर यज्ञ न होने से देवता क्षुधापीड़ित होकर स्वतः ही नष्ट हो जाएँगे। अंतः उसने पृथ्वी को ब्राह्मणों से रहित करने का निश्चय कर लिया। वह सिंहव्याघ्र आदि का रूप बनाकर समिधा कुशादि लाने वन में आए ब्राह्मणों को खा जाता था। अधिक ब्राह्मणों की खोज में वह काशी पहुँचा। वह इतना चतुर मायावी था कि दिन में तपस्वी वेश में रहता था और रात में व्याघ्रादि वेश में पर्णकुटियों में घुसकर ब्राह्मणों को अपना भोजन बनाता था। एक बार शिवपूजन को जाते हुए एक शिवभक्त ब्राह्मण को उसने अपना भोजन बनाना चाहा। ब्राह्मण शिवमन्दिर में पूजा करने लगा और दुन्दुभि-निर्ह्लाद व्याघ्र बनकर उसे खाने को बढ़ा। भक्तवत्सल भगवान् शिव ने मन्दिर के लिंग से प्रकट होकर उस दुष्ट का नाश कर दिया। उस दुष्ट ने मरते समय शिवजी की अनेक स्तुतियों से अराधना की और उनसे अपनी देह के चर्म को ओढ़ना बनाने की प्रार्थना की, जिसे शिवजी ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर लिया और इसी से वे "व्याघ्राजिनधारी" तथा 'व्याघ्रेश्वर' कहलाए।

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यासदेव ! शिवजी का यह चरित्र स्वर्गदायक, यशोवर्द्धक, आयु-पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला, कल्याण-रूप विकारहर्त्ता, परम ज्ञानदायक तथा परम रमणीय है। शिवजी के चरित्र को सुनने वाले और दूसरों को सुनाने वाले के समस्त दुःख दूर हो जाते हैं और वह अन्त में मोक्ष का भागी होता है।

उत्तरार्द्ध

शतरुद्र संहिता

शौनक जी बोले—हे महात्मा सूत जी ! आप मुझे सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान् शिवजी के अवतारों की भी सुखद कथा सुनाने की कृपा करें। शौनक जी ने कहा कि यही रहस्यमयी कथा सुनने की इच्छा सनत्कुमार जी ने नन्दीश्वर के आगे प्रकट की थी। उन्होंने जैसा वर्णन किया था, वही मैं आपको सुनाता हूँ। आप ध्यान देकर श्रवण करें।

सूत जी बोले—शंकर जी के असंख्य अवतारों में कतिपय प्रमुख अवतारों का वर्णन मैं आपके समक्ष करता हूँ :—

श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्प में शिवजी का प्रथम सद्योजात नामक अवतार हुआ। उस कल्प में परब्रह्म का ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी को शिखा से श्वेतलोहित कुमार उत्पन्न हुए। तब ब्रह्मा जी उन्हें सद्योजात शिव जान कर उनका ही बार-बार चिन्तन करने लगे। उनके उस चिन्तन से सुनन्दन, नन्दन, विश्वनन्दन और उपनन्दन नामक बहुत से कुमार हुए। तब सद्योजात कुमार ने ब्रह्मा जी को ज्ञान देकर सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दी।

रक्त नामक बीसवें कल्प में ब्रह्मा जी रक्तवर्ण के हो गए और फिर उनके वैसा ही रक्ताक्त नेत्र और रक्तवर्ण वाला वामदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे साक्षात् शिव जानकर ब्रह्मा जी ने उसकी स्तुति की। उस रक्तवर्ण बालक के विरज, विवाह, विशोक, और विश्वभावन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। वामदेव शिव ने ब्रह्मा को सृष्टि रचना की आज्ञा दी।

पीतवास नामक इक्कीसवें कल्प में ब्रह्मा ने पीतवस्त्र धारण

जी की स्तुति करने लगा। शिवजी के प्रसन्न हो जाने पर उसने उनसे अपनी देह के चर्म का ओढ़ना बनाने का वरदान माँगा, जिसे शिवजी ने स्वीकार किया और तभी से वे गजचर्मधारी कहलाए।

अपने पिता हिरण्याक्ष की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए उसका पुत्र दुन्दुभि-निर्ह्लाद विचारपूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी अनर्थों की जड़ ब्राह्मण हैं क्योंकि देवता यज्ञाधीन और यज्ञ वेदाधीन और वेद ब्राह्मणों के आधीन हैं। ब्राह्मणों के नष्ट होने पर यज्ञ न होने से देवता क्षुधापीड़ित होकर स्वतः ही नष्ट हो जाएँगे। अंतः उसने पृथ्वी को ब्राह्मणों से रहित करने का निश्चय कर लिया। वह सिंहव्याघ्र आदि का रूप बनाकर समिधा कुशादि लाने वन में आए ब्राह्मणों को खा जाता था। अधिक ब्राह्मणों की खोज में वह काशी पहुँचा। वह इतना चतुर मायावी था कि दिन में तपस्वी वेश में रहता था और रात में व्याघ्रादि वेश में पर्णकुटियों में घुसकर ब्राह्मणों को अपना भोजन बनाता था। एक बार शिवपूजन को जाते हुए एक शिवभक्त ब्राह्मण को उसने अपना भोजन बनाना चाहा। ब्राह्मण शिवमन्दिर में पूजा करने लगा और दुन्दुभि-निर्ह्लाद व्याघ्र बनकर उसे खाने को बढ़ा। भक्तवत्सल भगवान् शिव ने मन्दिर के लिंग से प्रकट होकर उस दुष्ट का नाश कर दिया। उस दुष्ट ने मरते समय शिवजी की अनेक स्तुतियों से अराधना की और उनसे अपनी देह के चर्म को ओढ़ना बनाने की प्रार्थना की, जिसे शिवजी ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर लिया और इसी से वे "व्याघ्राजिनधारी" तथा 'व्याघ्रेश्वर' कहलाए।

सनत्कुमार जी बोले—हे व्यासदेव ! शिवजी का यह चरित्र स्वर्गदायक, यशोवर्द्धक, आयु-पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला, कल्याण-रूप विकारहर्त्ता, परम ज्ञानदायक तथा परम रमणीय है। शिवजी के चरित्र को सुनने वाले और दूसरों को सुनाने वाले के समस्त दुःख दूर हो जाते हैं और वह अन्त में मोक्ष का भागी होता है।

उत्तरार्द्ध

शतरुद्र संहिता

शौनक जी बोले—हे महात्मा सूत जी ! आप मुझे सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान् शिवजी के अवतारों की भी सुखद कथा सुनाने की कृपा करें। शौनक जी ने कहा कि यही रहस्यमयी कथा सुनने की इच्छा सनत्कुमार जी ने नन्दीश्वर के आगे प्रकट की थी। उन्होंने जैसा वर्णन किया था, वही मैं आपको सुनाता हूँ। आप ध्यान देकर श्रवण करें।

सूत जी बोले—शंकर जी के असंख्य अवतारों में कतिपय प्रमुख अवतारों का वर्णन मैं आपके समक्ष करता हूँ :—

श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्प में शिवजी का प्रथम सद्योजात नामक अवतार हुआ। उस कल्प में परब्रह्म का ध्यान करते हुए ब्रह्मा जी को शिखा से श्वेतलोहित कुमार उत्पन्न हुए। तव ब्रह्मा जी उन्हें सद्योजात शिव जान कर उनका ही वार-वार चिन्तन करने लगे। उनके उस चिन्तन से सुनन्दन, नन्दन, विश्वनन्दन और उपनन्दन नामक वहुत से कुमार हुए। तव सद्योजात कुमार ने ब्रह्मा जी को ज्ञान देकर सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति दी।

रक्त नामक वीसवें कल्प में ब्रह्मा जी रक्तवर्ण के हो गए और फिर उनके वैसा ही रक्ताक्त नेत्र और रक्तवर्ण वाला वामदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे साक्षात् शिव जानकर ब्रह्मा जी ने उसकी स्तुति की। उस रक्तवर्ण वालक के विरज, विवाह, विशोक, और विश्वभावन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। वामदेव शिव ने ब्रह्मा को सृष्टि रचना की आज्ञा दी।

पीतवास नामक इक्कीसवें कल्प में ब्रह्मा ने पीतवस्त्र धारण

किया और उनके द्वारा पुत्र की कामना किए जाते ही एक दीर्घ भुजाओं वाला, महातेजस्वी तत्पुरुष कुमार उत्पन्न हुआ, जिसे उन्होंने शिव-जी का अवतार जाना और शिवगायत्री का जाप करने लगे। उनके समीप से भी बहुत से दिव्य कुमार प्रकट हुए। उस तत्पुरुष शिव ने ब्रह्मा जी को सृष्टि रचना का सामर्थ्य प्रदान किया।

शिव नामक बाईसवें कल्प में पुत्रकामना से ब्रह्मा जी द्वारा तप किए जाने पर एक कृष्णवर्ण तेजस्वी अघोर बालक उत्पन्न हुआ, जिसे प्रणाम कर ब्रह्मा जी ने उनकी बहुविध स्तुति की। उस बालक के समीप से चार—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णरूप और कृष्णकण्ठधारी—महात्मा प्रकट हुए। इन्होंने ब्रह्माजी को सृष्टि रचना के लिए अद्भुत घोर नामक योग दिया।

विश्वरूप नामक तेईसवें कल्प से ब्रह्मा जी के चिन्तन से सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ और साथ ही वैसा वेश धारण किए ईशान बालक उत्पन्न हुआ। फिर उस परमेश्वर भगवान् ने अपनी शक्ति से शुभ चार—जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्डी—बालकों की उत्पत्ति की। इन्होंने सृष्टि रचना के लिए ब्रह्मा जी को आदेश और शक्ति प्रदान की।

इस प्रकार शिवजी के पाँच—सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान—प्रमुख अवतार हैं। ये सभी परमपूज्य और अत्यन्त प्रशस्त हैं।

सनत्कुमार जी के अनुरोध पर उन्हें शिवजी की अष्टमूर्त्तियों का परिचय देते हुए नन्दीश्वर कहते हैं—शिवजी की निम्नलिखित अष्टमूर्त्तियाँ अपनी पृथक् विशिष्टताओं के कारण विश्वविख्यात हैं:—

१. शर्व — विश्वम्भर स्वरूप भगवान् शंकर ही चराचर विश्व को पृथ्वीरूप धारण करने से 'सर्व' अथवा 'शर्व' कहलाते हैं।

२. भव — जगत् को सञ्जीवन देने वाले परमात्मा का जलमय रूप ही भव है।

३. उग्र — जगत् के भीतर और बाहर रह कर विश्व को धारण कर स्पन्दित करने वाला शिवजी का भयानक रूप उग्र कहलाता है।

४. भीम — सबको अवकाश देने वाले नृपों के समूह के भेदक शिव-

जी के सर्वव्यापक आकाशात्मक रूप का नाम 'भीम' है।

५. पशुपति — सम्पूर्ण आत्माओं के अधिष्ठाता, सम्पूर्ण क्षेत्रनिवासी पशुओं के पाश को काटने वाले शिवजी का स्वरूप 'पशुपति' कहलाता है।

६. ईशान — सूर्य रूप से आकाश में व्यापत सम्पूर्ण संसार में प्रकाश करने वाला शिवजी का स्वरूप 'ईशान' कहलाता है।

७. महादेव — रात्रि में चन्द्रमा रूप से अपनी किरणों से मनुष्य पर अमृत वर्षा करता हुआ जगत् को प्रकाश और तृप्ति देने वाला शिवजी का रूप 'महादेव' कहलाता है।

८. रुद्र — भगवान् शिव का जीवात्मा रूप रुद्र है।

हे सनत्कुमार जी ! जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में जल सींचने से वृक्ष के पत्र, पुष्प, शाखा आदि सभी हरे-भरे रहते हैं, उसी प्रकार जगत् के मूल शिवजी का पूजन-अर्चन करने से सम्पूर्ण जगत् के सभी पदार्थ सहज उपलब्ध होते हैं।

शिवजी द्वारा ब्रह्मा की इच्छा पूर्ण करने के लिए अर्धनारीश्वर रूप धारण करने का इतिहास बताते हुए नन्दीश्वर जी बोले—हे सनत्कुमार जी ! ब्रह्मा जी जब अपनी मानसी सृष्टि के न बढ़ने पर चिन्तित हो उठे तो उन्हें आकाशवाणी सुनाई दी कि सृष्टि का विस्तार तो मैथुनी सृष्टि से होगा, परन्तु उस समय भगवान् शंकर ने स्त्रियों को उत्पन्न नहीं किया था। इस पर ब्रह्मा जी ने घोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी अर्धनारीश्वर (आधा शरीर पुरुष का और आधा स्त्री का) रूप में प्रकट हुए। ब्रह्मा जी ने प्रणाम कर अपना अभीष्ट निवेदन किया तो भगवान् शिव ने अपने शिवा रूप को अपने स्वरूप से अलग कर दिया। ब्रह्मा जी ने शक्ति को पृथक् देखकर उनकी स्तुति की और सृष्टिरचना में अपनी कठिनता का वर्णन किया। ब्रह्मा जी ने मैथुनी सृष्टि रचना में सफलता के लिए भगवती से नारीकुल प्रकट करने की प्रार्थना की। यह सुन कर शक्ति ने अपनी भौंहों के बीच से अपने समान सुन्दर रूपकान्ति वाली एक दूसरी शक्ति प्रकट करके ब्रह्मा जी को दी। शिवजी ने ब्रह्मा जी के तप पर प्रसन्न होने का भगवती से जब अनुरोध किया तो उसने तो ब्रह्मा जी को बताया कि वह दक्ष के घर जन्म लेकर उसकी मैथुनी सृष्टि करने की इच्छा पूर्ण करेगी। यह कहकर शिवा शिवजी के शरीर में प्रविष्ट हो गई और शिवजी

अन्तर्धान हो गए।

सनत्कुकमार की जिज्ञासा पर नन्दीश्वर उन्हें अपने जन्म का वृत्त सुनाते हुए बोले कि मेरे पिता शिलाद ऋषि ने अपने पुत्र की कामना से तप किया तो उनके तप पर प्रसन्न होकर इन्द्र उनके सामने आए और वर माँगने का अनुरोध करने लगे। शिलाद ने अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र देने का वरदान माँगा। इन्द्र ने इस वर को देने में केवल शिवजी को समर्थ बताया। इस पर शिलाद ने शिवजी की आराधना प्रारम्भ करदी। उनकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिव-जी ने उन्हें अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र प्राप्त होने का वरदान दिया।

घर आकर शिलाद की यज्ञाग्नि से मैं प्रकट हुआ। मुझ त्रिनेत्र, चतुर्भुज, जटामुकुटधारी को पुत्ररूप में पाकर शिलाद को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मेरे जन्म से आनन्दित पिता ने मुझे आनन्ददाता मानते हुए मेरा नाम 'नन्दी' रख दिया। अपने पिता की कुटिया में जाकर मैंने साधारण बालक का रूप धर लिया। मेरे सात वर्ष का होने पर मित्रावरुण मुझे देखने आए और मेरी अल्प-काल में अर्जित विद्या पर आश्चर्य प्रकट करने लगे। उन्होंने मेरे पिता को मेरे एक ही वर्ष आयु शेष बताकर उन्हें खिन्न तथा चिन्तित कर दिया। मैंने अपने पिता को भगवान् शंकर के भजन से मृत्यु जीतने का विश्वास दिला-कर महावन की ओर प्रस्थान किया।

महावन में जाकर मैंने भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए कठोर तप किया तो आशुतोष प्रभु शंकर पार्वती सहित मेरे सम्मुख प्रकट हुए। मैंने उन्हें प्रणाम करके अनेक प्रकार से स्तुति की, जिस पर प्रसन्न होकर शंकर भगवान् ने मुझे बताया कि मित्रवरुण को तो उन्होंने भेजा था अन्यथा तुम तो मेरे अजर अमर पुत्र हो और मैं तुम्हें अपने गण का अधिपति बनाता हूँ। शिवजी ने कृपापूर्वक अपने कण्ठ से एक माला निकाल कर ज्यों ही मेरे गले में डाली त्यों ही मैं दिव्य रूप वाला द्वितीय रुद्र बन गया। शिवजी ने कृपा करते हुए मुझे अपना चिर-सान्निध्य प्रदान किया। यथासमय मरुत की रूपवती सुयशा नाम्नी कन्या से मेरा विवाह हुआ। हम दोनों पति-पत्नी को भगवती पार्वती ने अपने चरणों में नित्यभक्ति का वरदान दिया, जिससे हम कृतकृत्य भाव से शिव-पार्वती के समीप रह कर उनका गुणगान करने लगे।

भगवान् शंकर के पूर्ण रूप भैरव जी की उत्पत्ति की कथा सनत

कुमार जी को सुनाते हुए नन्दीश्वर कहते हैं :—अज्ञानी जन महेश्वर शंकर की महिमा को न जानने के कारण भैरव जी को उनका प्रतिरूप नहीं मानते। वस्तुतः शिवजी की माया दुरव्यय है, जिसे ब्रह्मा और विष्णु आदि भी नहीं जानते, औरों की तो बात ही क्या है। इस सम्बन्ध में एक इतिहास प्रसिद्ध है :—एक बार सुमेरु पर्वत पर बैठे हुए ब्रह्मा जी के पास जाकर देवताओं ने उनसे अविनाशी तत्त्व बतलाने का अनुरोध किया। शिवजी की माया से मोहित ब्रह्मा जी उस तत्त्व को न जानते हुए भी इस प्रकार कहने लगे—मैं ही एकमात्र संसार को उत्पन्न करने वाला स्वयंभू, अज, एकमात्र ईश्वर, अनादि भोक्ता, ब्रह्म और निरञ्जन आत्मा हूँ। मैं ही प्रवृत्ति और निवृत्ति का मूलाधार, सर्वातीत पूर्ण ब्रह्म हूँ। ब्रह्मा जी के इस प्रकार कहने पर वहाँ मुनिमण्डली में विद्यमान विष्णु जी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि मेरी आज्ञा से तो तुम सृष्टि के रचयिता बने हो, मेरा अनादर करके तुम अपने प्रभुत्व की बात कैसे कह रहे हो? इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे और अपने पक्ष के समर्थन में शास्त्रवाक्य उद्धृत करने लगे। अन्ततः वेदों से पूछने का निर्णय हुआ तो मूर्ति धारणकर आये चारों वेदों ने क्रमशः अपना मत इस प्रकार प्रकट किया :—

ऋग्वेद :— जिसके भीतर समस्त भूत निहित है तथा जिससे सब कुछ प्रवृत्त होता है और जिसे परमतत्त्व कहा जाता है, वह एक रुद्र रूप ही है।

यजुर्वेद :— जिसके द्वारा हम (वेद) भी प्रमाणित होते हैं तथा जो ईश्वर के सम्पूर्ण यज्ञों तथा योगों से भजन किया जाता है, सबका द्रष्टा वह एक शिव ही है।

सामवेद :— जो समस्त संसारी जनों को भरमाता है, जिसे योगीजन ढूंढते हैं और जिसकी कान्ति से सारा संसार प्रकाशित होता है, वह एक त्र्यम्बक शिवजी ही हैं।

अथर्वणवेद :—जिसका भक्ति से साक्षात्कार होता है और जो सर्वथा सुख-दुःखातीत अनादि ब्रह्म है, वह एक, केवल एक शंकर जी हैं।

विष्णु ने वेदों के इस कथन को प्रलाप बताते हुए नित्य शिवा से रमण करने वाले, दिगम्बर, पीतवर्ण, धूलिधूसरित, प्रमथनाथ, कुवेशधारी, सर्वावेष्टित, वृषभवाही, निःसंग शिवजी को परब्रह्म मानने से

इन्कार कर दिया। ब्रह्मा-विष्णु विवाद को सुनकर ओंकार ने शिवजी को ज्योतिस्वरूप, नित्य और सनातन परब्रह्म बताया परन्तु फिर भी शिवमाया से विमोहित ब्रह्मा और विष्णु की बुद्धि नहीं बदली।

उस समय उन दोनों के मध्य आदि-अन्तरहित एक ऐसी विशाल ज्योति प्रकट हुई कि उससे ब्रह्मा का पंचम सिर जलने लगा। इतने में त्रिशूलधारी नीललोहित वहाँ प्रकट हुए तो अज्ञानतावश ब्रह्मा उन्हें अपना पुत्र बताकर अपनी शरण में आने को कहने लगा। ब्रह्मा की दम्भपूर्ण बातों को सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने तत्-क्षण भैरव को उत्पन्न करके उसे ब्रह्मा पर शासन करने का आदेश दिया। शिवजी ने उसके भीषण होने के कारण भैरव और काल को भी भयभीत करने वाला होने के कारण कालभैरव तथा भक्तों के पापों को तत्काल नष्ट करने वाला होने के कारण पापभक्षक नाम देकर उसे काशीपुरी का अधिपति बना दिया। इसके उपरान्त काल-भैरव ने अपनी बायी उँगलियों के नखाग्र से ब्रह्मा जी का पंचम सिर काट डाला। भयभीत ब्रह्मा शतरुद्री का पाठ करने लगे। ब्रह्मा, विष्णु को सत्य की प्रतीति हो गई और वे शिवजी की महिमा का गान करने लगे। यह देखकर शिवजी ने इन दोनों को अभय दान दिया। इसके उपरान्त शिवजी ने भैरवजी से कहा कि तुम इन ब्रह्मा-विष्णु को मानते हुए ब्रह्मा के कपाल को धारण करके इसी के आश्रय से भिक्षा-वृत्ति करते हुए वाराणसी में चले जाओ। वहाँ उस नगरी के प्रभाव से तुम ब्रह्महत्या के पाप से निवृत्त हो जाओगे।

शिवजी की आज्ञा से भैरव जी हाथ में कपाल लेकर ज्यों ही काशी की ओर चले, ब्रह्महत्या उनके पीछे-पीछे चली। विष्णु जी ने उनकी स्तुति करते हुए उनसे अपने को उनकी माया से मोहित न होने का वरदान माँगा। विष्णु जी ने जब ब्रह्महत्या को भैरव जी का पीछा न करने को कहा तो उसने बताया कि वह तो अपने को पवित्र और मुक्त करने के लिए उनका अनुसरण कर रही है। भैरव जी ज्यों ही काशी पहुँचे त्यों ही उनके हाथ से चिपटा कपाल छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उस स्थान का नाम कपालमोचन तीर्थ पड़ गया। इस तीर्थ में जाकर सविधि पिंडदान और देव-पितृ-तर्पण करने से मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से निवृत्त हो जाता है। इस कारण काशी सदा सेवनीय है।

शिवजी के चरित्र श्रवण में सनत्कुमार की उत्सुकता और

श्रद्धा-भावना को देखते हुए नन्दीश्वर जी बोले—हे मुनि शार्दूल ! शिवजी के अन्य कतिपय प्रमुख अवतार और उनकी लीलाएँ इस प्रकार से हैं :—

१. शरभ अवतार

नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध करने पर भी जब विष्णु जी का क्रोध शान्त न हुआ तो देवताओं के अनुरोध पर प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति करके उनके क्रोध को शान्त करने की पूरी चेष्टा की परन्तु उन्हें सफलता न मिली। उनके क्रोधाग्नि की ऊष्मा से जलते हुए और चिन्तित देवता भगवान् शंकर की शरण में आए। शंकर जी ने नृसिंह की ज्वाला शान्त करने का दायित्व लेते हुए देवताओं को आश्वस्त किया।

शिवजी ने प्रलयंकर भैरवरूप महाबली वीरभद्र को शान्त वेश धारण कर नृसिंह के पास जाकर उसे समझाने का अनुरोध किया। वीरभद्र ने जाकर नृसिंह जी से कहा कि आदिदेव भगवान् शंकर के निर्देश पर जिस उद्देश्य से आपने यह रूप धारण किया, वह कार्य सम्पन्न हो गया है, अतः अब आप भीषणता से उपरत हो जाइए। नृसिंह ने यह सुनकर वीरभद्र के वचनों की अवज्ञा की और अपने को ही सभी शक्तियों का प्रवर्तक तथा निवर्तक बतलाया। वीरभद्र के बहुत प्रबोधित करने पर भी नृसिंह रूपधारी विष्णु ने अपना दुराग्रह न छोड़ा। इस पर शिवजी का कठिन तेज प्रकट हुआ और शरभ रूप धारण कर उन्होंने नृसिंह को अपनी भुजाओं में बाँध कर इस प्रकार जकड़ लिया कि वह अत्यन्त व्याकुल हो उठा। शरभ नृसिंह को उठाकर कैलाश पर ले आया और वृषभ के नीचे लाकर डाल दिया। वीरभद्र ने नृसिंह के सम्पूर्ण अवयवों को अपने में लय कर दिया। अपना दुःख दूर होनेपर देवताओंने कृतज्ञतावश भगवान् शंकर की स्तुति-वन्दना की।

२. गृहपति अवतार

नर्मदा नदी के तट पर स्थित नर्मपुर नामक रमणीय नगर में शिवभक्त विश्वानर मुनि रहता था। अपनी पतिव्रता स्त्री की सेवा पर प्रसन्न होकर उसने पत्नी को वर माँगने को कहा तो उस देवी ने महादेव को ही पुत्ररूप में माँग लिया। विश्वानर मुनि ने पत्नी की इच्छापूर्ति के लिए काशी में आकर वीरेश्वर लिंग की सविधि पूजा की, जिससे प्रसन्न होकर सुन्दर बालक के रूप में शिवजी ने मुनि

को दर्शन दिया और बालक रूप में उसके घर उत्पन्न होने की उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मुनि प्रसन्नचित्त घर लौट आया।

यथासमय उसकी पत्नी गर्भवती हुई और उपयुक्त समय आने पर उसने पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका गृहपति नाम रखा गया। उसके दिव्यतेज की त्रिलोकी में प्रसिद्धि हो गई। नारद जी ने आकर उस दिव्य बालक के उज्जवल भविष्य की घोषणा करते हुए द्वादश वर्ष की आयु में उसको बिजली और अग्नि के भय की भविष्यवाणी की, जिसे सुनकर गृहपति के माता-पिता तो चिन्तित हो गए परन्तु बालक ने शिवजी की महिमा का वर्णन करते हुए उन्हें आश्वासन प्रदान किया।

गृहपति काशी में विश्वेश्वर लिंग का पूजन करने लगा। उसके तप से प्रसन्न हो इन्द्र ने उसे दर्शन देकर वर माँगने को कहा परन्तु बालक ने शिवजी के सिवाय किसी अन्य से कुछ माँगने-लेने से इन्कार कर दिया। इस पर क्रुद्ध इन्द्र ने वज्र से प्रहार किया जिससे बालक मूर्छित हो गया। शिवजी ने अपने कर स्पर्श द्वारा उसे सचेत करके उसे बताया कि उन्होंने उसकी परीक्षा लेने के लिए ही इन्द्र को भेजा था, अब उसे कोई चिन्ता-भय-आशंका नहीं करनी चाहिए। शिवजी के दर्शन से बालक आनन्द-निमग्न हो गया और शिवजी ने उसे अजर-अमर कर दिशाओं का ईश्वर बना दिया।

३. यक्षेश्वर अवतार

यह अवतार शिवजी ने देवताओं के औद्धत्य और मिथ्या-अभिमान को दूर करने के लिए धारण किया था। एक समय जब देवों और दैत्यों ने मिलकर समुद्र-मन्थन किया तो उससे निकले विष से घबरा कर विष्णु आदि शिवजी की सेवा में उपस्थित हुए और भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् शंकर ने विषपान कर देवताओं का दुःख-दैन्य दूर किया। विषपान करने से शिवजी को और तो कोई हानि न पहुँची, केवल उनका कण्ठ नीला पड़ गया। इसी से वे 'नीलकण्ठ महादेव' कहलाए।

पुनः समुद्र-मन्थन करने से अनेक रत्न और अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। अमृत के लिए दैत्यों और देवताओं में बड़ा संघर्ष हुआ। राहु के भय से पीड़ित चन्द्रमा भाग खड़े हुए। शिवजी ने उसे अपने सिर पर धारण कर उसकी रक्षा की और तभी से वे 'चन्द्रशेखर' कहलाए। देवता अमृतपान करने से मदोन्मत्त हो गए और शिवजी की

माया से मोहित होकर वे अपने बल की बड़ी प्रशंसा करने लगे। उनके दर्प-दलन के लिए शिवजी यक्ष का रूप धारण कर उनके सामने आए और उनसे चर्चा करने लगे। देवताओं ने जब अपने बल-पौरुष की डींग हाँकी तो शिवजी ने एक तिनका उनके आगे रख करके उनसे कहा कि यदि तुम लोगों में सामर्थ्य है तो इस तिनके को काट कर दिखाओ। सभी देवताओं ने अपनी पूरी शक्ति से अपने शस्त्रों का प्रयोग किया परन्तु सफल न हो सके। उनके आश्चर्यचकित होने पर एक आकाशवाणी उन्हें सुनाई दी कि यह यक्ष सब गर्वों के विनाशक शंकर महादेव हैं। इन्हीं के बल से ही तुम विजयी हुए हो। यह सब सुन कर देवता सचेत हुए और उन्होंने स्तुतियां द्वारा उन्हें प्रसन्न किया और अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की। इस पर महादेव जी देवों को शिक्षित कर अन्तर्धान हो गए।

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार जी ! शिवजी के दस प्रमुख नाम, रूप और उनकी शक्तियाँ तथा उनके सेवन से प्राप्त होने वाले फल निम्नोक्त रूप से हैं :—

संख्या	अवतार	शक्ति	फल
प्रथम	महाकाल	महाकाली	भुक्ति-मुक्ति
द्वितीय	तारा	तारा	वाञ्छित फल
तृतीय	बाल भुवनेश	बाल भुवनेशी	सुख-शान्ति
चतुर्थ	षोडश विद्येश	विद्येशी	सुख-मुक्ति
पञ्चम	भैरव	भैरवी	कामनापूर्त्ति
षष्ठ	छिन्नमस्तक	छिन्नमस्तका	मनोरथपूर्ति
सप्तम	धूम्रवान्	धूम्रवती	फलसिद्धि
अष्टम	बगलामुख	बगलामुखी	आनन्दसिद्धि
नवम	मातंग	मातंगी	ऋद्धि-सिद्धि
दशम	कमल	कमला	सुख-समृद्धि

४. एकादश रुद्र अवतार

पूर्व समय में इन्द्र के अमरावती छोड़कर भाग जाने पर उसके शिवभक्त पिता कश्यप को बड़ा दुःख हुआ। उसने काशीपुरी में जाकर शिवलिंग की स्थापना कर विश्वेश्वर महादेव का विधिवत् पूजन कर उन्हें अपने तप से सन्तुष्ट किया। शिवजी ने प्रकट होकर कश्यप जी को देवों की दैत्यबाधा हरने का आश्वासन दिया। अपने वचन

के अनुसार शिवजी ने सुरभि से ग्यारह रुद्रों—कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्त्र, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव—ने जन्म लेकर दैत्यों का विनाश कर इन्द्र को अमरावती लौटवा दी और अन्य सभी देवताओं को सुखी किया।

५. दुर्वासा अवतार

महर्षि अत्रि ने अपनी पत्नी अनुसूया के साथ ऋक्ष नामक पर्वत पर जाकर कठोर तप किया। उसके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी ने उसे एक-एक पुत्र उत्पन्न होने का वर दिया। ब्रह्मा, के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शिवजी के अंश से दुर्वासा जी अनुसूया के उदर से उत्पन्न हुए। इन्हीं दुर्वासा जी ने एक बार अम्बरीष की परीक्षा ली थी। अम्बरीष ने द्वादशी तिथि आने पर अतिथि रूप में पधारे और स्नानार्थ गए दुर्वासा के लौटने की प्रतीक्षा किए बिना जब परायण कर लिया तो इस पर दुर्वासा आग-बबूला हो उठे। दुर्वासा के अकारण क्रोध पर राजा की रक्षा के लिए ज्यों ही सुदर्शन चक्र दुर्वासा की ओर लपका तो उसी समय आकाश-बाणी हुई, जिसे सुनकर दुर्वासा जी के वास्तविक रूप को जान कर सुदर्शन रुक गया और उसने भगवान् शिवरूप दुर्वासा जी की स्तुति की। इधर अम्बरीष ने भी दुर्वासा जी के शिवत्व को जानकर उन्हें प्रणाम किया, फिर दुर्वासा जी ने प्रेमपूर्वक अम्बरीष के घर भोजन किया।

एक समय दुर्वासा जी ने रामचन्द्र जी की परीक्षा ली थी। वे नियम करके रामचन्द्र जी से एकान्त में बातचीत कर रहे थे कि वहाँ लक्ष्मण जी आ पहुँचे। राम जी ने नियम के अनुसार लक्ष्मण को त्याग दिया। रामचन्द्र जी के इस दृढ़ नियम से दुर्वासा जी ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया।

इसी प्रकार दुर्वासा जी ने श्रीकृष्ण जी के नियम की भी परीक्षा ली थी और उनकी ब्राह्मणभक्ति पर प्रसन्न होकर उन्हें भी वज्र के समान दृढ़ अंगों वाला होने का वरदान दिया था।

एक बार द्रोपदी ने नग्न स्नान करते दुर्वासा जी को अपनी साड़ी का टुकड़ा फाड़ कर दिया, जिसे ओढ़कर वे जल से बाहर निकले और उन्होंने द्रोपदी को वस्त्र बढ़ने का वरदान दिया।

इस प्रकार दुर्वासा रूपधारी शिवजी ने अनेक अद्भुत चरित्र किए, जिनके श्रवण से मनुष्य धन, आयु की वृद्धि तथा सभी मनोरथों

की सिद्धि पाता है।

६. महेश अवतार

एक बार शिवजी ने भैरव को द्वारपाल नियुक्त किया और स्वयं पार्वती के साथ विहार करने भीतर चले गए। शिवजी को प्रसन्न करके उन्मत्त पार्वती जब द्वार से बाहर जाने लगी तो द्वारस्थ भैरव उसकी अनुपम रूपसुषमा पर मुग्ध होकर उस पर आसक्त हो गया। पार्वती ने उसके मन की विकृति को देखकर क्रुद्ध होकर उसे पृथ्वी पर मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। भैरव को आत्मबोध हुआ तो वह पश्चात्ताप करने लगा परन्तु भगवती का शाप तो अमिट था। फलत: भैरव शीघ्र ही पृथ्वी पर जाकर मनुष्य योनि में बैताल बना। इधर शिवजी ने भी उसके स्नेह से पार्वती सहित लौकिक गति के अनुसार पृथ्वी पर अवतार लिया। यहाँ शिवजी का नाम महेश और पार्वती का नाम शारदा हुआ।

७. हनुमान अवतार

विष्णु जी के मोहिनी रूप को देखकर लीलावश शिवजी ने कामातुर होकर अपना वीर्यपात कर दिया। सप्तर्षियों ने उस वीर्य को कुछ पत्तों पर स्थापित कर गौतम की पुत्री अञ्जनी के गर्भ में प्रवेश कराया, जिससे अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रबल पराक्रमी श्री हनुमान जी उत्पन्न हुए। बचपन में ही सूर्य को छोटा-सा फल समझ कर हनुमान जी उसे मुँह में डालने ही जा रहे थे कि देवताओं के अनुरोध पर उन्होंने उसे छोड़ दिया।

हनुमान् जी ने सब विद्याओं का अध्ययन किया और वे पत्नी-वियोग से व्याकुल ऋष्यमूक पर्वत पर रहते सुग्रीव के मन्त्री बन गए। उन्होंने पत्नीहरण से खिन्न और भटकते रामचन्द्र जी की सुग्रीव से मित्रता करा दी। सीता की खोज में समुद्र पार कर लंकापुरी गए और वहाँ उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखाए। राक्षसों का वध करके, लंका को आग लगाकर और सीता जी को आश्वासन देकर रामचन्द्र जी के पास लौटे और सीता की कुशलता से अवगत कराकर उन्हें सुख पहुँचाया। पुन: शिवजी का पूजन कर रामचन्द्र जी ने समुद्र पार किया और हनुमान जी की सहायता से युद्ध किया। लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान जी ने सञ्जीवनी बूटी लाकर उसे पुनर्जीवित किया और अहिरावण को मार कर लक्ष्मण सहित राम को उसके बन्धन से मुक्त किया। फिर कुटम्ब सहित रावण को मार कर हनु-

मान जी ने ही राम-सीता का मिलन कराया और देवताओं को सुखी किया।

इस प्रकार हनुमान अवतार धारण कर भगवान् शिव ने अपने भक्त रामचन्द्र जी की सहायता की। उनके दुःख संकट दूर कर उन्हें सुखी किया।

८. वृषभ अवतार

जरा-व्याधि-मृत्यु आदि से व्याकुल देवता और दैत्य जब शिव-जी की शरण में आए तो उन्होंने उन दोनों को मन्दराचल पर्वत को मथानी और वासुकी को रस्सी बनाकर क्षीरसागर के मन्थन करने का आदेश दिया। शिवजी की सहायता से देवता और दैत्य अपने कार्य में सफल हुए। समुद्र-मन्थन से चौदह रत्न—लक्ष्मी, धन्वन्तरि, चन्द्र, पारिजात, कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, मदिरा, शार्ंग, शंख, कामधनु, कौस्तुभ, अमृत तथा विष—निकले। अमृत के लिए देवों और दैत्यों में प्रबल संघर्ष हुआ। दैत्यों ने बलपूर्वक देवों से अमृत-कलश छीन कर अपने अधिकार में कर लिया। पराचित देवता शिव-जी की शरण में आए और शिवजी की आज्ञा से विष्णु ने स्त्री (मोहिनी) का वेश धारण कर दैत्यों से अमृत छीन कर देवताओं को पिलाया। दैत्यों ने अमृत से वञ्चित होने पर बड़ा भीषण उत्पात मचाया। विष्णु जी ने देवताओं की रक्षा करते हुए दैत्यों का विनाश किया। कुछ दैत्य आत्मरक्षा के लिए पाताल में घुस गए। उनका पीछा करते हुए विष्णु जी जब पाताल लोक में पहुँचे तो वहाँ उन्हें दैत्यों द्वारा स्थापित बहुत-सी चन्द्रमुखी स्त्रियाँ दिखाई पड़ीं। विष्णु जी ने उन सबके साथ रमण करके बहुत से युद्ध दुर्मद पुत्र उत्पन्न किए, जिन्होंने पाताल से पृथ्वी तक बड़ा उपद्रव किया। शरणागत मुनियों को साथ लेकर ब्रह्मा जी शिवजी के पास गए और रक्षार्थ प्रार्थना करने लगे।

शिवजी वृषभ रूप धारण कर पाताल के उस विवर में प्रविष्ट हुए और उन्होंने वहाँ अपने गर्जन से ही आतंक उत्पन्न कर दिया। विष्णु पुत्रों ने वृषभ द्वारा आक्रान्त होने पर शिवजी पर भीषण आक्र-मण किया। इस पर वृषभवेशधारी शिवजी ने कितने ही विष्णुपुत्रों को मूर्च्छित और कितनों को प्राणरहित कर दिया। अपने पुत्रों का विनाश देखकर विष्णु वृषभ पर अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगे, परन्तु वे शस्त्रास्त्र सर्वथा निरर्थक सिद्ध हुए। शिवजी ने अपनी

माया से विमोहित तथा अपने को न पहचानने वाले विष्णु को अपने खुरों और सींगों से विदीर्ण कर दिया। इसके पश्चात् वृषभरूपधारी पार्वती-पति को पहचान कर विष्णु जी ने उनकी स्तुति की और कहा—"करुणासागर प्रभो ! मैं मूर्ख हूँ जो मैंने आपकी माया से मोहित होकर आपके साथ युद्ध किया है। भला, कभी सेवक स्वामी से युद्ध करता है।" विष्णु जी के इन वचनों को सुनकर शिवजी ने उनकी अज्ञता के लिए उन्हें डाँटा। जब विष्णु जी लज्जित और अपमानित होकर वहाँ से जाने लगे तो शिवजी ने उन्हें रोक कर उनका चक्र वहाँ रखवा लिया और फिर कृपा करके उन्हें दूसरा चक्र प्रदान किया। इसके पश्चात् विष्णु जी ने जब यह कहा कि इन रमणियों से जो चाहे, रमण करे तो शिवजी ने इसका निषेध करके उन सब पर शासन किया। इस प्रकार विष्णु का दर्पदलन करके शिवजी अपने लोक को लौट आए।

९. पिप्पलाद अवतार

एक समय इन्द्रादि देवताओं को वृत्रासुर ने जब पराजित कर दिया तो ब्रह्मा जी के परामर्श से सभी देवता दधीचि के आश्रम में उनकी सेवा में उपस्थित हुए। दधीचि ने अपनी पत्नी सुवर्चा को घर के भीतर भेज कर देवताओं से उनके आगमन का कारण पूछा तो स्वार्थी देवों ने दधीचि जी से उनकी अस्थियों की माँग की। दधीचि ने शिवजी का ध्यान कर अपना शरीर त्याग दिया। इन्द्र ने शीघ्र ही कामधेनु से उसकी अस्थियाँ निकलवा लीं और त्वष्टा के निरीक्षण में विश्वकर्मा को सुदृढ़ वज्रमय अस्त्र बनाने का आदेश दिया। उस अस्त्र से वृत्रासुर पर प्रहार करके इन्द्र ने विजय प्राप्त की।

इधर दधीचि की पतिव्रता पत्नी सुवर्चा जब बाहर आई तो वह पति को न पाकर और सारा वृत्त जानकर अग्नि में जलने को तैयार हो गई। इस बीच आकाशवाणी हुई—मुनीश्वर का तेज तुम में विद्यमान है अतः शास्त्र की आज्ञा—गर्भवती आत्मदाह न करे—को गौरव देते हुए तुम्हें चिताग्नि में जलना उचित नहीं है। सुवर्चा ने दुःखी होकर एक ओर देवों को पशु हो जाने का शाप दिया और दूसरी ओर पत्थर से अपना गर्भ फोड़ डाला। उसके गर्भ से दिव्य शरीर वाला एवं परम कांतिमान् बालक उत्पन्न हुआ, जिसे साक्षात् शिव समझ कर सुवर्चा ने प्रणाम किया और उस स्वरूप को अपने हृदय में बसा लिया। सुवर्चा ने बालक रूप शंकर से प्रार्थना की वे पिप्पल

के मूल में निवास करें और उसे पतिलोक में जाने की अनुमति दें। यह कह कर वह देवी समाधिस्थ होकर पति के पास चली गई। इधर शंकर जी का अवतार हुआ जान कर सभी ब्रह्मादि देवताओं नें आकर उत्सव मनाया। ब्रह्मा जी ने उसका नाम पिप्पलाद रखा और उनकी आराधना कर अपने लोक को चले गए।

एक दिन पिप्पलाद ने राजा अनरण्य की रूपवती कन्या पर मुग्ध हो कन्या के पिता से कन्या की माँग की और इन्कार करने पर कुल-सहित नष्ट करने की उसे धमकी भी दी। राजा ने भयभीत होकर अपनी कन्या पिप्पलाद को दे दी। पद्मा ने अपने पति के रूप-यौवन की उपेक्षा करके तन-मन से उसकी सेवा की। युवति पद्मा से रमण कर वृद्ध मुनि पिप्पलाद युवा हो गए और उन्होंने पद्मा से अपने ही समान दस पुत्र उत्पन्न किए। पिप्पलाद मुनि के रूप में अनेक लीलाएँ करके शिवजी अपने स्वरूप में लौट आए।

१०. वैश्यनाथ अवतार

पूर्व समय में नन्दिग्राम में सुनन्दा नाम की रूपवती वेश्या रहती थी। व्यवसाय से रूपाजीवा होते हुए भी वह शिवभक्त थी। वह रुद्राक्ष विभूति धारण कर शिवजी के नाम जप में तन्मय रहा करती थी। उसके भाव की परीक्षा के लिए शंकर जी एक दिन वैश्य का रूप धारण कर उसके घर गए। उनके पास एक ऐसा सुन्दर कंकण था कि जिसे पाने को वह वेश्या आतुर हो उठी और वेश्या धर्म के अनुसार सुनन्दा ने कंकण के मूल्य के रूप में तीन दिन और तीन रात उस वैश्य की पत्नी वनकर उसके साथ रमण करने की योजना रखी, जिसे वैश्य रूपधारी शिवजी ने स्वीकार कर लिया। कंकण लेकर सुनन्दा ने अतिथि वैश्य को सुन्दर और सुखद सेज पर सुला दिया। इतने में घर में आग लगने की सूचना दासी ने दी। उस अचानक लगी आग में वह कंकण भी जल गया, जिससे उदास होकर उस वैश्य ने चिता बनवा कर उसकी आग में आत्मदाह कर लिया। वैश्य के जल जाने पर प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाने से आकुल-व्याकुल सुनन्दा ने प्राण विसर्जन करने का निश्चय किया तो विश्वात्मा शिव ने प्रकट होकर उसे मरने से रोक दिया तथा अपने दिव्य रूप के दर्शनों से उसे कृतकृत्य कर दिया। शिवजी ने उस वेश्या की भक्ति और निष्ठा की प्रशंसा करते हुए उससे वर माँगने को कहा। इस पर सुनन्दा ने उनके चरणों में नित्य भक्ति और स्वरूप के नित्य दर्शन का वरदान

माँगा, जिसे शिवजी ने 'तथास्तु' कह कर उसे परमपद प्रदान किया।

११· द्विजेश्वर अवतार

एक बार जब भद्रायु अपनी पत्नी सीमन्त्रिनी के साथ वन-विहार को गया तो भगवान् शंकर भी पार्वती को लेकर द्विज दम्पती के रूप में उस वन में विहार के लिए पहुँच गए। वहाँ वन में अचानक प्रकट हुए मृगराज से भयभीत होकर शिवजी रक्षा के लिए दौड़कर राजा की शरण में आए। राजा ने अपने अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया परन्तु उन्हें निरर्थक करके सिंह ब्राह्मण की स्त्री को अपने मुंह में दबा कर भाग गया। इस पर ब्राह्मण ने राजा की बहुत भर्त्सना की कि वह राजा होकर शरणागत ब्राह्मण की रक्षा नहीं कर सका, उसका जीवन ही व्यर्थ है। ब्राह्मण अपनी पत्नी के वियोग में दुःखी होकर जल मरने को उद्यत हो गया। राजा ने जब बहुत अनुनय-विनय की तो ब्राह्मण ने इस शर्त पर प्राण रखना स्वीकार किया कि राजा उसे उसकी पत्नी के बदले अपनी प्रधान रानी दान में दे। राजा ने शरणागत की रक्षा न कर पाने के पाप से मुक्त होने के लिए अपनी पत्नी ब्राह्मण को दान में देने का निश्चय कर लिया। दान का संकल्प करके ज्यों ही भद्रायु चिन्तागिन में जलने को उद्यत हुआ, शिवजी ने प्रकट होकर उसे अपने स्वरूप का दर्शन कराया और उसे बताया कि उसकी पत्नी वस्तुत: पार्वती है और सिंह मायानिर्मित है। यह सब उसके धर्मव्रत की परीक्षा के लिए ही किया गया था। भद्रायु के सत्यनिष्ठ सिद्ध होने पर शिवजी उसे अपनी अचल भक्ति का मुँह-मागा वर देकर अन्तर्धान हो गए।

१२. यतिनाथ अवतार

अर्बुदाचल पर्वत के समीप शिवभक्त आहुक-आहुका नामक भील दम्पती रहते थे। एक समय आहार की खोज में आहुक बहुत दूर निकल गया। थका-हारा सायंकाल को जब वह घर लौटा तो भगवान् शंकर यतीश के वेश में उसके घर पधारे। उसने यतीश का सविधि पूजन किया। यतिनाथ ने उसके घर पर रात व्यतीत करने की इच्छा प्रकट की। घर में स्थान की न्यूनता के कारण भील संकोच में पड़ गया। आहुका ने अपने पति को गृहस्थ की मर्यादा का स्मरण कराते हुए स्वयं धनुषबाण लेकर बाहर रात बिताने और यति को घर में विश्राम करने देने का प्रस्ताव रखा। आहुक ने सोच-विचार कर यति को घर में रात्रि बिताने की अनुमति दे दी। उसने आग्रहपूर्वक

पत्नी को घर के भीतर रहने को कहा और स्वयं धनुषबाण हाथ में लेकर बाहर चला गया।

प्रातःकाल आहुका और यति ने देखा कि आहुक वन्य पशुओं का भक्ष्य बन गया है। इस पर यति बहुत दुःख प्रकट करने लगा परन्तु आहुका ने उन्हें शान्त करते हुए कहा कि आप दुःख न करें। मेरा क्या है, मैं तो चिताग्नि में जलकर पति के पास पहुँच जाऊँगी। अथिति सेवा में प्राणविसर्जन धर्म है और उसका पालन कर हम धन्य हुए हैं।

यति को यह कह कर जब आहुका चिताग्नि में जलने लगी तो शिवजी ने उसे दर्शन देकर वरदान दिया। शिवजी के वरदान से अगले जन्म में आहुक निषधराज नल और आहुका दमयन्ती बनी। शिवजी ने हंस रूप धारण कर उस जन्म का उन दोनों का मिलन कराया।

१२. कृष्णदर्शन अवतार

इक्ष्वाकुवंशीय श्राद्धदेव की नवमी पीढ़ी में राजा नभग का जन्म हुआ। विद्या-अध्ययन को गुरुकुल में गए नभग जब बहुत दिनों तक न लौटे तो उनके भाइयों ने राज्य का विभाजन आपस में कर लिया और नभग के भाग का किसी को भी ध्यान ही न रहा। नभग के लौटने पर और भाइयों से अपना भाग माँगने पर उसके भाइयों ने कहा कि उसका भाग तो उसके पिता के पास है। इस पर जब वह अपने पिता के पास गया तो श्राद्धदेव ने उसके भाइयों के कथन को मिथ्या बताया और उसे कहा कि वह यज्ञ परायण ब्राह्मणों के मोह को दूर करते हुए उनके यज्ञ का सम्पन्न करके, उनके धन को प्राप्त करे—यही एकमात्र उपाय है जिससे वह समृद्ध हो सकता है।

नभग ने यज्ञभूमि में पहुँच कर वैश्य देव सूक्त के स्पष्ट उच्चारण द्वारा यज्ञ सम्पन्न कराया। आंगिरस ब्राह्मण यज्ञ का अवशिष्ट धन नभग को देकर स्वर्ग को चले गए। उसी समय शिवजी कृष्ण-दर्शन रूप में प्रकट होकर बोले कि यज्ञ के अवशिष्ट धन पर तो उनका अधिकार है। नभग के विवाद करने पर कृष्ण-दर्शन रूपधारी शिवजी ने उसे अपने पिता से ही,निर्णय कराने को कहा। नभग के पूछने पर श्राद्धदेव ने कहा—वह पुरुष शंकर भगवान् हैं। यज्ञ में अवशिष्ट वस्तु उन्हीं की है। यदि वे कृपा करें तो तुम पा सकते हो। अखिलेश्वर प्रभु शंकर आशुतोष हैं। तुम वहाँ जाकर उनकी स्तुति करो

अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करो तो वे तुम्हें कृतकृत्य कर देंगे। पिता के वचनों को गौरव देते हुए नभग ने दण्डवत् प्रणाम करके शिवजी की अनेक प्रकार से स्तुति प्रार्थना की और शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे ब्रह्मज्ञान प्रदान किया, जिससे उसकी भी सद्‌गति हो गई।

१४. अवधूतेश्वर अवतार

एक समय बृहस्पति और अन्य देवताओं को साथ लेकर इन्द्र शंकर जी के दर्शनों को कैलाश पर आया तो उसकी परीक्षा के लिए शिवजी ने अद्‌भुत आकार वाले अवधूत का रूप धारण कर उसका मार्ग रोक लिया। इन्द्र ने उस पुरुष से अवज्ञापूर्वक वार-वार उसका परिचय पूछा तो वह मौन ही रहा। इस पर क्रुद्ध होकर इन्द्र ने ज्यों ही अवधूत पर प्रहार करने के लिए वज्र छोड़ना चाहा त्यों ही उसका हाथ स्तम्भित हो गया। यह देखकर बृहस्पति ने शिवजी को पहचान कर अवधूत की वहुविध स्तुति की, जिस पर प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्द्र को क्षमा कर दिया। इन्द्र को जीवन दिलाने के कारण ही बृहस्पति की जीव संज्ञा पड़ी।

१५. भिक्षुवर्य अवतार

विदर्भ नरेश सत्यरथ को शत्रुओं ने मार डाला। उसकी गर्भवती पत्नी ने शत्रुओं से छिपकर अपने प्राण वचाए। समय पर उसे एक सुन्दर वालक उत्पन्न हुआ। रानी जल पीने सरोवर पर गई तो वहाँ उसे घड़ियाल ने अपना आहार वना लिया। सद्योजात वालक भूख-प्यास से पीड़ित हो रोने-चिल्लाने लगा। इतने में शिवजी की माया से प्रेरित एक भिखारिन वहाँ आ पहुँची और एकाकी पड़े अबोध-वालक पर दयार्द्र हो उठी। उस वालक के सम्बन्ध में किससे पूछे, इसी उहापोह में भटक ही रही थी कि शिवजी ने भिक्षुक रूप धारण कर उसे वालक का परिचय कराया और उसके पालन-पोषण का निदेश दिया। भिक्षुक वेषधारी शिवजी ने वताया कि यह वालक शिवभक्त विदर्भ नरेशस त्यरण का ही पुत्र है। इसका पिता युद्ध में शाल्व शत्रुओं द्वारा मार डाला गया है। इसका कारण शिवार्चन को अधूरा छोड़ कर उसका युद्ध तत्पर होना तथा शिवपूजा को सम्पन्न किए विना ही रात्रि में भोजन कर लेना है। इस वालक की माता घड़ियाल का भोजन वन गई है। इसका कारण उसका पूर्व जन्म में अपनी सौत की छल से हत्या करनी है। शिवपूजा न करने से ही यह दरिद्रता को प्राप्त हुआ है। यह सब कह कर भिक्षुक वेषधारी

शिवजी ने कृपा करके भिक्षुणी को अपने दिव्य रूप के दर्शन कराए। शिवजी के दर्शनों से कृतकृत्य भिक्षुणी ने उनकी आज्ञा से नवजात बालक का पालन-पोषण किया। बड़ा होकर उस बालक ने शिवजी की कृपा थे-अपना नृपत्व प्राप्त किया।

१६. सुरेश्वर अवतार

व्याघ्रपाप का पुत्र उपमन्यु अपने मामा के घर पलता था। वह सदा दूध की इच्छा से आकुल व्याकुल तथा अभाव से पीड़ित रहता था। उसकी माँ ने उसे अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए शंकर जी की शरण ग्रहण करने की सलाह दी। इस पर उपमन्यु वन में जाकर "ओ नमः शिवाय" का जाप करने लगा। शिवजी ने सुरेश्वर (इन्द्र) रूप धारण कर उसे दर्शन दिया और शिव की अनेक प्रकार से निन्दा करके उसे अपने से ही वर माँगने को कहने लगा। इस पर उपमन्यु अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और वह इन्द्र को मारने को तत्पर हो गया। उपमन्यु की अपने में दृढ़ भक्ति और अचल विश्वास देखकर शिव-जी ने उसे अपने स्वरूप का दर्शन कराया तथा क्षीर सागर के समान एक अनश्वर सागर उसे प्रदान किया। उसकी प्रार्थना पर कृपालु शिवजी ने उसे अपनी पराभक्ति और अजर-अमर पद प्रदान किया।

१७. ब्रह्मचारी अवतार

दक्ष के यज्ञ में प्राण त्याग करने के उपरान्त जब सती ने हिमा-चल के घर जन्म लिया और शिवजी को पतिरूप में पाने के लिए तप का आश्रय लिया तो शिवजी ने ही उसकी परीक्षा के लिए सप्तर्षियों को भेजा और सप्तर्षियों ने अपनी कार्यवाही से शिवजी को अवगत कराया। शिवजी ब्रह्मचारी का अवतार धारण कर पार्वती की परीक्षा के लिए वहाँ गए। पार्वती ने तेजस्वी ब्रह्मचारी को देखकर उसकी पूजा की। इसके उपरान्त ब्रह्मचारी ने पार्वती से उसके तप का उद्देश्य पूछा और शिवजी की निन्दा प्रारम्भ कर दी। ब्रह्मचारी ने शिव को 'कापालिक', 'अगृही', 'श्मशानवासी', आदि बताकर उसकी बहुत-बहुत अवज्ञा थी। इस पर रुष्ट होकर पार्वती ने शिवनिन्दक उस ब्रह्मचारी की पूजा करने से अपने कृत्य को ही अनुचित बताया और अपनी सखी विजया को उस ब्रह्मचारी को वहाँ से निकालने को कहा। ज्यों ही पार्वती ने ब्रह्मचारी के प्रति उग्रता दिखाई त्यों ही ब्रह्मचारी वेशधारी शिव ने अपना रूप पार्वती को दिखाया और उसकी प्रार्थना पर उसके पिता से विधिवत उसे माँग कर उसके साथ विवाह किया।

पार्वती से विवाह कर शिवजी ने कैलाश पर आकर उसके साथ चिर विहार किया।

१८. सुन्दरनर्तक अवतार

तपोरता पार्वती को जब शिवजी ने दर्शन दिए और उसके पिता से विधिवत् उसे माँगने की उसकी प्रार्थना स्वीकार की तो भोलेनाथ ने सुन्दर नटनर्तक का वेश धारण किया। बाएँ हाथ में लिंग, व दाएँ हाथ में डमरू लेकर, बाल वस्त्र पहने नटवर शिवजी हिमाचल के घर पहुँच कर नृत्य करने लगे। नटराज शिवजी ने इतना सुन्दर और मनोहर नृत्य किया कि सभी उपस्थित लोग आनन्द-विभोर हो उठे। मैना स्वयं रत्नों का थाल भर कर देने के लिए उपस्थित हुई परन्तु शिवजी ने भिक्षा में पार्वती को माँगा। इस पर मैना क्रुद्ध हो गई। इतने में हिमालय वहाँ आ गए और वे भी नर्तक की माँग पर क्षुब्ध हो उठे। हिमालय ने नर्तक को घर से बाहर निकालने का अपने भृत्यों को आदेश दिया परन्तु प्रयत्न करने पर भी कोई उन्हें घर से बाहर न निकाल सका। कुछ देर में नटवर वेशधारी शिवजी पार्वती को अपना रूप दिखाकर स्वयं ही चले गए। उनके चले जाने पर मैना और हिमाचल को दिव्यज्ञान हुआ और उन्होंने पार्वती को शिवजी को देने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार शिवजी में उन दोनों की अनन्य निष्ठा हो गई।

१६. साधु अवतार

हिमाचल ने जब अपनी पुत्री पार्वती शिवजी को देने का निश्चय कर लिया तो देवताओं को ईर्ष्यावश यह चिन्ता होने लगी कि इससे तो हिमाचल शिवजी की एकांग भक्ति से शिव के निर्वाण पद का अधिकारी हो जाएगा। इसके साथ ही वह अनन्त रत्नों का स्वामी बन कर पृथ्वी की 'रत्नगर्भा' संज्ञा को ही निरर्थक कर देगा। इस पर अपने गुरु बृहस्पति से मन्त्रणा कर इन्द्रादि देवता ब्रह्मा जी के पास गए और उनसे शिवजी की निन्दा करके हिमाचल को अपने निश्चय से विरत करने का अनुरोध करने ब्रह्मा जी ने शिवनिन्दा जैसा घोर पातक करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। देवताओं के गिड़गिड़ाने पर ब्रह्मा जी ने कहा कि मैं, विष्णु अथवा कोई अन्य महानुभाव शिवजी की निन्दा करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। इसके लिए तुम शिवजी के पास जाओ और उनसे ही शैलराज के सम्मुख स्वयं अपनी निन्दा करने की प्रार्थना करो। देवताओं के अनुरोध को भोलेनाथ

ने स्वीकार कर लिया और वे साधु का वेश वना कर हिमाचल के घर गए। हिमाचल ने तेजस्वी साधु का सोत्साह स्वागत किया और साधु वेशधारी शिवजी ने अपने को सिद्ध ज्योतिषी वता कर कहा कि तुम अपनी पुत्री पार्वती का शंकर जी से विवाह करने जा रहे हो परन्तु शिवजी तो 'विरूप', ,निर्गुण', श्मशानवासी', 'विकट' 'सर्पधारी' और 'दिगम्वर' हैं। उनके साथ वेचारी पार्वती किस प्रकार सुखी रहेगी ? शिवजी यह कस कर चल पड़े परन्तु पर्वतराज यह सव सुनकर अपनी आस्था से विचलित नहीं हुआ।

२०. विभु अश्वत्थामा अवतार

वृहस्पति के पौत्र और भारद्वाज के अयोनिज पुत्र द्रोणाचार्य ने अपने तप से शिवजी को प्रसन्न करके उनका तेजस्वी पुत्र प्राप्त करने का वरदान पाया और यथासमय अश्वत्थामा का जन्म हुआ। अश्वत्थामा के वल से कौरव शक्तिशाली हो गए। अवश्त्था ने कृष्ण, अर्जुन आदि के देखते-देखते पाण्डवों के पुत्रों को मार डाला। अर्जुन पर जव उसने व्रह्मास्त्र का प्रयोग किया तो अर्जुन ने शैवराज श्रीकृष्ण के परामर्श पर शैवास्त्र का प्रयोग किया, जिससे दुर्निवार व्रह्मास्त्र शान्त हो गया। अश्वत्थामा रूपधारी शिवजी के अस्त्र ने उत्तरा के गर्भस्थ शिशु को निर्जीव कर दिया। भगवान् शिव की कृपा से कृष्ण जी ने उस वालक को पुनर्जीवित किया। इसके उपरान्त शिवभक्त श्रीकृष्ण ने सभी पाण्डवों को अवश्त्थामा के चरणों में प्रणाम कराया और उनसे अश्वत्थामा की महिमा का गान कराया।

२१. किरात अवतार

कौरवों ने द्यूत में छल-कपट से पाण्डवों को हराकर उनका राज्य हड़प लिया और पाण्डवों को वन-वन भटकना पड़ा। वन में भी दुर्योधन ने दुर्वासा जी आदि को भेज कर पाण्डवों को व्यथित और नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। समय-समय पर कृष्ण जी ने पाण्डवों की रक्षा की और उन्हें भगवान् शिवजी का भजन करने का परामर्श दिया। इसी प्रकार वेदव्यास जी ने भी पाण्डवों को वताया कि शिवभक्ति से ही उनका कल्याण हो सकता है।

इन दोनों महात्माओं के परामर्श पर अर्जुन भगवान् शंकर को तप द्वारा प्रसन्न करने के लिए एकान्त पर्वत पर चला गया। इन्द्र ने प्रकट होकर अर्जुन से वर माँगने को कहा तो अर्जुन ने सभी कौरवों पर विजय होने का वर माँगा। इन्द्र ने शिवावतार अश्वत्थामा पर

विजयी होने का वरदान देने में अपनी असमर्थता प्रकट की और इसके लिए अर्जुन को भगवान् शिव को प्रसन्न करने की सलाह दी।

अर्जुन ने घोर तप प्रारम्भ कर दिया। इधर दुर्योधन ने पता लगते ही मूड़ दैत्य को अर्जुन के तप में विघ्न डालने के लिए भेजा। उस दैत्य ने शूकर रूप धारण कर अर्जुन पर वार किया। अर्जुन ने शिवजी का स्मरण कर शूकर पर अपने वाण से प्रहार किया। इधर भक्तवत्सल शिवजी ने भी भक्त की रक्षा के लिए शूकर पर शरसन्धान किया। शिवजी इस समय किरातवेश धारण किए हुए थे और उन्हें न पहचान पाने के कारण अर्जुन ने शूकर को अपना मृत वताया और इधर अर्जुन की परीक्षा के लिए किरात वेशधारी शिवजी ने भी शूकर पर अपना अधिकार जतलाया। इसी वात पर दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। अर्जुन के सारे शस्त्र, सारी युद्धकला निरर्थक सिद्ध हुई। निराश अर्जुन युद्ध छोड़ कर शिवाराधन में लग गया, परन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा जव कि उसके द्वारा शिवमूर्ति को पहनाई गई माला किरात के कण्ठ को सुशोभित करने लगी। अर्जुन ज्यों ही किरात के निकट आया तो भगवान् शंकर ने उसे अपने दिव्य रूप के दर्शन कराए और उसे कौरवों पर विजय का वरदान देकर कृतकृत्य किया। अर्जुन किरात वेशधारी भगवान् शंकर की स्तुति वन्दना करके तथा उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करके अपने घर लौट आया।

भगवान् शंकर के उपर्युक्त कतिपय अवतारों का वर्णन करने के उपरान्त शिवजी के द्वादश ज्योतिर्लिंगों का परिचय देते हुए नन्दीश्वर सनत्कुमार जी से कहते हैं—हे मुने ! सर्वव्यापक शंकर जी के ज्योतिर्लिंग निम्नोक्त रूप से हैं:—

१. सौराष्ट्र में सोमनाथ	७. काशी में विश्वनाथ
२. श्री शैल में मल्लिकार्जुन	८. गौतमी तट पर अम्बेकश्वर
३. उज्जयिनी में महाकालेश्वर	९. अयोध्यापुरी (दारुक वन) में नागेश
४. विन्ध्यांचल ओंकार में ओंकारेश्वर	१०. चिता भूमि में वैद्यनाथ
५. हिमालय पर्वत पर केदारनाथ	११. सेतुवन्ध में रामेश्वर
६. डाकिनी में भीमशंकर	१२. देवसरोवर में घुश्मेश्वर

इन ज्योतिर्लिंगों की पूजा का फल बताते हुए नन्दीश्वर कहते हैं:—सोमनाथ के पूजन करने से क्षय तथा कुष्ठादि रोगों का नाश होता है। मल्लिकार्जुन के दर्शन करने से सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं। महाकालेश्वर के दर्शन-पूजन से सभी कामनाओं की सिद्धि और अन्त में उत्तम गति की प्राप्ति होती है। ओंकार लिंग भक्तों को वाञ्छित फल देने वाला है। नर-नारायण रूप केदारेश दर्शन-पूजन करने से अभीष्ट फलदायक है। भीमशंकर भक्तों के सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। विश्वेश्वर भक्ति-मुक्ति के प्रदाता हैं। काशी विश्वनाथ के पूजक कर्मबन्धन से निवृत्त होकर मोक्ष के भागी बनते हैं। अम्बकेश्वर दर्शन-स्पर्श कामनाओं की पूर्त्ति करके अन्त में मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। वैद्यनाथ पूजन से रोगनिवृत्ति तथा सुखवृद्धि होती हैं। नागेश ज्योतिर्लिंग के दर्शन-पूजन से पावक पुञ्ज नष्ट हो जाता है। रामेश्वर मुक्ति के प्रदाता हैं। वे भक्तों की सभी कामनाओं को पूरा करने वाले हैं। घुश्मेश्वर के दर्शन-पूजन से इहलौकिक सुखों का प्राप्ति और अन्त में मुक्ति की प्राप्ति होती है।

नन्दीश्वर जी बोले—हे सनत्कुमार जी! इन बारह ज्योतिर्लिंगों के रूप में साक्षात् भगवान् शंकर ही स्थित हैं। भक्तों के कल्याण के लिए ही उन्होंने रूप धारण किए हैं। स्वयं शिवजी ने ही चन्द्रमा के कष्ट के निवारण के लिए सोमनाथ का, स्वामी कार्त्तिकेय के कल्याण के लिए मल्लिकार्जुन का, दूषण दानव को हुंकार द्वारा भस्म करने के लिए महाकालेश्वर का, विन्ध्याचलवासियों के कल्याणार्थ ओंकारेश्वर का, नर-नारायण को सुख देने के लिए केदारनाथ का, असुर भीम के वध के निमित्त भीमशंकर का, भैरव की स्थापना के लिए विश्वनाथ का, गौतम की अभिलाषापूर्त्ति के लिए अम्बकेश्वर का, रावण के निमित्त वैद्यनाथ का, दारूक दैत्य के वध के लिए नागेश का, राम जी को विजयी बनाने के लिए रामेश्वर का, घुश्मा के पुत्र को बचाने तथा सुदेह्य दानव के विनाश के लिए घुश्मेश्वर का रूप धारण किया।

इन ज्यतिर्लिंगों की कथा भक्तिपूर्वक पढ़ने-सुनने तथा सुनाने से मनुष्यों के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं और अन्त में उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है।

कोटिरुद्र संहिता

ऋषियों ने कहा—हे शैवश्रेष्ठ सूत जी ! आप कृपा करके शिव-जी के लिंग सम्बन्धी माहात्म्य को फिर से कहिये। सूत जी बोले—हे ब्राह्मणो ! लोकों की हितकाकना से आप लोगों ने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। आप लोगों के स्नेहवश मैं शिवलिंगों की महिमा का संक्षेप से वर्णन करता हूँ। हे मुनीश्वरो ! पृथ्वी सहित यह सारा जगत् लिंग में प्रतिष्ठित होने के कारण लिंगमय है। सारा दृश्य जगत् शिवजी का स्वरूप है। देवता, असुर और मनुष्य सभी शिवजी की पूजा करते है अत: सारा त्रिलोक शंकर जी से व्याप्त है। भगवान् शंकर सब तीर्थों तथा स्थलों में अनेक प्रकार के लिंग धारण करते हैं। लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही शंकर जी ने अपने लिंग की कल्पना की है, जिसकी पूजा करके मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है।

यद्यपि पृथ्वी में विद्यमान लिंग असंख्य हैं तथापि प्रधान ज्योति-लिंग द्वादश हैं—सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्री शैल में मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी में महाकाल, विन्ध्यप्रदेश में ओंकारेश्वर, हिमालयशृंग पर केदार, डाकिनी में भीमशंकर, वाराणसी में विश्वेश, गौमती तट पर त्रयम्बक, चिताभूमि में वैद्यनाथ, अयोध्या के दारुक वन में नागेश, सेतुवन्ध में रामेश और देवसरोवर में घुश्मेश। प्रात:काल उठकर इन द्वादश ज्योतिर्लिंगों का स्मरण वाचन करने से आवागवन के चक्र से मुक्ति मिल जाती है। इन लिंगों की पूजा से सभी वर्णों के लोगों के दु:खों का नाश होता है। इन लिंगों पर चढ़ा नैवेद्य भक्षण करने से सारे पाप क्षण में ही भस्म हो जाते हैं।

इन ज्योतिर्लिंगों के कतिपय प्रमुख उपलिंग निम्नोक्त रूप से हैं—

क्रम	ज्योतिर्लिंग	स्थान	उपलिंग
१.	सोमेश्वर	सागर और पृथ्वी का मिलन स्थान	अन्तकेश
२.	मल्लिकार्जुन	भृगुकक्ष	रुद्रेश्वर
३.	महाकालेश्वर	नर्मदा तट	दुग्धेश
४.	ओंकारेश्वर	बिन्दुसरोवर	कर्दमेश
५.	केदारेश	यमुनातट	भूतेश
६.	भीमशंकर	सह्याद्रि	भीमेश्वर
७.	नागेश्वर	सरस्वती तट	भूतेश्वर
८.	रामेश्वर	समुद्र तट	गुप्तेश्वर
९.	घुश्मेश्वर	शिवालय	व्याघ्रेश्वर

इन सभी लिंगों और उपलिंगों का दर्शन-पूजन अनिष्टनाशक-और इष्टसाधक है। श्रद्धालुजन इन लिंगों में से किसी भी एक की उपासना से इहलौकिक सुख प्राप्त कर पारलौकिक आनन्द (मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं।

सूत जी कतिपय निम्नोक्त अत्यन्त प्रसिद्ध शिवलिंगों के इतिहास और उनकी महिमा का शौनकादि ऋषियों को परिचय इस प्रकार से कराते हैं।

१. अत्रीश्वर महादेव

निरन्तर सौ वर्षों तक अनावृष्टि के कारण, निवास के सर्वथा अनुपयुक्त हो जाने से ऋषियों द्वारा परित्यक्त, अत्यन्त ऊष्ण एवं शुष्क कामद वन में अत्रि जी ने अपनी पत्नी अनसूआ के साथ कठोर तप किया। शिवजी का जाप करते-करते ऋषि प्रवर अचेत हो गए। उस समय उन दोनों के दर्शन के लिए देवता, ऋषि, गंगादि नदियाँ वहाँ आईं और सब लोग तो दर्शन करके चले गए परन्तु शिवजी और गंगाजी अनसूया का उपकार करने के लिए वहाँ रुक गए।

चौवन वर्ष तक समाधिस्थ रहने के पश्चात् जगने पर अत्रि जी ने अनसूया से जल माँगा तो वह देवी कमण्डल लेकर जल की खोज में भटकने लगी। गंगाजी भी उसके पीछे चलीं और उसकी पतिभक्ति, सत्यनिष्ठा और सेवावृत्ति को देखकर उस पर प्रसन्न होकर बोलीं— मैं गंगा हूँ! जो चाहो, मुझसे वर माँग लो। अनसूया ने प्रणाम करके जल प्रदान करने की माँग की। गंगा जी के इस कथनपर अनसूया द्वारा गड्ढा खोदने पर गंगा जी उसमें प्रवेश कर गई और अनसूया आश्चर्य-

चकित होकर जल लेने लगी। उसने गंगा जी से अपने पति के आने तक उस गड्ढे में टिके रहने का अनुरोध किया। अनसूया द्वारा लाए मधुर ज़ल का आचमन करके ऋषि ने आश्चर्य प्रकट किया और पूछा कि वर्षा के अभाव में उसे जल की प्राप्ति कहाँ से हुई है? अनसूया ने कहा कि भगवान् शंकर की अनुकम्पा और आपके सुकृतों के प्रताप से गंगाजी यहाँ आ गई हैं और यह गंगाजल है। अत्रि ने इस विस्मय को अपने नेत्रों से देखना चाहा तो अनसूया ने उन्हें उस गड्ढे के पास लाकर खड़ा किया। अत्रि अपने तप को सफल मानते हुए बार-बार उस मधुर जल का आचमन और स्तुति करने लगे। अत्रि ने करबद्ध होकर गंगा से सदा के लिए उस स्थान पर निवास करने की प्रार्थना की। गंगा ने कहा कि यदि अनसूया शिवपूजक अपने पति की एक वर्ष की सेवा का पुण्य मुझे दे तो मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर सकती हूँ। अनसूया ने लोकहित के लिए यह त्याग कर दिया। यह देखकर महादेव जी पार्थिव लिंग के रूप में वहाँ प्रकट हुए और ऋषि दम्पती ने पंचमुख शंकर को प्रत्यक्ष देखकर उनकी स्तुति की और उनसे भी सदा के लिए वहीं टिकने की प्रार्थना की। अनसूया द्वारा खोदा वह गड्ढा मन्दाकिनी कहलाया और शिवजी का स्वत:प्रकट ज्योतिर्लिंग अत्रीश्वर कहलाया। गंगा के प्राकट्य से दुर्भिक्ष मिट गया और ऋषि-गण पुन: उस वन में आकर तपश्चरण करने लगे।

२. नन्दिकेश्वर महादेव

रेवा के पश्चिमी तटस्थित कर्णिका नगरी के एक कुलीन ब्राह्मण ने अपने पुत्रों को धन सौंप कर काशी को प्रस्थान किया और वहीं स्वर्गस्थ हो गया। उसकी स्त्री ने कुछ धन अपने अन्तिम कर्म के लिए रखकर शेष अपने दोनों पुत्रों में बाँट दिया। कुछ काल व्यतीत होने पर ब्राह्मणी का मृत्युकाल निकट आया परन्तु उत्तमोत्तम दानपुण्य करने पर भी ब्राह्मणी के प्राण निकल नहीं रहे थे। लड़कों ने माँ से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी तो उसने बताया कि वह काशी जाना चाहती चाहती थी परन्तु जा नहीं पाई। उसकी अस्थियाँ काशी में गंगा में विसर्जित की जाएँ। पुत्रों द्वारा आश्वासन दिए जाने पर ब्राह्मणी मर गई और उसकी अस्थियाँ लेकर उसका ज्येष्ठ पुत्र सुवाद काशी को चला।

सुवाद काशी में जिस ब्राह्मण के घर ठहरा, वहाँ उसने एक

आश्चर्यजनक घटना देखी। रात को लौटे ब्राह्मण ने जब बछड़े को चुंगवा कर खूंटे पर बाँध दिया और गाय दोहने लगा तो उछल-कूद करते बछड़े ने उसका पैर कुचल दिया। पीड़ित ब्राह्मण ने बछड़े को खूब पीटा तो बछड़े ने उछल-कूद वन्द कर दी। ब्राह्मण ने गाय दोह ली परन्तु उसका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ और उसने फिर निर्दयता से बछड़े को पीटा। बछड़े की वेदना से व्यथित गाय ने प्रातःकाल अपने स्वामी ब्राह्मण से प्रतिरोध के रूप में उसे मार गिराने का निश्चय बछड़े को बताया तो बछड़े ने अपनी माँ को इस पापकर्म से विरत करने को बहुत समझाया। बछड़े ने कहा कि पता नहीं किन दुष्कर्मों के फलस्वरूप हम इस योनि में आकर दुःख भोग रहे हैं, अब पुनः ऐसा कोई कुकर्म नहीं करना चाहिए जिससे हमारी मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाए। गाय का क्रोध और पीड़ा इतनी उग्र थी कि वह कुछ भी सुनने को प्रस्तुत न हुई। यहाँ तक कि बछड़े द्वारा ब्रह्महत्या के दुर्निवार पाप न करने की चेतावनी देने पर गाय ने कहा कि मैंने ब्रह्महत्या का पाप निवारक स्थान देखा है अतः मैं अपने मन के ताप को शान्त करने के लिए प्रातःकाल अपने सींगों से दुष्ट ब्राह्मण को ऐसा मारूँगी कि वह विदीर्ण होकर वहीं मर जाएगा। सुवाद ने माँ-बेटे की यह बात सुनी तो वह भावी घटना को देखने को उत्सुक हो उठा और प्रातःकाल शरीर-पीड़ा का बहाना बनाकर देर तक लेटा रहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण अपने पुत्र को गाय दोहने को कहकर चला गया। ब्राह्मण का पुत्र अपनी माँ के साथ ज्यों ही गाय दोहने गया, त्यों ही गाय ने अपने सींगों से उस पर ऐसा संघातक प्रहार किया कि वह वहीं मर गया। घर में कोहराम मच गया। ब्राह्मणी ने क्रुद्ध होकर गाय को खूंटे से छोड़ दिया। लोगों ने देखा कि ब्रह्महत्या के पाप के फलस्वरूप गाय का श्वेत शरीर काला हो गया। गाय निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दी। सुवाद भी गाय के पीछे चल पड़ा। गाय नर्मदा के तट पर नन्दिकेश्वर महादेव के स्थान पर पहुँची और वहाँ तीन गोते लगाते ही उसके सारे पाप नष्ट हो गए। काला शरीर सफेद हो गया। सन्दीश्वर के अनुग्रह और नर्मदा के माहात्म्य से ब्रह्महत्या उससे दूर भाग गई।

उस समय सुवाद के सामने सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर गंगा ने उसे अपनी माँ की अस्थियों का विसर्जन कर उसका उद्धार करने

को कहा। उस स्त्री ने कहा कि आज के दिन वैशाख शुक्ला सप्तमी को गंगा जी ही नर्मदा में निवास करती हैं। ब्राह्मण सुवाद के वैसा करने पर उसकी माता ने दिव्य शरीर धारण कर उसे आशीर्वाद दिया। इसके उपरान्त सुवाद प्रसन्नचित्त घर लौट आया।

ऋषिका नामक विधवा ब्राह्मण कन्या ने व्रत धारण कर शिवजी का पार्थिव पूजन प्रारम्भ किया तो एक मायावी दैत्य आकर उससे रतिदान माँगने लगा। शिवभक्त कन्या में शिवजी की कृपा से काम-भावना दग्ध हो चुकी थी। वह एकाग्रचित्त से शिवजी के नाम का जाप ही करती रही। दैत्य ने इसे अपना अपमान समझ कर उसे अपना दानवी रूप दिखाया तो ब्राह्मणी ने शिवजी को पुकारा। शिवजी ने दुष्ट दैत्य का विनाश करके ब्राह्मणी से वर माँगने को कहा तो उसने भगवान् शंकर से अपनी अचल भक्ति देने का और पार्थिव रूव में वहाँ नित्य विराजमान रहने का वरदान मांगा, जिसे शिवजी ने स्वीकार किया और वे अपना पार्थिव शरीर वहीं छोड़-कर अन्तर्धान हो गए। उसी दिन से नन्दिकेश्वर महादेव के नाम से तह स्थान पवित्र तीर्थ बन गया। नर्मदा नदी में स्नान कर नन्दिके-श्वर महादेव की पूजा करने से ब्रह्महत्या जैसे भयंकर पाप-तापों से निवृत्ति हो जाती है।

३. महाबलेश्वर महादेव

पश्चिमी सागर तट पर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र में महाबल शिवलिंग के रूप में स्वयं महादेव जी अवस्थित हैं। रावण ने घोर तप द्वारा वर प्राप्त कर गोकर्ण में महाबल महादेव की स्थापना की। माघ कृष्ण चतुर्दशी को शिवजी के इस पार्थिव लिंग की पूजा से अन्त्यजों को भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक इति-हास प्रसिद्ध है। सौमनी नामक ब्राह्मण कन्या का विवाह के कुछ वर्षों के उपरान्त जब पति चल बसा तो कुछ समय उसने सदाचार और नियम का जीवन जिया परन्तु पुनः वह कामपीड़ित होकर व्यभि-चारिणी बन गई। उसके इस दुराचरण पर घरवालों ने उसे घर से निकाल दिया। भटकती हुई सौमनी को एक शूद्र ने अपना लिया। शूद्र की पत्नी बन कर सौमनी मांसाहार और मद्यपान करने लगी। एक दिन तो उसने बछड़े को मार कर उसका ही मांस खा लिया। उसके मरने पर यमराज ने उसे नरकवास से निवृत्त कर चाण्डाल के घर अन्धी बालिका के रूप में जन्म दिया। सभी सुखों से वञ्चित

वह अन्धी वालिका कुष्ठरोग का शिकार हो गई। इस प्रकार उसका जीवन नरकमय हो गया।

एक वार गोकर्ण की यात्रा को जाते शिवभक्तों के पीछे वह भिक्षा के प्रलोभन में चल पड़ी। किसी ने उसकी हथेली पर विल्व-मञ्जरी रखी तो भिक्षुका ने उसे अभक्ष्य समझ कर दूर फेंक दिया। संयोग की वात कि उसके हाथ से छूटी व्रिल्वमञ्जरी रात्रि में किसी शिवलिंग के मस्तक पर जा पड़ी। इधर चतुर्दशी की उस रात्रि को कुछ न मिलने से ही संयोगवश उसका निराहार व्रत हो गया और साथ ही रात्रि-जागरण भी हो गया। प्रातःकाल घर लौटने पर क्षुधा-तुर वह गिर पड़ी और मृत्यु को प्राप्त हो गई। शिवगणों ने उसे विमानारूढ़ कर शिव के परमपद को प्राप्त कराया। महावल शिवजी की अज्ञान से की गई पूजा से ही उस चाण्डालिनी का उद्धार हो गया। सज्ञान पूजा अमित फलदायिनी है—इसमें सन्देह के लेश केलिए भी अवकाश नहीं।

महावल शिवशी की पूजा ब्रह्महत्या जैसे घोर घातक से निवृत्ति देने वाली है। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध इतिहास इस प्रकार है:—इक्ष्वाकुवंशीय मित्रसह द्वारा अपने ज्येष्ठ भ्राता कमठ असुर के मारे जाने पर प्रतिशोध की भावना सें चमठ ने राजा के घर रसोइया की नौकरी कर ली। दुष्ट और कपटी असुर ने कृत्रिम सद्व्यवहार से राजा मित्रसह का विश्वास जीत लिया और उसका प्रधान रसोइया बन गया। एक दिन जव राजा ने अपने गुरू वसिष्ठ को भोजन पर निमन्त्रित किया तो उस दुष्ट ने भोजन में आदमी का मांस पकाकर परोस दिया। वसिष्ठ जी जान गये। उन्होंने क्रुद्ध हो राजा को राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। सत्य जानकर वसिष्ठ जी ने उस शाप की अवधि वारह वर्ष कर दी। इधर राजा गुरू के अनुचित व्यवहार पर क्रुद्ध होकर हाथ में जल लेकर गुरू को शाप देने लगा परन्तु अपनी पत्नी मदयन्ती के समझाने-बुझाने पर रुक गया। राजा ने अपने हाथ का पानी ज्योंही अपने पैरों पर डाला त्योंही उसके पैर काले पड़ गए और उसी दिन से मित्रसह राजा का नाम कल्मषपाद पड़ गया।

एक वार राक्षस बने कल्मषपाद ने एक तपस्वी मुनि और उसके पुत्र को पकड़कर फाड़ डाला। मुनिपत्नी ने अपने पति और पुत्र को छोड़ने की राक्षस से वहुत अनुनय-विनय की परन्तु जव उस राक्षस ने एक न सुनी तो मुनि-पत्नी ने उसके वंश को निर्मूल करने के लिए उसे

शाप दिया कि स्त्री समागम करने पर उसकी मृत्यु हो जाएगी।

बारह वर्ष की अवधि व्यतीत होने पर पर राजा शापमुक्त होकर अपने स्वरूप में आया तो मदयन्ती से समागम करने लगा। उस पतिव्रता को ब्राह्मणी का शाप ज्ञात हो गया, जिससे उसने अपने पति को भोग से विरत कर दिया। इसके वह गृहस्थ से उदासीन होकर वन में चला गया परन्तु ब्रह्महत्या ने उसका वहाँ भी पीछा न छोड़ा। उसने अनेक जप-तप, दान-व्रत किए परन्तु ब्रह्महत्या उसे चिपटी ही रही। अन्त में वह शिवभक्त गौतम मुनि की शरण में गया तो ऋषि ने उस पर कृपा करते हुए उसे गोकर्ण नामक शिवक्षेत्र में जाकर महाबलेश्वर लिंग की पूजा करने का सुझाव दिया। वहाँ जाकर शिवजी की आराधना करने से राजा ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर अन्त में शिवपद को प्राप्त हुआ। शिवजी की पूजा से बड़े-बड़े पातकों से मुक्ति पाकर जीव निर्भीक तथा शिवरूप हो जाता है।

४. हाटकेश्वर महादेव

एक समय दारुक वनवासी ऋषियों की परीक्षा के लिए नील-लोहित शंकर विकट रूप तथा हाथ में ज्योतिर्लिंग धारण किए ऋषि पत्नियों के पास आ पहुँचे और उनके साथ कामुक चेष्टाएँ करने लगे। समिधा लेने गए ऋषियों ने लौटकर यह दृश्य देखा तो शिवजी की माया से विमोहित उन ऋषियों ने वेद मार्ग विरुद्ध काम करने वाले अवधूत को आड़े हाथों लिया परन्तु दिगम्बर महादेव शान्त रहे। इसे धूर्त्तता समझते हुए ऋषियों ने लिंग के पृथ्वी पर गिर जाने का शाप दे दिया। ऋषियों के ऐसा कहते ही लिंग पृथ्वी पर गिर कर अग्नि के समान जलने लगा। कभी स्थिर न होकर इधर-उधर विचरण करने लगा। उसके ताप से सम्पूर्ण लोक व्याकुल हो गए और ऋषिगण उपाय के लिए ब्रह्मा जी के पास गए। ब्रह्मा जी ने शिव का विरोध करने के लिए ऋषियों की निन्दा की ओर लिंग की स्थिरता के लिए देवी पार्वती की आराधना करने की उन्हें सलाह दी।

ऋषियों ने शास्त्रोक्त विधि से शिवजी की आराधना-पूजा की और शिवजी ने प्रसन्न होकर ऋषियों को बताया कि वे पार्वती की आराधना करें, जिससे कि वे प्रसन्न होकर योनिरूप में मेरे लिंग को धारण करे। इससे ही आप सब लोगों को सुख की प्राप्ति हो सकती है। ऋषियों ने पार्वती की प्रार्थना की और उन्हें प्रसन्न कर विधि-अनुसार ज्योतिर्लिंग की स्थापना की। योनिरूप पार्वती में स्थापित

शिव की लिंगरूप उस प्रतिमा का 'हाटकेश' नाम प्रसिद्ध हुआ, जिस-केपूजन से सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

५. अन्धकेश्वर महादेव

समुद्रवासी अन्धकासुर ने त्रिलोकी को अपने वश में करके जब देवताओं को कष्ट देना आरम्भ किया तो सब देवता दुःख से व्याकुल होकर शिवजी की शरण में जाकर उनकी बड़ी स्तुति करने लगे। शिवजी ने अन्धकासुर को मारने का वचन देकर देवताओं को उस पर चढ़ाई करने का आदेश दिया। शिवजी अपने गणों के साथ स्वयं भी अन्धक के गर्त पर आ गए। अन्धक अपने गर्त से निकल कर भीषण युद्ध करने लगा। देवों ने शिवजी से प्राप्त बल की सहायता से अन्धक को मार भगाया। अन्धक ज्यों ही अपने गर्त पर आया, त्यों ही पहले से सतर्क शिवजी ने अपने त्रिशूल से उसका शिरच्छेद कर कर दिया। अन्धक भगवान् शंकर का स्तुतिगान करने लगा, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे वर माँगने को कहा तो उसने शिवजी से उनकी वहीं स्थिरता माँगी, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। इन्हीं महादेव जी का नाम ही 'अन्धकेश्वर महादेव' पड़ा। छः मास तक अन्धकेश ज्योतिर्लिंग की पूजा करने से निस्सन्देह मनुष्य के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

६. बटुकेश्वर महादेव

शिवभक्त दधीचि ब्राह्मण की पुत्रवधू दुकूला बड़े दुष्ट स्वभाव की थी, जिसके कारण यह परिवार किसी ग्राम में टिक नहीं पाता था। एक समय दधीचिपुत्र सुदर्शन ने शिवरात्रि को अपनी पत्नी के साथ सम्भोग किया और विना स्नान किए हो उसने शिवपूजा की। इससे रुष्ट होकर शिवजी ने उसे जड हो जाने का शाप दिया। इस पर दुःखी होकर दधीचि ने पार्वती जी की स्तुति की, जिस पर प्रसन्न होकर भगवती ने उसे अपना पुत्र बना लिया। पार्वती जी के अनुरोध पर शिवजी ने अपने चारों पुत्रों को वटुक रूप में चार दिशाओं में अभिषिक्त कर दिया और यह विधान कर दिया कि वटुक की पूजा के बिना शिवपूजा असफल होगी। इस प्रकार शिवजी चारों दिशाओं में वटुकेश्वर महादेव के रूप में अवस्थित हैं।

७. सोमेश्वर महादेव

चन्द्रमा ने दक्ष की सत्ताईस पुत्रियों से विवाह करके एकमात्र रोहिणी में इतनी आसक्ति और इतना अनुराग दिखाया कि अन्य

छब्बीस अपने को उपेक्षित और अपमानित अनुभव करने लगीं। उन्होंने अपने पति से निराश होकर अपने पिता से शिकायत की तो पुत्रियों की वेदना से पीड़ित दक्ष ने अपने दामाद चन्द्रमा को समझाने-बुझाने का दो-दो बार प्रयास किया, परन्तु विफल हो जाने पर उसने चंन्द्रमा को 'क्षयी' होने का शाप दे दिया।

देवता लोग चन्द्रमा की व्यथा से व्यथित होकर ब्रह्मा जी के पास आकर उनसे शापनिवारण का उपाय पूछने लगे। ब्रह्मा जी ने प्रभास क्षेत्र में महामृत्युञ्जय मन्त्र से वृषभध्वज शंकर की उपासना करना एकमात्र उपाय बताया। चन्द्रमा के छः मास तक शिवपूजा करने पर शंकर जी प्रकट हुए और चन्द्रमा को एक पक्ष में प्रतिदिन उसकी एक-एक कला नष्ट होने और दूसरे पक्ष में प्रतिदिन बढ़ने का उन्होंने वर दिया। देवताओं पर प्रसन्न होकर उस क्षेत्र की महिमा बढाने के लिए और चन्द्रमा (सोम) के यश के लिए सोमेश्वर नाम से शिवजी वहाँ अवस्थित हो गए। देवताओं ने उस स्थान पर सोमेश्वर कुण्ड की स्थापना की। इस कुण्ड में स्नान कर सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन-पूजा से सब पापों से निस्तार और मुक्ति की प्राप्तिहो जाती है।

८. मल्लिकार्जुन महादेव

कुमार कात्तिकेय पृथ्वी परिक्रमा करके जब कैलाश पर लौटे तो नारद जी से गणेश के विवाह का वृत्त सुनकर रुष्ट हो गए और माता-पिता के मना करने पर भी उन्हें प्रणाम कर क्रौंच पर्वत पर चले गए। पार्वती के दुःखित होने और समझाने पर भी धैर्य न धारण करने पर शंकर जी ने देवर्षियों को कुमार को समझाने के लिए भेजा परन्तु वे निराश ही लौट आए। इस पर पुत्रवियोग से व्याकुल पार्वती के अनुरोध कर पार्वती के साथ शिवजी स्वयं वहाँ गए परन्तु अपने माता-पिता का आगमन सुनकर कुमार क्रौंच पर्वत को छोड़कर तान योजना और दूर चला गया। तब वहाँ पुत्र के न मिलने पर वात्सल्य से व्याकुल शिव-पार्वती के उसकी खोज में अन्य पर्वतों पर जाने से पहले उन्होंने वहाँ अपनी ज्योति स्थापित कर दी। उसी दिन से मल्लिकार्जुन क्षेत्र के नाम से वह ज्योर्लिलिंग मल्लिकार्जुन महादेव कहलाया। अमावस्या के दिन शिवजी और पूर्णिमा के दिन पार्वती जी आज भी वहाँ आते रहते हैं। इस ज्योतिर्लिंग के दर्शन से धन-धान्य की वृद्धि के साथ, प्रतिष्ठ, आरोग्य और अन्य मनोरथों की भी प्राप्ति होती है।

६. महाकालेश्वर महादेव

अवन्तीवासी एक ब्राह्मण के शिवोपासक चार पुत्र थे। ब्रह्मा से वरप्राप्त दुष्ट दैत्यराज दूषण ने अवन्ती में आकर वहाँ के निवासी वेदज्ञ ब्राह्मणों को बड़ा कष्ट दिया परन्तु शिवजी के ध्यान में लीन ब्राह्मण तनिक भी खिन्न नहीं हुए। दैत्यराज ने अपने चार अनुचर दैत्यों को नगरी को घेरकर वैदिक धर्मानुष्ठान न होने देने का आदेश दिया। दैत्य के उत्पात से पीड़ित प्रजा ब्राह्मणों के पास आई। ब्राह्मण प्रजाजनों को धीरज बँधा कर शिवजी की पूजा में तत्पर हुए। इसी समय ज्यों ही दूषण दैत्य अपनी सेना सहित उन ब्राह्मणों पर झपटा, त्यों ही पार्थिव मूर्ति के स्थान पर एक भयानक शब्द के साथ धरती फटी और वहाँ पर गड्ढा हो गया। उसी गर्त से शिवजी एक विराट् रूपधारी महाकाल के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने उस दुष्ट को ब्राह्मणों के निकट न आने को कहा परन्तु उस दुष्ट दैत्य ने शिवजी की आज्ञा न मानी। फलतः शिवजी ने अपनी एक ही हुंकार से उस दैत्य को भस्म कर दिया, शिवजी को इस रूप में प्रकट हुआ देखकर ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि देवों ने आकर भगवान् शंकर की स्तुति-वन्दना की।

महाकालेश्वर की महिमा अवर्णनीय है। उज्जयिनी नरेश चन्द्र-सेन शास्त्रज्ञ होने के साथ-साथ पक्का शिवभक्त भी था। उसके मित्र महेश्वर जी के गण मणिभद्र ने उसे एक सुन्दर चिन्तामणि प्रदान की। चन्द्रसेन कण्ठ में उसे धारण करता तो इतना अधिक तेजस्वी दीखता कि देवताओं को भी ईर्ष्या होती। कुछ राजाओं ने माँगने पर मणि देने से इन्कार करने पर चन्द्रसेन पर चढ़ाई कर दी। अपने को घिरा देख चन्द्रसेन महाकाल की शरण में गया। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उसकी रक्षा का उपाय किया। संयोगवश अपने बालक को गोद में लिए हुए एक ब्राह्मणी भ्रमण करती हुई महाकाल के समीप पहुँची तो वह विधवा हो गई। अबोध बालक ने महाकालेश्वर मंदिर में राजा को शिवपूजन करते देखा तो उसके मन में भी भक्तिभाव उत्पन्न हुआ। उसने एक रमणीय पत्थर को लाकर अपने सूने घर में स्थापित किया और उसे शिवरूप मान उसकी पूजा करने लगा। भजन में लीन बालक को भोजन की सुधि ही न रही। अतः उसकी माता उसे बुलाने गई परन्तु माता के बार-बार बुलाने पर भी बालक ध्यानमग्न मौन बैठा रहा। इस पर उसकी शिवमाया विमोहित माता ने शिवलिंग को दूर फेंक कर उसकी पूजा नष्ट कर दी। माता के इस

कृत्य पर दुःखी होकर वह शिवजी का स्मरण करने लगा। शिवजी की कृपा होते देर न लगी, गोपी पुत्र द्वारा पूजित पाषाण रत्नजटित ज्योतिर्लिंग के रूप में आविर्भूत हो गया। शिवजी की स्तुति-वन्दना के उपरान्त जब बालक घर को गया तो उसने देखा कि उसकी कुटिया का स्थान सुविशाल भवन ने ले लिया है। इस प्रकार शिवजी की कृपा से वह बालक विपुल धन-धान्य से समृद्ध होकर सुखी जीवन बिताने लगा।

इधर विरोधी राजाओं ने जब चन्द्रसेन के नगर पर अभियान किया तो वे आपस में ही एक-दूसरे से कहने लगे कि राजा चन्द्रसेन तो शिवभक्त है और यह उज्जयिनी महाकाल की नगरी है, जिसे जीतना असम्भव है। यह सब विचार कर उन राजाओं ने चन्द्रसेन से मित्रता कर ली और सबने मिलकर महाकाल की पूजा की।

इसी समय वहाँ वानराधीश हनुमान् जी प्रकट हुए और उन्होंने प्रणत राजाओं को बताया कि शिवजी के बिना मनुष्यों को गति देने वाला अन्य कोई नहीं है। शिवजी तो बिना मन्त्रों से की गई पूजा से भी प्रसन्न हो जाते हैं। गोपीपुत्र का उदाहरण तुम्हारे सामने ही है। इसके उपरान्त हनुमान् जी चन्द्रसेन को स्नेह और कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर वहीं अन्तर्धान हो गए।

जीवन पर्यन्त महाकालेश्वर की सेवा करके गोपीपुत्र और राजा चन्द्रसेन दोनों ही सुख भोग कर अन्त में मोक्ष को प्राप्त हुए।

१०. ओंकारेश्वर महादेव

एक बार नारद जी ने गोकर्ण तीर्थ में जाकर गोकर्ण नामक शिवजी की पूजा की और पुनः विन्ध्याचल पर्वत पर जाकर वहाँ भी श्रद्धापूर्वक शिवजी का पूजन किया। इस पर गर्वोन्मत्त विन्ध्य नारद जी के समक्ष उपस्थित हो अपने को सर्वश्रेष्ठ बतलाने लगा। नारद जी ने उसके दर्पदलन के लिए उसे कहा कि सुमेरु के समक्ष तुम्हारी कोई गणना नहीं क्योंकि उसकी तो देवताओं में गणना है। यह सुनकर विन्ध्य सुमेरु से भी उच्च पद पाने के लिए शंकर जी का शरणागत होकर, ओंकार नामक शिव की पार्थिव मूर्त्ति बनाकर उनकी पूजा करने लगा। विन्ध्य के कठोर तप से प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हुए और उससे वर माँगने का अनुरोध करने लगे। विन्ध्य ने शिवजी से अपनी बुद्धि से मनोवाञ्छित कार्यों को सिद्ध कर सकने का वर माँगा। इस पर शिवजी सोचने लगे कि यह तो दूसरों के लिए

दुखद वर की इच्छा करता है। अब ऐसा कुछ करना चाहिए कि अशुभ वरदान दूसरों के लिए सुखद हो जाए। यह विचार कर शिवजी ने अपनी वहाँ स्थिति की। वे ओंकार और प्रणव नामों से सर्वदा के लिए वहाँ स्थिर हो गए। यह ज्योतिर्लिंग भक्तों के अभीष्टदायक भुक्ति तथा मुक्तिदायक है।

११. केदारेश्वर महादेव

नर-नारायण जब बद्रिका ग्राम में जाकर पार्थिव पूजा करने लगे तो उनसे प्रार्थित शिवजी वहाँ प्रकट हो गए। कुछ समय पश्चात् एक दिन शिवजी ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा तो नर-नारायण ने लोक कल्याण की कामना से उनसे स्वयं अपने स्वरूप से पूजा के निमित्त इस स्थान पर सर्वदा स्थित रहने की प्रार्थना की। उन दोनों की इस प्रार्थना पर हिमाश्रित केदार नामक स्थान में साक्षात् महेश्वर ज्योति-स्वरूप हो स्वयं स्थित हुए और वहाँ उनका केदारेश्वर नाम पड़ा।

केदारेश्वर के दर्शन से स्वप्न में भी दुःख प्राप्त नहीं होता। शंकर (केदारेश्वर) का पूजन कर पाण्डवों का सब दुःख जाता रहा। बदरी-केदार का दर्शन-पूजन आवागमन के बन्धन से मुक्ति दिलाता है। केदारेश्वर में दान करने वाले शिवजी के समीप जाकर उनके रूप हो जाते हैं।

१२. भीमेश्वर महादेव

कुम्भकर्ण और कर्कटी से उत्पन्न भीम नामक एक बड़ा ही वीर राक्षस था, जो सब प्राणियों को दुःख देने वाला और धर्म का नाश करने वाला था। उसने अपनी माँ से जब अपने पिता और निवास आदि के सम्बन्ध में पूछा तो उसने बताया कि तेरा पिता लंकापति रावण का भाई कुम्भकर्ण था, जिसे रामचन्द्र जी ने मार डाला। मैंने अभी तक लंका नहीं देखी। तेरा पिता मुझे यहीं पर्वत पर मिला था और उसके द्वारा मैं तुझे उत्पन्न करके यहीं रह गई। मेरे पति के मारे जाने पर तो मायका ही मेरा एकमात्र सहारा रह गया। मेरे माता-पिता—पुष्कसी और कर्कट—जब अगस्त्य ऋषि को खाने गए तो उसने अपने तप के तीव्र प्रभाव से उन्हें भस्म कर दिया।

यह सब सुनकर वह हरि समेत देवताओं से बदला लेने को आतुर हो उठा। उसने कठोर तप का आश्रय लिया और ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर अपार बलशाली होने का वर प्राप्त कर लिया। इस बल से उसने

इन्द्र व विष्णु समेत सभी देवताओं को जीत कर अपने आधीन कर लिया। इसके उपरान्त उसने शिवजी के महान् भक्त कामरूपेश्वर का सर्वस्व हरण करके उसे जेल में डाल दिया। कामरूपेश्वर जेल में भी विधिपूर्वक और नियमित रूप से शिवपूजन करता रहा और उसकी पत्नी भी शिवाराधन में निरत रही। इधर ब्रह्मा, विष्णु आदि को साथ लेकर देवता भगवान् शंकर की सेवा में उपस्थित होकर उस दुष्ट दैत्य से परित्राण के लिए प्रार्थना करने लगे। शिवजी ने देवों को आश्वासन देकर उन्हें विदा किया।

भीम को किसी ने कह दिया कि कामरूपेश्वर तो उसके मारण का अनुष्ठान कर रहा है। इस पर वह जेल में राजा के पास पहुँच कर उससे उसकी पूजादि के सम्बन्ध में पूछने लगा। राजा के सत्य-वचनों पर वह दुष्ट शिवजी की बहुत प्रकार से अवज्ञा करके उससे शिवजी के स्थान पर स्वयं भीम को पूजने को कहने लगा। कामरूपेश्वर के प्रतिरोध करने पर भीम ने तलवार से पार्थिव लिंग पर प्रहार किया। उसका खड्ग वहाँ तक पहुँचा भी नहीं था कि शिवजी प्रकट हो गए। फिर धनुष बाण, तलवार, परशु, परिघ और त्रिशूल आदि से दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्ततः वहाँ आए नारद जी के अनुरोध पर शिवजी ने फूंक मार कर उस दुष्ट दैत्य भीम को भस्म कर दिया और इस प्रकार देवों को कष्ट विमुक्त किया। इसके पश्चात् वहाँ उपस्थित देवताओं और मुनियों ने शिवजी से वहाँ पर निवास करने की प्रार्थना की और शिवजी, लोक कल्याण की दृष्टि से वहाँ भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंग में उपस्थित हुए।

१३. विश्वेश्वर महादेव

निर्विकार, चैतन्य एवं सनातन ब्रह्म ने प्रथम निर्गुण से सगुण शिव रूप धारण किया और पुनः शिव शक्ति रूप से पुरुष-स्त्री भेद से दो रूप धारण किए। प्रकृति पुरुष (शक्ति-शिव) को भगवान् शिव ने उत्तम सृष्टि के लिए आकाशवाणी द्वारा तप करने का आदेश दिया। उन्होंने तप के लिए उत्तम स्थान निर्देश की जब प्रार्थना की तो निर्गुण शिव ने अपनी ही प्रेरणा से समस्त तेजसम्पन्न अत्यन्त शोभायमान पंचक्रोशी नगरी का निर्माण किया, वहाँ स्थित हो विष्णु जी ने बहुत काल तक शिवजी का ध्यान करते हुए तप किया, तब उनके परिश्रम से वहाँ अनेक जलधाराएँ प्रकट हो गईं। इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर विस्मित होते हुए विष्णु जी ने ज्यों ही सिर हिलाया,

दुखद वर की इच्छा करता है। अब ऐसा कुछ करना चाहिए कि अशुभ वरदान दूसरों के लिए सुखद हो जाए। यह विचार कर शिवजी ने अपनी वहाँ स्थिति की। वे ओंकार और प्रणव नामों से सर्वदा के लिए वहाँ स्थिर हो गए। यह ज्योतिर्लिंग भक्तों के अभीष्टदायक भुक्ति तथा मुक्तिदायक है।

११. केदारेश्वर महादेव

नर-नारायण जब बद्रिका ग्राम में जाकर पार्थिव पूजा करने लगे तो उनसे प्रार्थित शिवजी वहाँ प्रकट हो गए। कुछ समय पश्चात् एक दिन शिवजी ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा तो नर-मारायण ने लोक कल्याण की कामना से उनसे स्वयं अपने स्वरूप से पूजा के निमित्त इस स्थान पर सर्वदा स्थित रहने की प्रार्थना की। उन दोनों की इस प्रार्थना पर हिमाश्रित केदार नामक स्थान में साक्षात् महेश्वर ज्योति-स्वरूप हो स्वयं स्थित हुए और वहाँ उनका केदारेश्वर नाम पड़ा।

केदारेश्वर के दर्शन से स्वप्न में भी दुःख प्राप्त नहीं होता। शंकर (केदारेश्वर) का पूजन कर पाण्डवों का सब दुःख जाता रहा। बदरी-केदार का दर्शन-पूजन आवागमन के बन्धन से मुक्ति दिलाता है। केदारेश्वर में दान करने वाले शिवजी के समीप जाकर उनके रूप हो जाते हैं।

१२. भीमेश्वर महादेव

कुम्भकर्ण और कर्कटी से उत्पन्न भीम नामक एक बड़ा ही वीर राक्षस था, जो सब प्राणियों को दुःख देने वाला और धर्म का नाश करने वाला था। उसने अपनी माँ से जब अपने पिता और निवास आदि के सम्बन्ध में पूछा तो उसने बताया कि तेरा पिता लंकापति रावण का भाई कुम्भकर्ण था, जिसे रामचन्द्र जी ने मार डाला। मैंने अभी तक लंका नहीं देखी। तेरा पिता मुझे यहीं पर्वत पर मिला था और उसके द्वारा मैं तुझे उत्पन्न करके यहीं रह गई। मेरे पति के मारे जाने पर तो मायका ही मेरा एकमात्र सहारा रह गया। मेरे माता-पिता—पुष्कसी और कर्कट—जब अगस्त्य ऋषि को खाने गए तो उसने अपने तप के तीव्र प्रभाव से उन्हें भस्म कर दिया।

यह सब सुनकर वह हरि समेत देवताओं से बदला लेने को आतुर हो उठा। उसने कठोर तप का आश्रय लिया और ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर अपार बलशाली होने का वर प्राप्त कर लिया। इस बल से उसने

इन्द्र व विष्णु समेत सभी देवताओं को जीत कर अपने आधीन कर लिया। इसके उपरान्त उसने शिवजी के महान् भक्त कामरूपेश्वर का सर्वस्व हरण करके उसे जेल में डाल दिया। कामरूपेश्वर जेल में भी विधिपूर्वक और नियमित रूप से शिवपूजन करता रहा और उसकी पत्नी भी शिवाराधन में निरत रही। इधर ब्रह्मा, विष्णु आदि को साथ लेकर देवता भगवान् शंकर की सेवा में उपस्थित होकर उस दुष्ट दैत्य से परित्राण के लिए प्रार्थना करने लगे। शिवजी ने देवों को आश्वासन देकर उन्हें विदा किया।

भीम को किसी ने कह दिया कि कामरूपेश्वर तो उसके मारण का अनुष्ठान कर रहा है। इस पर वह जेल में राजा के पास पहुँच कर उससे उसकी पूजादि के सम्बन्ध में पूछने लगा। राजा के सत्य-वचनों पर वह दुष्ट शिवजी की वहुत प्रकार से अवज्ञा करके उससे शिवजी के स्थान पर स्वयं भीम को पूजने को कहने लगा। कामरूपेश्वर के प्रतिरोध करने पर भीम ने तलवार से पार्थिव लिंग पर प्रहार किया। उसका खड्ग वहाँ तक पहुँचा भी नहीं था कि शिवजी प्रकट हो गए। फिर धनुष वाण, तलवार, परशु, परिघ और त्रिशूल आदि से दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्ततः वहाँ आए नारद जी के अनुरोध पर शिवजी ने फूंक मार कर उस दुष्ट दैत्य भीम को भस्म कर दिया और इस प्रकार देवों को कष्ट विमुक्त किया। इसके पश्चात् वहाँ उपस्थित देवताओं और मुनियों ने शिवजी से वहाँ पर निवास करने की प्रार्थना की और शिवजी, लोक कल्याण की दृष्टि से वहाँ भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंग में उपस्थित हुए।

१३. विश्वेश्वर महादेव

निर्विकार, चैतन्य एवं सनातन ब्रह्म नें प्रथम निर्गुण से सगुण शिव रूप धारण किया और पुनः शिव शक्ति रूप से पुरुष-स्त्री भेद से दो रूप धारण किए। प्रकृति पुरुष (शक्ति-शिव) को भगवान् शिव ने उत्तम सृष्टि के लिए आकाशवाणी द्वारा तप करने का आदेश दिया। उन्होंने तप के लिए उत्तम स्थान निर्देश की जब प्रार्थना की तो निर्गुण शिव ने अपनी ही प्रेरणा से समस्त तेजसम्पन्न अत्यन्त शोभायमान पंचक्रोशी नगरी का निर्माण किया, वहाँ स्थित हो विष्णु जी ने वहुत काल तक शिवजी का ध्यान करते हुए तप किया, तब उनके परिश्रम से वहाँ अनेक जलधाराएँ प्रकट हो गईं। इस अद्भुत दृश्य को देखकर विस्मित होते हुए विष्णु जी ने ज्यों ही सिर हिलाया,

त्यों ही उनके कान से एक मणि वहाँ गिर पड़ी, जिससे उस स्थान का नाम ही मणिकर्णिका तीर्थ पड़ गया। मणिकर्णिका के उस पाँच कोस विस्तार वाले सम्पूर्ण जल को शिवजी ने अपने त्रिशूल पर धारण किया, जिसमें विष्णु जी अपनी स्त्री सहित सो गए और शिव-जी की आज्ञा से उनके नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा जी ने शिवजी की आज्ञा से इस अद्‌भुत सृष्टि की रचना की, जिसमें पचास करोड़ योजन विस्तृत चौदह लोक हैं। अपने ही कर्मों में बंधे प्राणियों के उद्धार के विचार से शिवजी ने पंचक्रोशी नगरी को सम्पूर्ण लोकों से पृथक् रखा। इसी नगरी में शिवजी ने अपने मुक्तिदायक ज्योर्तिलिंग को स्वयं स्थापित किया, जो इसे कदापि नहीं छोड़ सकता। शिवजी ने पुन: उसी काशी को अपने त्रिशूल सें उतार कर मृत्युलोक में स्थापित कर दिया, जो ब्रह्मा का दिन पूरा होने पर नष्ट नहीं होती और प्रलय में शिवजी उसे पुन: अपने त्रिशूल पर धारण किए रहते हैं। काशी में अविमुक्तेश्वर लिंग सदा स्थिर रहता हैं। कहीं भी गति न पाने वाले प्राणियों की वाराणसी पुरी में गति हो जाती है। महा-पुण्यदायक पंचक्रोशी नगरी कोटि-कोटि घोरतम पातकों की नाशिका और संयुज्य नामक उत्तम मुक्ति की दायिका है। यही कारण है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा प्रशंसित इस नगरी में देवता भी मृत्यु की कामना करते हैं। भीतर से सत्त्वगुणी और वाहर से तमोगुणी रुद्र की प्रार्थना पर पार्वती सहित विश्वनाथ भगवान् शंकर ने इस नगरी को अपना स्थायी निवास वनाया है।

काशी नगरी मोक्ष की प्रकाशिका और ज्ञानदात्री है। यहाँ के निवासी किसी भी तीर्थादि की यात्रा किए विना ही मुक्ति के भागी हो जाते हैं। इस काशी में मरने वाला प्रत्येक व्यक्ति—वालक, युवा, वृद्ध, सधवा, विधवा, पवित्र, अपवित्र, प्रसूता, असंसृता, स्वेदज, अण्डज, उद्‌भिज, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रादि—मोक्ष को प्राप्त करता है—इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं। मनुष्य चाहे भोजन करता हो, सोता हो अथवा अन्य क्रियाओं को करता हो, अवि-मुक्तेश्वर के पास प्राणों को छोड़ने पर अवश्य ही मोक्ष का भागी वनता है। इस क्षेत्र में किया सत्कर्म सहस्र कल्पों में भी क्षय को प्राप्त नहीं होता। शुभ तथा अशुभ प्रकार से मनुष्य का जन्म होता है, काशी-वास से दोनों के नाश होने पर निश्चय ही मुक्ति होती है।

कर्मकाण्ड के वन्धन में डालने वाले कर्म तीन प्रकार के कहे गए

हैं :—

(१) संचित—पूर्वजन्म में किए गए शुभ-अशुभ कर्म अपने एकत्रित रूप में।

(२) क्रियमाण—वर्तमान जन्म में किए जा रहे शुभ-अशुभ कर्म।

(३) प्रारब्ध—शरीर के फलस्वरूप भोगे जाने वाले कर्म।

प्रारब्ध कर्म का नाश एकमात्र भोग से और संचित तथा क्रियमाण का विनाश पूजन आदि उपाय से होता है। काशी में जाकर गंगास्नान और विश्वनाथ के दर्शन-पूजन से संचित तथा क्रियामाण कर्मों का निश्चित रूप से नाश हो जाता है। सत्य तो यह है कि काशी में प्राणत्याग करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता। इस प्रकाश विश्वनाथ की काशी की महिमा अपरम्पार है।

१४. त्र्यम्बकेश्वर महादेव

अहिल्या के पति गौतम दक्षिण ब्रह्म पर्वत पर तप करते थे। वहाँ एक समय सौ वर्षों तक पानी न बरसने से पृथ्वी का गीलापन जाता रहा। जीवों के प्राणाश्रय जल के अभाव में वहाँ के निवासी मुनि तथा पशु-पक्षी आदि उस स्थान को छोड़कर भाग चले। ऐसी घोर अनावृष्टि को देखकर गौतम जी ने छः मास तक प्राणायाम द्वारा मांगलिक तप किया। जिससे प्रसन्न होकर प्रकट हुए वरुण से उन्होंने जल का वरदान माँगा। वरुण देव के कहने पर गौतम ने हाथ भर गहरा गड्ढा एक खोदा, जिसमें वरुण जी की दिव्यशक्ति से जल भर आया। वरुण जी ने कहा कि तुम्हारे पुण्य प्रताप से यह गड्ढा अक्षय जल वाला तीर्थ होगा, तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगा और यज्ञ, दान, तप, हवन, श्राद्ध और देवपूजा करने वाले को विपुल फल देने वाला होगा। उस जल को पाकर वहाँ के ऋषियों को बड़ा सुख हुआ और सूखा हरियाली में परिवर्तित हो गया। अब ऋषियों ने यज्ञ के लिए वाञ्छित व्रीहि का उत्पादन आरम्भ किया।

एक वार गौतम के शिष्य उस गड्ढे से जल लेने गए तो उसी समय वहाँ अन्यान्य ऋषियों की पत्नियाँ भी जल लेने आ पहुँचीं और पहले जल लेने का हठ करने लगीं। गौतम के शिष्य गौतम-पत्नी को बुला लाए और उसने हस्तक्षेप करके शिष्यों को ही पहले जल लेने की व्यवस्था की। ऋषि-पत्नियों ने इसे अपना अपमान समझा और नमक-मिर्च लगाकर अपने पतियों को भड़काया। उन ऋषियों ने

गौतम से इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए गणेश जी का तप किया। गणेश जी ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा। इस पर ऋषियों ने गौतम की अनिष्ट कामना करते हुए उसे वहाँ से अपमानित करके निकालने की शक्ति देने का वर माँगा। गणेश जी ने परोपकारी महात्मा गौतम—जिन्होंने जल लाकर उन ऋषियों का कष्ट दूर किया था—के प्रति दुर्भावना न रखने का ही अनुरोध किया परन्तु ऋषियों के हठ पकड़ने पर गणेश जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और साथ ही उन्हें परोपकारी महात्मा गौतम को कष्ट देने के दुष्परिणाम को भुगतने के लिए प्रस्तुत रहने की चेतावनी भी दे दी।

एक दिन गौतम जी जब व्रीहि लेने गए तो एक दुबली-पतली गाय खड़ी थी। गौतम ने जौ की लकड़ी ज्यों ही गाय को हटाने के लिए मारी त्यों ही गाय वहाँ गिरकर ढेर हो गई। बस, फिर क्या था। ऋषियों ने गौ हत्या का पाप गौतम के मत्थे पर मढ़कर उसे बहुत अपमानित किया और उस स्थान को दुःखताप से बचाने के लिए उसे वहाँ से चले जाने को कहा। गौतम जी अत्यन्त दुःखी हुए और आत्म-ग्लानि से वह स्थान छोड़कर चले गए।

गौतम जी ने गोहत्या के पाप की निवृत्ति के लिए ऋषियों द्वारा बताए गए उपाय—अपने तप से गंगा जी को लाकर स्नान करना और कोटि संख्या में पार्थिव लिंगों को बनाकर शिवजी की पूजा करना—अपनाया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे बताया कि वह तो शुद्धान्तः-करण वाला महात्मा है। उसके साथ अन्याय हुआ है अन्यथा उसने कोई पाप नहीं किया। शिवजी ने गौतम से वर माँगने को कहा तो गौतम ने शिवजी से उसे गंगा देकर संसार का उपकार करने का वर माँगा। शिवजी ने गंगाजी का तत्त्वरूप अवशिष्ट जल मुनि को प्रदान किया। गौतम ने प्राप्त गंगा से अपने को गोहत्या के पाप से मुक्त करने की प्रार्थना की। गंगाजी ने गौतम को पवित्र करने के उपरान्त स्वर्ग चले जाने का निश्चय प्रकट किया परन्तु शिवजी ने कलियुग-पर्यन्त उसे धरती तल पर ही रहने का आदेश दिया तो गंगा ने उनसे प्रार्थना की कि फिर आप भी पार्वती सहित पृथ्वीतल पर निवास करें। संसार के उपकारार्थ शिवजी ने यह स्वीकार कर लिया।

गंगा जी ने शिवजी से पूछा कि उसकी महत्ता का संसार को कैसे पता चलेगा। तब ऋषियों ने कहा कि जब तक बृहस्पति सिंह राशि पर स्थित रहेंगे, तब तक हम सब यहाँ तुम्हारे तट पर निवास करेंगे

और नित्य तीनों काल तुम में स्नान कर शिवजी का दर्शन करते रहेंगे। इससे हमारे पाप छूट जाएँगे।

यह सुनकर गंगा जी और शिवजी वहाँ स्थित हुए। गंगा गौतमी नाम से प्रसिद्ध और लिंग त्र्यम्बक नाम से विख्यात हुआ।

गंगा जी का प्रथम प्रवाह गूलर की शाखा जैसा था। इस स्थान का नाम गंगा-द्वार पड़ा और इसमें सर्वप्रथम गौतम जी ने ही स्नान किया। जब अन्यान्य ऋषि-मुनि स्नान के लिए आए तो गंगा अदृश्य हो गई। गौतम ने गंगा जी की बहुत अनुनय-विनय की परन्तु उस ने कृतघ्न ऋषियों को दर्शन देना स्वीकार न किया। इस पर गौतम ने पुनः प्रार्थना की तो गंगा ने दण्ड के रूप में इस पर्वत की सौ बार परिक्रमा करने पर ही ऋषियों को दर्शन देना स्वीकार किया। ऋषियों ने वैसा किया और अपने अपराध के लिए गौतम से क्षमा प्रार्थना की इसके उपरान्त ही उन्हें गंगा का दर्शन और स्नान सुलभ हुआ।

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा भी मिलता है कि क्रुद्ध गौतम जी ने उन ऋषियों को शाप दिया था, जिससे वे नाराज होकर काञ्चीपुरी में आकर रहने लगे और शिवभक्ति से रहित हो गए। उनके पुत्र-पौत्रादि भी शिवभक्ति से विहीन होकर दुष्ट दानव बन गए। पुनः इसी स्थान पर गंगा जी में स्नान कर त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग का आराधन करने से ही उनका उद्धार हुआ।

१५. वैद्यनाथ महादेव

एक बार राक्षसपति रावण ने कैलाश पर्वत पर जाकर शिवजी को प्रसन्न करने के लिए घोर तप किया। शीतातप वर्षाग्नि के कष्ट सहन करने पर भी जब शिवजी प्रसन्न न हुए तो रावण ने अपने सिर काट-काटकर शिवलिंग पर चढ़ाने प्रारम्भ कर दिए। नौ सिर चढ़ा चुकने पर जब वह दसवाँ सिर चढ़ाने को काटने लगा तो शिवजी प्रकट हो गए और उसके सिरों को पूर्ववत् करके उससे वर माँगने को कहने लगे। इस पर रावण ने कहा कि मैं आपको अपनी लंका में ले जाना चाहता हू। भक्तवत्सल शंकर ने उद्विग्न होने पर भी भक्त की इच्छा को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा कि तुम मेरे लिंग को भक्तिसहित अपने घर ले जाओ पर ध्यान रखना कि यदि तुम कहीं बीच में इस लिंग को धरती पर रख दोगे तो यह वहीं स्थिर हो जाएगा।

रावण शिवलिंग को लेकर अपने घर चला तो मार्ग में उसे लघु-

शंका लगी। उसने एक गोप को लिंग थमाया और स्वयं लघुशंका करने चल दिया। गोप लिंग के भार को सँभाल न सका और उसने उसे धरती पर धर दिया। बस, शिवजी वहीं स्थिर हो गए और उनका नाम वैद्यनाथेश्वर पड़ा।

दुष्टात्मा रावण के पास शिवजी के निवास के समाचार से देवताओं को दुःख हुआ। उनके अनुरोध से नारद जी रावण के पास जाकर उसके तप की प्रशंसा करते हुए बोले—तुमने शिवजी पर विश्वास करने की भारी भूल की है। शिवजी के वचन को सत्य मानना गलती है। तुम उनके पास जाकर उनका अहित करके अपना कार्य सिद्ध करो। तुम वहाँ जाकर कैलाश को उखाड़ डालो। उसके उखाड़ने की सफलता ही तुम्हारी लक्ष्यसिद्धि की सूचक होगी। नारद जी की बातों में आकर रावण ने वैसा ही किया, जिससे रुष्ट होकर शिवजी ने रावण को शाप दे दिया कि तेरी भुजाओं के अहंकार का दमन करने वाली शक्ति शीघ्र ही आविर्भूत होगी। नारद जी ने अपनी सफलता की सूचना देकर देवों को निश्चिन्त और प्रसन्न किया। इधर रावण प्रसन्न होकर घर आया और शिवजी की माया से विमोहित उस दुष्ट ने सारे जगत् को अपने आधीन करने का निश्चय कर लिया। उसके दम्भ के विनाश के लिए ही भगवान् को राम-अवतार धारण करना पड़ा।

१६. नागेश्वर महादेव

पश्चिमी समुद्र तट पर सोलह योजन विस्तार वाले एक वन में दारुक और दारुका रहते थे। दारुक के उत्पातों से संत्रस्त ऋषि तथा अन्य लोग और्व मुनि की शरण में गए, जिन्होंने दैत्यों को नष्ट हो जाने का शाप दिया। देवताओं ने उन पर आक्रमण किया तो राक्षस चिन्तित हो उठे। पार्वती द्वारा प्राप्त शक्ति के बल पर दारुका उस वन को आकाश-मार्ग से उड़ा कर समुद्र के बीच ले आई और अब सभी राक्षस निश्चिन्त होकर वहाँ रहने लगे। वे नौका द्वारा समुद्र में जाकर ऋषियों-मुनियों को पकड़कर वन्दी बनाने लगे। एक बार जिन लोगों को उन दुष्टों ने वन्दी वनाया, उनमें एक शिवभक्त सुप्रिय नामक वैश्य भी था। वह विना शिवपूजन किए अन्न-जल ग्रहण नहीं करता था। उसने जेल में भी भगवान् शिव का आराधन-पूजन, भजन-कीर्त्तन प्रारम्भ कर दिया। जेल के रक्षकों ने जब अपने स्वामी को सूचना दी तो उसने अपने सेवकों को उसकी हत्या का आदेश

दिया। इस पर सुप्रिय भगवान् शंकर की प्रार्थना करने लगा। भगवान् शंकर ने प्रकट होकर क्षणमात्र में ही कुटम्त्रियों सहित राक्षसों को मार डाला तथा उस वन को चारों वर्णों के लोगों के निवास के लिए खोल दिया। इधर दारुका को पार्वती ने वर दे रखा था, इसके फलस्वरूप देवी ने उस युग के अन्त में राक्षसी सृष्टि होने और दारुका के शासिका बनने की बात कही, जिसे शिवजी ने स्वीकार कर लिया। फिर वहाँ शिवजी और पार्वती स्थिर हो गए और उनके ज्योतिर्लिंग का नाम नागेश्वर पड़ा तथा पार्वती नागेश्वरी कहलाई।

१७. रामेश्वर महादेव

सीता की खोज में भटकते राम जी की सुग्रीव से मित्रता हुई और उसके विशेष दूत श्री हनुमान जी की सहायता से सीता का पता चला। अब श्रीराम रावण पर अभियान करने के उद्देश्य से वानर-सेना को संगठित कर दक्षिण के खारे समुद्रतट पर पहुँचे और उसे पार करने की चिन्ता करने लगे। शिवभक्त राम जी को चिन्तित देख लक्ष्मण तथा सुग्रीवादि ने बहुत समझाया परन्तु शिवजी द्वारा प्राप्त बल वाले रावण के सम्बन्ध में वे निश्चिन्त न हुए। इस बीच उन्हें प्यास लगी और उन्होंने जल माँगा परन्तु ज्यों ही वे जल पीने लगे त्यों ही उन्हें शिवपूजन न करने की स्मृति जाग उठी और उन्होंने पार्थिव लिंग बनाकर षोडशोचार से विधिवत् शिवजी की आराधना की। राम जी ने बड़ी ही आर्त्तवाणी में श्रद्धापूर्वक शिवजी से प्रार्थना की और उनका उच्च स्वर से जय-जयकार करते हुए नृत्य तथा गल्ल-नाद (मुंह से अगड़ बम-बम शब्द निकालना) किया तो शिवजी प्रसन्न हो राम जी के समक्ष प्रकट हो गए और उनसे वर माँगने को कहने लगे। राम ने प्रकट हुए महेश्वर की बहुत ही प्रेमपूर्वक अर्चना-वन्दना की और उनसे कहा कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो संसार को पवित्र करने और दूसरों के उपकार के लिए आप यहाँ निवास कीजिए। शिवजी ने 'एवमस्तु' कहकर रामेश्वर नाम से अपनी स्थिति की और लिंगरूप होकर रामेश्वर नाम से पृथ्वी में प्रसिद्ध हुए।

शिवजी की कृपा से ही राम जी रावण आदि राक्षसों को मारकर विजयी हुए। रामेश्वर महादेव का जो व्यक्ति दर्शन-पूजन करता है, रामेश्वर शिवलिंग पर दिव्य गंगाजल चढ़ाता है, वह जीवनमुक्त हो जाता है तथा अन्त में कैवल्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

१८. घुश्मेश्वर महादेव

दक्षिण दिशास्थित देव पर्वत पर अपनी पतिपारायणा सुन्दरी पत्नी सुदेहा के साथ भारद्वाज गोत्र वाला सुधर्मा नामक वेदज्ञ ब्राह्मण रहता था। सुदेहा के यहाँ कोई सन्तान नहीं हुई, इस कारण वह अत्यन्त दुःखी रहती थी। वह आए दिन अपने पति से पड़ोसियों के व्यंग्य बाणों तथा अपने अपमान आदि की बात कहती परन्तु तत्त्वज्ञ सुधर्मा इधर ध्यान ही नहीं देते थे। अन्ततः एक दिन आत्मघात की धमकी देकर सुदेहा ने अपने पति को दूसरे विवाह के लिए राजी कर ही लिया। अपनी बहिन घुश्मा को बुलाकर उसका अपने पति से विवाह कर दिया और किसी प्रकार की ईर्ष्या न करने का दोनों को आश्वासन दिया।

समय बीतने पर घुश्मा पुत्रवती हुई और यथासमय उस पुत्र का विवाह हुआ। इधर यद्यपि सुधर्मा और घुश्मा दोनों ही सुदेहा का बहुत आदर करते थे परन्तु उसमें ईर्ष्या-द्वेष इतना परिपक्व और सुदृढ़ हो गया था कि उसने घुश्मा के सोते हुए युवा बालक की हत्या करके शव को समीपस्थ तालाब में फेंक दिया। प्रातःकाल घर में कोहराम मच गया। सुधर्मा पर तो वैधव्य का तुषारापात हो गया, परन्तु व्याकुल होते हुए भी घुश्मा ने नित्य की भाँति शिवपूजन न छोड़ा। वह तालाब पर जाकर एक सौ शिवलिंग बनाकर उन्हें पूजने लगी। ज्यों ही विसर्जन करके वह घर की ओर मुड़ी त्यों ही उसे अपना पुत्र तालाब पर खड़ा मिला और उधर शिवजी ने प्रकट होकर सुदेहा के पाप की पोल खोल दी और उसे मारने को ही वे उद्यत हो गए। घुश्मा ने शिवजी की बहुत स्तुति-वन्दना की और उनसे सुदेहा को दण्डित न करने की प्रार्थना की। इसके अतिरिक्त घुश्मा ने अत्यन्त विनीत शब्दों में शिवजी से विनति की कि यदि वे उस पर प्रसन्न हैं तो संसार की रक्षा के लिए वे सदा वहीं निवास करें। शिवजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और घुश्मेश नाम से अपने शुभ ज्योतिर्मय लिंग द्वारा वहाँ स्थित हो गए।

१९. हरीश्वर महादेव

एक समय जब राक्षस मनुष्यों को कष्ट देने लगे, धर्म का ह्रास हो गया, तब देवता विष्णुजी के पास गए। विष्णु जी ने देवों को यह कह कर आश्वस्त किया कि वे शिवजी का आराधन करके, उनसे प्राप्त शक्ति से दैत्यों का संहार करेंगे। विष्णु जी कैलाश की अधि-

त्यका में जाकर शिवजी का भजन करने लगे। मानसरोवर से उत्पन्न कमलों से शिवजी की पूजा करने लगे। विष्णु ने शिवजी के सहस्र नामों का पाठ आरम्भ किया। वे एक-एक नाम मन्त्र का उच्चारण करते हुए एक-एक कमल शिवजी पर चढ़ाने लगे। विष्णु की सत्यनिष्ठा की परीक्षा के लिए शिवजी ने सहस्र कमलों में से एक कमल को छुपा लिया, जिसे ढूंढने के लिए विष्णु ने त्रिलोकी को छान मारा परन्तु उन्हें वह कमल कहीं नहीं मिला। तब अचलव्रती विष्णु अपना एक नेत्र ही शिवजी पर चढ़ाने लगे। ऐसा होते देख शिवजी प्रकट हो गए और विष्णु से अभिलषित वर माँगने को कहने लगे। विष्णु ने सर्वज्ञ एवं सर्वान्तिर्यामी शिवजी से दैत्यों की कथा और अपनी असमर्थता निवेदित की। यह सुनकर देवाधिदेव महादेव ने विष्णु को अपना तेजपुञ्ज सुदर्शन चक्र दे दिया, जिससे बिना परिश्रम के ही विष्णु दैत्यों के विनाश में सफल हो गए।

उस दिन से विष्णु जी नित्य शिवलिंग की पार्थिव पूजा करके शिवसहस्र नाम का पाठ करने लगे। वे भक्तों को भी इसी का उपदेश करने लगे। शिवजी की पार्थिव पूजा के प्रभाव से ही विष्णु सभी देवों में अग्रगण्य प्रसिद्ध हुए।

२०. व्याघ्रेश्वर महादेव (शिवरात्रिव्रत महिमा)

शिवजी को प्रसन्न करने वाले अनेकानेक व्रतों, पूजाओं, उपवासों, जापों तथा उपासनाओं में शिवरात्रि का व्रत सर्वोत्तम है। शिवरात्रि के व्रत का विधान इस प्रकार से है :—

प्रातःकाल उठ कर स्नानादिक नित्यकर्म से निवृत्त होकर शिवालय में जाकर शिवजी को प्रणाम करे और शिवरात्रि के व्रत करने का संकल्प करे। इसके पश्चात् पूजा की सामग्री सहित ज्योतिर्लिंग को सुन्दर स्थान में स्थापित करे। तीन बार आचमन कर पूजन आरम्भ करे। 'ओं नमः शिवाय' मन्त्र को जपकर और नृत्य, गान, वादन आदि करे। रात्रि जागरण करे। फिर प्रार्थना कर, हाथ जोड़, सिर झुका, कन्धे झुका, बार-बार प्रणाम करता हुआ व्रत समाप्त करे। इस व्रत से आप सन्तुष्ट हों और मुझ पर कृपा करें—यह कह कर शंकर जी पर पुष्पों की अञ्जलि चढ़ावे। फिर यथाशक्ति दान देकर शिवजी का विसर्जन करे और शैव ब्राह्मणों को भोजन द्वारा सन्तुष्ट करके स्वयं भोजन करे।

प्रत्येक प्रहर की पूजा का विधान इस प्रकार से है :—प्रत्येक

प्रहर में पार्थिवलिंग का सविधि पूजन करे। मन्त्रोच्चारण सहित पञ्च-द्रव्य चढ़ावे और फिर जलधारा से अभिषेक करे। १०८ बार—'ओं नमः शिवाय'—पञ्चाक्षरी मन्त्र का जाप करे और इतनी ही बार शिवजी पर जल की धार देवे। इसके उपरान्त पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्यादि से पूजन करे। रात भर अरुणोदय तक भजन-कीर्त्तन करे। प्रातःकाल सूर्योदय होने पर स्नान कर फिर शिवार्चन करे। ब्राह्मणों से आशीर्वाद ले तथा शिवभक्त ब्राह्मणों के भोजन की व्यवस्था करे और शंकर भगवान् से जन्म-जन्मान्तर में अपनी भक्ति देने का वर माँगे।

शिवरात्रि के व्रत करने वाले श्रद्धालु भक्त को त्रयोदशी के दिन एक समय भोजन करना चाहिए और चतुर्दशी के दिन निराहार रहना चाहिए। शिवरात्रि का सारा दिन और सारी रात शिवमन्दिर में शिवपूजन में लगाने चाहिए। लिंगतोभद्र मण्डल और सर्वतोभद्र चक्र का सविधि निर्माण करना चाहिए। व्रत के अन्त में कृत-अकृत पाप, अपराध के क्षमापन की प्रार्थना करनी चाहिए और व्रत के सफल होने का निवेदन करना चाहिए।

शिवरात्रि का यह व्रत अमित फलदाता है। इस सम्बन्ध में एक इतिहास प्रसिद्ध है:—गुरुद्रुह्य नामक एक पापी निषाद नित्य वन में जाकर जीव हत्या तथा चोरी आदि दुष्कर्म करता था। एक बार शिव-रात्रि के दिन वह अपनी गर्भवती स्त्री के साथ भोजन की खोज में निकला परन्तु संयोगवश उसके हाथ कुछ न लगा। निराश होकर वह एक सरोवर के पास एक बेल के वृक्ष की आड़ में छुप कर इस आशा से बैठ गया कि जल पीने आए पशु को मारकर अपनी क्षुधातृप्ति करेगा।

संयोगवश रात्रि के प्रथम प्रहर में एक मृगी जल पीने आई तो भील ने अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। उसके ऐसा करते ही, उस बेल के वृक्ष से जो जल और बेलपत्र वहाँ वृक्ष के नीचे स्थित शिवजी के ज्योतिर्लिंग पर गिरे तो उससे शिवजी का पूजन हो गया। मृगी ने आर्त्तवाणी में निषाद से कहा कि तुम मुझे थोड़ी देर के लिए जाने दो। मैं अपने बच्चों की व्यवस्था करके लौट आऊँगी। मृगी के शपथ-पूर्वक विश्वास दिलाने पर निषाद ने उसे जाने दिया और उसकी प्रतीक्षा में एक प्रहर का जागरण हो गया। दूसरे प्रहर के आरम्भ में उस मृगी को ढूंढती हुई उसकी बहन उस सरोवर पर आ गई। निषाद

ने मृगी पर शर सन्धान करने की ठानी तो बाण के वृक्ष से टकराते ही जल और वेलपत्र वृक्ष के अधःस्थित्त ज्योतिर्लिंग पर गिरे और इससे उसकी पूजा हो गई। इस मृगी को जब निषाद मारने लगा तो इसने भी आतुरवाणी में समय की माँग की और लौट आने का विश्वासपूर्वक वचन दिया। निषाद ने उसे भी अनुमति दे दी और उसकी प्रतीक्षा में उसके द्वितीय प्रहर का जागरण हो गया। तीसरे प्रहण मृगी को ढूँढ़ता हुआ हृष्टपुष्ट मृग वहाँ पहुँचा। निषाद की उस पर बाण छोड़ने की चेष्टा में पुनः वृक्ष के हिलने से ज्योतिर्लिंग पर जल और वेलपत्र गिर पड़े और इस प्रकार से तीसरे प्रहर का पूजन हो गया। मृग ने भी कातर वाणी में निषाद से अपने बच्चों की व्यवस्था के लिए समय देने की माँग की और अपने लौट आने की सौगन्ध खाकर विश्वास दिलाया। उसकी प्रतीक्षा में निषाद का तृतीय प्रहर का जागरण हो गया। घर पहुँचने पर तीनों ने एक-दूसरे को अपनी एक जैसी कहानी सुनाई तो मृग ने मृगियों को बच्चों के लालन पालन का दायित्व सौंप स्वयं निषाद के पास जाने की सोची। मृगियों ने वैधव्य को असह्य दुःख बताते हुए स्वयं भी साथ चलने का आग्रह किया। इधर बच्चे भी माता-पिता के पीछे चलते हुए पहुँच गए। चतुर्थ प्रहर में ज्यों ही निषाद ने धनुष पर बाण चढ़ाया, उसकी इस चेष्टा से स्वतः ही जल और पत्र शिवजी पर चढ़ने से चतुर्थ पूजा हो गई। इससे निषाद का पाप भस्म हो गया और उसे ज्ञानोदय हुआ, जिसके फलस्वरूप मृग-मृगी की सत्यनिष्ठा, बचनबद्धता तथा परोपकार-परायणता को देखकर उसने मृग-मृगी की प्रशंसा करते हुए उन्हें मुक्त कर दिया। निषाद के इस आचरण पर प्रसन्न होकर शिवजी प्रकट हो गए और उससे वर माँगने का अनुरोध करने लगे। उस निषाद ने शिवजी की स्तुति करते हुए लोक कल्याण के लिए उनसे वहाँ स्थिर रहने का वरदान माँगा, जिसे शिवजी ने "तथास्तु" कह दिया। तब से अर्बुदाचल पर्वत पर शिवजी व्याघ्रेश्वर नाम से स्थिर हुए।

इस प्रकार शिवरात्रि को ज्ञान-अज्ञान से किया गया जागरण और पूजन साक्षात् शिवजी का स्वरूपदर्शन कराता है।

शिवजी के कतिपत दिव्य ज्योतिर्लिंगों का परिचय देने के उपरान्त सूत जी ने ऋषियों से कहा कि ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तो धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग के ही दाता हैं। मोक्ष के प्रदाता तो एकमात्र ज्ञान

स्वरूप, अविनाशी, साक्षी, ज्ञानगम्य तथा स्वयं अद्वैत महादेव जी ही

हैं। वे ही चारों—सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य तया सान्निध्य—प्रकार की मुक्ति के प्रदाता हैं। शिवजी ही सृष्टि के आदि में निर्गुण परमात्मा से सगुण शिवजी वनकर आविर्भूत हुए हैं। त्रिगुणातीत शिवजी में और सगुण रुद्र में सुवर्ण और आभूषण के समान आकार भेद को छोड़कर और कोई भेद नहीं। शिवजी ही ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के सहायक हैं। सभी देवों का लय शिवजी में ही होता है और आत्म-कल्याण के इच्छुक सभी मनुष्य तथा देवता उसी शिव का ही ध्यान-भजन करते हैं। शिवजी ही कालों के महाकाल तथा सभी कार्यों के आदि कारण और नियन्ता हैं। वे शिवजी ही सृष्टि-रचना करते हैं और उसमें लिप्त नहीं होते। जिस प्रकार जल में अग्नि आदि तेज की परछाँई का भान होता है, परन्तु वह वास्तव में उसमें प्रविष्ट नहीं है, उसी प्रकार शिव मृष्टि में लिप्त नहीं हैं। जैसे अग्नि प्रत्येक काष्ठ में साक्षात् विद्यमान है परन्तु घर्षक ही उसके प्रत्यक्ष रूप को देख सकताहै, वैसे ही सृष्टि के अणु-प्रत्यणु में व्याप्त शिवजी को साधक ही देख पाता है। जैसे समुद्र, मृत्तिका और स्वर्ण उपाधिभेद से अनेक भाव को प्राप्त होते हैं, वैसे ही शिवजी भी उपाधिभेद से अनेक हैं। जिस प्रकार एक ही सूर्य जल में अनेक दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही शिव भ्रान्ति से अनेक भासते हैं। भ्रान्तिनाश होते ही अभैयबुद्धि हो जाती है। अहंकार से मुक्त, निर्मल और बुद्धिमान् जीव शिव के प्रसाद से शिवत्व को प्राप्त होता है।

यह सारा उपर्युक्त विवरण प्रस्तुत करने के उपरान्त सूत जी बोले—पुण्यात्मा ऋषियो! यह परम पवित्र, दिव्य एवं गुप्त ज्ञान साक्षात् शिवजी ने विष्णु जी को, विष्णु जी ने ब्रह्मा जी को, ब्रह्मा ने सनकादिकों को, सनकादिकों ने नारद को, नारद ने व्यास जी को और वेद व्यास ने सूत जी को और मैंने आपको सुनाया है। इसके श्रवण-मनन से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता, सभी ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

उमा संहिता

ऋषि बोले—हे महात्मा सूत जी ! आप हमें पार्वती सहित शिवजी के दिव्य चरित्र को सुनाने की कृपा करें। सूत जी बोले—हे शौनकादि ऋषियो, महर्षि उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को बताया गया शिवचरित्र मैं आप लोगों को सुनाता हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें।

एक बार वसुदेवसुत श्रीकृष्ण कैलाश पर्वत पर शिवजी की प्रसन्नता के लिए तप करने गए तो वहाँ उन्होंने उपमन्यु को तप करते देखकर उनसे करबद्ध होकर शिवजी का माहात्म्य सुनाने का अनुरोध किया। इस पर उपमन्यु जी बोले—हे कृष्ण जी ! शिवजी को प्रसन्न करने के लिए विष्णु आदि देवों और उनके सम्पूर्ण परिवार को मैंने तप करते देखा है। शिवजी का स्वरूप अनुपम और अवर्णनीय है। उनके पास संसार की सभी वस्तुएँ अपने समग्र रूप में विद्यमान हैं। शंकर जी के दिव्य स्वरूप को देखकर मैंने उनकी स्तुति की और उनके प्रसन्नतापूर्वक वर माँगने को कहने पर मैंने तीनों कालों का ज्ञान, अविनाशिनी प्रगाढ़ भक्ति तथा परिवार के लिए नित्य प्रति बहुत-सा दूध-भात देने की उनसे प्रार्थना की। शिवजी ने हँसकर तथास्तु कह दिया और मुझे फिर सभी कुछ मनोवाञ्छित सहजसुलभ हो गया।

श्रीकृष्ण के अनुरोध पर शिवभक्ति से आप्तकाम महात्माओं का परिचय उन्हें देते हुए महात्मा उपमन्यु कहते हैं—वैसे तो यह संख्या अगणित है, लेकिन फिर भी मैं कुछ अतिविशिष्ट शिवभक्तों का उल्लेख करता हूँ। हिरण्यकशिपु ने चन्द्रशेखर महादेव की आराधना से देवोपम ऐश्वर्य पा लिया था। शिवजी की पूजा से प्राप्त वरदान से प्रह्लाद ने इन्द्र को पराजित करके त्रिलोकी पर आधिपत्य जमा लिया था। महादेव जी की आराधना से ही याज्ञवल्क्य ने उत्तम ज्ञान

हैं। वे ही चारों—सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य तथा सान्निध्य—प्रकार की मुक्ति के प्रदाता हैं। शिवजी ही सृष्टि के आदि में निर्गुण परमात्मा से सगुण शिवजी बनकर आविर्भूत हुए हैं। त्रिगुणातीत शिवजी में और सगुण रुद्र में सुवर्ण और आभूषण के समान आकार भेद को छोड़कर और कोई भेद नहीं। शिवजी ही ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के सहायक हैं। सभी देवों का लय शिवजी में ही होता है और आत्म-कल्याण के इच्छुक सभी मनुष्य तथा देवता उसी शिव का ही ध्यान-भजन करते हैं। शिवजी ही कालों के महाकाल तथा सभी कार्यों के आदि कारण और नियन्ता हैं। वे शिवजी ही सृष्टि-रचना करते हैं और उसमें लिप्त नहीं होते। जिस प्रकार जल में अग्नि आदि तेज की परछाँई का भान होता है, परन्तु वह वास्तव में उसमें प्रविष्ट नहीं है, उसी प्रकार शिव सृष्टि में लिप्त नहीं हैं। जैसे अग्नि प्रत्येक काष्ठ में साक्षात् विद्यमान है परन्तु घर्षक ही उसके प्रत्यक्ष रूप को देख सकता है, वैसे ही सृष्टि के अणु-प्रत्यणु में व्याप्त शिवजी को साधक ही देख पाता है। जैसे समुद्र, मृत्तिका और स्वर्ण उपाधिभेद से अनेक भाव को प्राप्त होते हैं, वैसे ही शिवजी भी उपाधिभेद से अनेक हैं। जिस प्रकार एक ही सूर्य जल में अनेक दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही शिव भ्रान्ति से अनेक भासते हैं। भ्रान्तिनाश होते ही अभेदबुद्धि हो जाती है। अहंकार से मुक्त, निर्मल और बुद्धिमान् जीव शिव के प्रसाद से शिवत्व को प्राप्त होता है।

यह सारा उपर्युक्त विवरण प्रस्तुत करने के उपरान्त सूत जी बोले—पुण्यात्मा ऋषियो! यह परम पवित्र, दिव्य एवं गुप्त ज्ञान साक्षात् शिवजी ने विष्णु जी को, विष्णु जी ने ब्रह्मा जी को, ब्रह्मा ने सनकादिकों को, सनकादिकों ने नारद को, नारद ने व्यास जी को और वेद व्यास ने सूत जी को और मैंने आपको सुनाया है। इसके श्रवण-मनन से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता, सभी ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं।

उमा संहिता

ऋषि बोले—हे महात्मा सूत जी ! आप हमें पार्वती सहित शिवजी के दिव्य चरित्र को सुनाने की कृपा करें। सूत जी बोले—हे शौनकादि ऋषियो, महर्षि उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को बताया गया शिवचरित्र मैं आप लोगों को सुनाता हूँ, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें।

एक बार वसुदेवसुत श्रीकृष्ण कैलाश पर्वत पर शिवजी की प्रसन्नता के लिए तप करने गए तो वहाँ उन्होंने उपमन्यु को तप करते देखकर उनसे करबद्ध होकर शिवजी का माहात्म्य सुनाने का अनुरोध किया। इस पर उपमन्यु जी बोले—हे कृष्ण जी ! शिवजी को प्रसन्न करने के लिए विष्णु आदि देवों और उनके सम्पूर्ण परिवार को मैंने तप करते देखा है। शिवजी का स्वरूप अनुपम और अवर्णनीय हैं। उनके पास संसार की सभी वस्तुएँ अपने समग्र रूप में विद्यमान हैं। शंकर जी के दिव्य स्वरूप को देखकर मैंने उनकी स्तुति की और उनके प्रसन्नतापूर्वक वर माँगने को कहने पर मैंने तीनों कालों का ज्ञान, अविनाशिनी प्रगाढ़ भक्ति तथा परिवार के लिए नित्य प्रति बहुत-सा दूध-भात देने की उनसे प्रार्थना की। शिवजी ने हँस कर तथास्तु कह दिया और मुझे फिर सभी कुछ मनोवाञ्छित सहज-सुलभ हो गया।

श्रीकृष्ण के अनुरोध पर शिवभक्ति से आप्तकाम महात्माओं का परिचय उन्हें देते हुए महात्मा उपमन्यु कहते हैं—वैसे तो यह संख्या अगणित है, लेकिन फिर भी मैं कुछ अतिविशिष्ट शिवभक्तों का उल्लेख करता हूँ। हिरण्यकशिपु ने चन्द्रशेखर महादेव की आराधना से देवोपम ऐश्वर्य पा लिया था। शिवजी की पूजा से प्राप्त वरदान से प्रह्लाद ने इन्द्र को पराजित करके त्रिलोकी पर आधिपत्य जमा लिया था। महादेव जी की आराधना से ही याज्ञवल्क्य ने उत्तम ज्ञान

और व्यास जी ने यश तथा दिव्य ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्र से पराभूत बालखिल्य ऋषियों ने शिवजी की कृपा से ही सोमरस के हर्त्ता गरुड़ को पाया। अनसूया, दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा आदि ने शिवजी की अनुकम्पा से ही पुत्रों को पाया। राजा चित्रसेन और गोपिकापुत्र नें महादेव का पूजन कर परमसिद्धि पाई। राजा चित्रांगद को शिव-जी ने यमुना में डूबने से बचाया और व्यभिचारिणी चञ्चुका को परमगति प्रदान की। मन्दर ब्राह्मण और पिंगला वेश्या तथा अन्य कितने ही अधम जनों का शिवजी ने उद्धार किया। सत्य यह है कि भगवान् शिवजी द्वारा उद्धृत व्यक्तियों का वर्णन करने में मैं सैकड़ों वर्षों में भी समर्थ नहीं हो सकता।

शिवजी में अपनी गहन निष्ठा दिखाते हुए श्रीकृष्ण ने उपमन्यु द्वारा बताए गए—ओं नमःशिवाय—मन्त्र का जाप करते हुए तप करना प्रारम्भ कर दिया। सोलह महीने तक दक्षिण चरण के अंगुष्ठ पर स्थिर रह कर श्रीकृष्ण शिवमन्त्र का जाप करते रहे, तब उनके समक्ष पार्वती सहित शंकर जी प्रकट हुए और अपनी प्रसन्नता प्रकट करके वर माँगने को कहने लगे। इस पर शिव—पार्वती की बहुत आराधना करने के उपरान्त कृष्ण जी ने शिवजी से निम्नोक्त आठ वर माँगे—(१) शिवजी में नित्य प्रीति (२) अटल यश (३) सामीप्य (४) स्थिर अनुराग (५) दस पुत्र (६) शत्रुनाश (७) कहीं भी तिरस्कार न होना (८) योगियों में सम्मानित होना। पार्वती से उन्होंने निम्नलिखित वर माँगे :—(१) ब्राह्मण पूजा (२) देवों, गृहस्थियों, संन्यासियों और अतिथियों का सम्मान (३) सहस्रों स्त्रियों का प्राणप्रिय होना। शिव और पार्वती ने 'तथास्तु' कहते हुए उनकी मनोऽभिलाषा पूर्ण की और वे अन्तर्धान हो गए। श्रीकृष्ण ने उपमन्यु के आश्रम में आकर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और द्वारिकापुरी को चले गए। समय आने पर उन्हें शिव-जी से माँगे गए सभी वर प्राप्त हो गए।

शिवजी की कृपा से श्रीराम ने समुद्र पार कर लंकेश का विनाश किया। शिवजी को तप द्वारा प्रसन्न करके ही परशुराम पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करने में सफल हुए। शिवजी के प्रसाद से ही पराशर मुनि को जरा-व्याधिरहित पुत्र वेदव्यास प्राप्त हुआ। शिवजी जगत् के नियन्ता और सबको मनोवाञ्छित फल प्रदान करने वाले हैं।

ऋषियों ने सूत जी से निवेदन किया कि वे उन्हें व्यास जी की

सनत्कुमार जी द्वारा बताए गए नरक के अधिकारी पापी जीवों से परिचित कराने की कृपा करें। सूत जी बोले—हे ऋषियो! चार प्रकार के मानसिक पाप हैं—(१) दूसरों का धन लेने की इच्छा करना (२) दूसरों की स्त्री को भोगने की इच्छा करना (३) दूसरे के लिए अपने चित्त में दुर्भावना रखते हुए किसी के लिए अनिष्ट कर्म में प्रवृत्त होना तथा (४) अभिनिवेश अर्थात् अपने में धर्म भावना रखना। चार प्रकार के ही वाचिक कर्म हैं—(१) असंगत भाषण (२) असत्य भाषण (३) अप्रिय भाषण तथा (४) पिशुनता अर्थात् चुगलखोरी। ऐसे ही चार प्रकार के शारीरिक कर्म हैं :—(१) अभक्ष्य-भक्षण, (२) हिंसा (३) असत्कार्य तथा (४) परद्रव्य-अपहरण। इन बारह प्रकार के मानसिक, वाचिक और शारीरिक पापों के पुनः अनन्त भेद और उनके अनन्त फल हो जाते हैं। इन पापों के करने वाले नरक-गामी होते हैं।

महादेव की, शिवगाथा के प्रवक्ता तपस्वियों की, आचार्य गुरु की और पितरों की निन्दा करने वाले, अन्याय से दान करने वाले, लोभ-वश कुत्सित ज्ञान से दुराचार में प्रवृत्त होने वाले, शिवजी की ज्ञान-कथा में आक्षप और विघ्न उत्पन्न करने वाले, ब्रह्म-हत्यारे, गुरुपत्नी-गामी, ब्राह्मण के संकल्पित दान का निवर्तन करने वाले, निर्दोष को दण्डित करने वाले तथा ब्राह्मण का धनहरण करने वाले प्राणी नरक-गामी होते हैं। शास्त्रों में माता-पिता का त्याग, मिथ्या साक्ष्य, ब्राह्मण से कपट, भयग्रस्त से लाभ उठाना, ग्राम अथवा ग्राम-मार्ग में आग लगाना ब्रह्महत्या के समान दण्डनीय अपराध माने गए है और इन्हें करने वाले प्राणी नरकगामी होते है।

पाखण्ड, कृतघ्नता, सार्वजनिक स्थानों को अपवित्र करना, स्त्री का व्यापार, वचन करके समय पर धोखा देना, जिह्वास्वाद के कारण व्रतादि न करना, आश्रितों को पीड़ा पहुँचाना उपपातक कहलाते हैं! इस प्रकार के सभी क्रूर और निकृष्ट पाप कर्मों के करने वाले मनुष्य, नरकगामी होते हैं। शास्त्रों का उल्लंघन, घूसखोरी, पशुहिंसा, क्रूरता, सेवावृत्ति तथा व्यापार में कपट आदि नरक की ओर ले जाने वाले निन्दनीय कर्म हैं।

ऋषियो! मनुष्य को अपने किए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है, अशुभ कर्म करने वाला ऐसा कोई प्राणी नहीं, जो यमलोक को न जाता हो। जहाँ धर्मात्मा लोग सौम्य मार्ग से पूर्वद्वार को जाते

हैं वहाँ पापी जीव घोर दक्षिण मार्ग से यमलोक को जाते हैं। यह मार्ग छुरे की धार के समान कठोर पत्थरों से विरचित है। इसमें कहीं दलदल है तो कहीं कठिन ढेलों से तपी बालू है। कहीं घना निविड़ अन्धकार है तो कहीं दावानल से तप्त शिलाएँ हैं। कहीं सिंह, व्याघ्र, तथा भेड़िये आदि भयंकर पशु हैं तो कहीं अजगर और जोंकें हैं। यमदूत महापापी दुष्ट व्यक्तियों को अपने बन्धु-बान्धवों से पृथक् कर-के ही अकेले में घोर दुःख देने के लिए यहाँ लाते हैं और इन पापियों के साथ बड़ा ही क्रूर व्यवहार करते हैं। किन्हीं को उलटा लटकाते हैं तो किन्हीं के कानों, कपोलों और नासिकाओं में कील ठोकते हैं। किसी को दण्डों और मुगदरों से पीटते हैं तो किन्हीं को रुधिर, मवाद और विष्ठा से भरे कमरों में घसीटते हैं। इसके विपरीत शुभाचरण करने वालों का धर्मराज प्रेमपूर्वक स्वागत करते हैं। धर्मात्माओं को यमराज सौम्य आकृति वाला और पापियों को अति भयंकर मुख वाला दिखाई देता है।

व्यासदेव को सम्बोधित करते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं कि धर्मराज द्वारा पापियों को दण्ड देने का उद्देश्य उन्हें शिक्षित करना और भविष्य में इस प्रकार के पापों—दम्भ, परस्त्रीगमन, परधन-हरण, मिथ्याभाषण, कपटाचरण और प्रवञ्चनादि—से विरत करना है। यमराज की आज्ञा से यमदूत पापी जीवों को घोर, सुघोर, अति-घोर, महाघोर, तलातल, भयानक, कालरात्रि, भयोत्कट, चण्ड, महा चण्ड, प्रचण्ड आदि अनेक नरकों में डाल कर उन्हें विविध यातनाएँ देते हैं। जिस प्रकार अग्नि में पड़ने से स्वर्ण कुन्दन बन जाता है, उसी प्रकार नरक के प्रचण्ड तापों को भोगकर पापी जीवन भी निष्कलुष हो जाते हैं।

किस पाप के फलस्वरूप किस प्रकार के नरक में जाकर कैसी यातना भोगनी पड़ती है—इसका परिचय देते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं :—झूठे शास्त्र में प्रवृत्त करने वाला द्विजिह्वाख्य नरक में जाता है और वहाँ तीखे हल द्वारा पीड़ित किया जाता है। माता-पिता तथा गुरु को भय दिखाने वाले के मुख में विष्ठा डाली जाती है। मन्दिर, कूपादि को तोड़ने वाले को कोल्हू में पेरा जाता है। सज्जनों की निन्दा सुनने वाले के कानों में कील ठोंके जाते हैं। घर में आए अतिथि का तिरस्कार करने वाले के नेत्र निकाल लिए जाते हैं। धर्मग्रन्थों, शिवलिंगों तथा ब्राह्मणों को पैर लगाने वाले के पैर ही

काट लिए जाते हैं। पितृ-तर्पण न करने वाले अस्वस्थ होकर तमिस्र नरक में पड़ते हैं और वहाँ कीड़ों द्वारा पीड़ित किए जाते हैं।

इन सबके विपरीत उत्तम कर्म करने वाले और शुद्धान्तःकरण वाले दयालु पुरुष यमलोक में सुख प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण को जूता, पादुका आदि देने वाले अश्वारूढ़ होकर यमलोक को जाते हैं। पुष्प वाटिका लगाने वाले पुष्पक विमान से और गोदान करने वाले सुखद यान से यमलोक को जाते हैं। इस प्रकार सुखपूर्वक वहाँ पहुँच कर अनेक प्रकार के भोगों को भोगते हैं। सनत्कुमार जी के अनुसार अन्नदान सब दानों में सर्वोत्तम है। वस्तुतः क्षुधा के समान कोई रोग नहीं और अन्नदान के समान कोई पुण्य नहीं। अन्न को प्राण की संज्ञा दी गई है और अन्नदान को प्राणदान कहा गया है। अन्नदान करने वाले को यमलोक में किसी प्रकार की कोई भी असुविधा नहीं देखनी पड़ती।

जलदान की भी शास्त्रों में बड़ी महिमा है। जलदान इस लोक और परलोक में आनन्ददायक है। अतः मनुष्य को तालाब, कूप तथा वापी आदि का निर्माण कराना चाहिए। देवता, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस और स्थावर शूलादिक सभी जल का आश्रय लेते हैं। अतः जल की व्यवस्था करने वाला महान् पुण्य का भागी बनता है। इसी प्रकार ग्राम, वन तथा उपवन् आदि में वृक्ष लगाना भी उत्तम फलदायक है। वह वृक्षारोपण पितृवंश तक का उद्धारक होता है तथा एक जन्म में लगाए गए वृक्ष दूसरे जन्म में पुत्रलाभ कराते हैं। सत्यवचन भी परम कल्याणकारक है। तप सबसे श्रेष्ठ है। तप से स्वर्ग, यश, काम, मोक्ष, ज्ञान-विज्ञान, रूप-सौभाग्य तथा अन्य मनोवाञ्छित फलप्राप्त होते हैं। तप से ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सृष्टि की रचना, पालन और प्रलय करने में समर्थ होते हैं। तप से ही गाधिपुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गए। तप से नरकयातना से निस्तार और सुन्दर सुख की प्राप्ति होती है।

पुराणों की महिमा का वर्णन करते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं।—जिस प्रकार सूर्य-चन्द्रमा के बिना जगत् अन्धकारमय है, उसी प्रकार पुराणों के बिना संसार में अज्ञान का ही साम्राज्य है। अज्ञान-अन्धकार का निराकरण पुराण ज्ञान द्वारा ही सम्भव है। पुराणवक्ता ही सच्चे अर्थों में पात्र—गिरते को गिरने (पतन) से बचाने वाला—है। पुराणवक्ता ब्रह्मा, विष्णु और शिव के समान सर्वज्ञ होने के

कारण परम पूजनीय है। पुराणों के ज्ञाता विद्वान् को दानादि से सन्तुष्ट करने वाला मनुष्य परमगति को प्राप्त करता है। मन्दिर में पुराण की कथा का आयोजन करने वाला ब्रह्मलोक को जाता है।

शिव पुराण के श्रवण करने से तो मनुष्य सर्वथा पवित्र होकर शिवलोक को प्राप्त होता है। शिव की कथा सुनने वाला मनुष्य न रह कर साक्षात् रुद्र ही बन जाता है। कलियुग में तो शिव पुराण के सुनने-पढ़ने से बड़ा कोई पुण्य नहीं। शिव पुराण की कथा का श्रवण तथा शिव नाम का कीर्त्तन कल्पवृक्ष के समान फलदायक है। पुरुषार्थ चतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का निश्चित साधन शिव पुराण का पठन-पाठन एवं श्रवण-श्रावण है। जिस प्रकार सूर्य के बिना मृत्युलोक शोभित नहीं होता, उसी प्रकार बिना पुराण-शास्त्र के संसार की शोभा नहीं।

विविध लोकों का ऋषियों को परिचय कराते हुए सूत जी कहते हैं :— ब्रह्माण्ड के कारण भूत, व्यक्त-अव्यक्त और अनामय एवं काल रूप शिवजी से दो प्रकार के ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, जो चौदह भुवन वाले ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। इस ब्रह्माण्ड में सात पाताल और सात भुवन हैं। सौ योजन विस्तार वाले सात पातालों के नाम हैं— अतल, वितल, सुतल, रसातल, तल, तलातल तथा पाताल। ये सातों पृथ्वी के नीचे हैं और इन सातों लोकों के प्रासाद रत्नमय और आँगन स्वर्णमय हैं। इन लोकों में दानव, दैत्य, नाग और राक्षस जातियाँ रहती हैं। यहाँ की प्राकृतिक सुषमा बड़ी ही मनोरमा है। इन लोकों के ऊपर रौरव, शुकताल, रोध, लवण, विलोहित, विवसन, कृमि, घोर तथा दारुण आदि अनेक प्रकार के कष्टदायक नरक हैं, जिनमें पापी मनुष्य जाते हैं। इन नरकों के ऊपर पृथ्वीमण्डल है, जिसमें सात— जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर—द्वीप हैं और लवण, इक्षुरस, घृत, दधि, दुग्ध, मधु और जल के सात समुद्र हैं। इन सबके मध्य में जम्बूद्वीप है। इसके बीच में सोलह योजन गहरा, चौरासी योजन ऊँचा और बत्तीस योजन चौड़ा एक स्वर्णमय कैलाशपर्वत है। इस पर्वत के दक्षिण में हिमालय और हिमकूट तथा उत्तर में नील और श्वेत शृंगों वाले पर्वत हैं। इसमें भारतवर्ष नामक एक सहस्र योजन विस्तृत तथा इतना ही सुदीर्घ देश है। इसके आगे किम्पुरुष सुमेरु, दक्षिण में हरिवर्ष, उत्तर में रम्यक तथा समानान्तर में हिरण्यमय पर्वत हैं। इसके उत्तर में कुरु, मध्य में इलावृत और

मेरु पर्वत हैं। यहाँ सुमेरू से मिले हुए चार और पर्वत—पूर्व में मन्दराचल, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व—हैं। इस द्वीप का जम्बूद्वीप नाम पड़ने का एक कारण यह है कि यहाँ बहुत बड़े-बड़े जामुन के फल होते हैं, जिनके पत्थरों पर गिरने से निकले रस से जम्बू रस की नदी बहती है। उस नदी के तटवर्ती प्राणी स्वेद, दुर्गन्ध, जरा और इन्द्रियपीड़ा आदि किसी से व्यथित नहीं होते। सुमेरु के पूर्व में भद्राश्व, पश्चिम में केतुमाल और इन दोनों के बीच में इलावृत्त वर्ष है, जिसके पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में विभ्राज और उत्तर में नन्दन वन हैं। सुमेरु के ऊपरी भाग में चौदह योजन विस्तृत ब्रह्माजी की नगरी हैं। उस पुरी में चन्द्रमण्डल को फोड़कर विष्णु के चरणों से निकली गंगा जी गिरी हैं। इस नगरी के चारों ओर सीता, अलकनन्दा और चक्षुभद्रा आदि नदियाँ बहती हैं। इन सभी पर्वतों पर देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर आदि दिन-रात क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। यहाँ के निवासी स्वस्थ, सुन्दर, बलिष्ठ और दीर्घायु होते है। पापी लोग तो इधर इस ओर आ ही नहीं सकते।

भारतवर्ष सागर से उत्पन्न नवम द्वीप है। दक्षिण से उत्तर की ओर हजारों योजन फैले हुए इस द्वीप के पूर्व में किरात, दक्षिण में यवन और उत्तर में तपस्वी निवास करते हैं। इसके मध्य में अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र क्रमशः यज्ञ, युद्ध, वाणिज्य और सेवा आदि अपने कार्यों में तत्पर रहते हैं। यहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, सुदामा, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र सात पर्वत हैं। इसी पारियात्र से वेद, स्मृति और पुराण आदि उत्पन्न हुए हैं। यहाँ नर्मदा और सुरसा आदि सात महानदियों के अतिरिक्त अन्य हजारों नदियाँ विन्ध्याचल से निकल कर बहती हैं। इनके मण्डलों में अनेक नगर हैं।

समस्त जम्बूद्वीप में भारतवर्ष श्रेष्ठ और कर्मभूमि है। हजारों जन्मों के पुण्यों से ही इस भूमि में जन्म मिलता है। स्वर्ग-अपवर्ग के द्वारभूत इस भूमि में स्वयं भगवान् भी अवतार धारण कर विहार करते हैं। वे धर्मात्मा सचमुच ही बड़े भाग्यशाली होते हैं, जिनका जन्म भारतवर्ष में होता है।

सूर्य और चन्द्र की किरणें जहाँ तक प्रकाशित होती हैं, वहाँ तक पृथ्वी को भूलोक कहा गया है। पृथ्वी से एक लाख योजन की दूरी पर सूर्यमण्डल है, जिसके एक हजार योजन के घेरे में सूर्य स्थित है।

चन्द्रमा सूर्य से एक लाख योजन ऊपर स्थित है। चन्द्रमा के ऊपर दस सहस्र योजन चारों ओर नक्षत्रों सहित सम्पूर्ण ग्रहों का मण्डल स्थित है, जिसके आगे बुध, फिर बुध के आगे शुक्र, उसके ऊपर मंगल, मंगल के ऊपर वृहस्पति और उसके ऊपर शनैश्चर स्थित है। उसके एक लाख योजन उपर सप्तर्षियों का मण्डल है और उनसे सात सहस्र योजन ऊपर ध्रुवग्रह है। भूमि के ऊपर तथा ध्रुव से नीचे भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक हैं। ध्रुवलोक के ऊपर महर्लोक है। ध्रुवलोक से छब्बीस लाख योजन दूर तपलोक है और वहाँ से छः गुना दूर सत्य-लोक है।

भूलोक में ज्ञानी तथा ब्रह्मचारी, भुवर्लोक में मुनि, देवता और सिद्ध तथा स्वर्लोक में आदित्य, पवन, वसु आदि रहते हैं। यह ब्रह्माण्ड चारों ओर अण्ड कटाह से लिपटा हुआ है और जल से, दशगुण से, अग्नि, पवन, आकाश, अँधेरा आदि से व्याप्त है, जिसके ऊपर दुगने महाभूतों का डेरा हैं। तदनन्तर इस ब्रह्माण्ड को प्रधान महातत्त्वों से लपेटे हुए परमपुरुष स्थिर हैं। अपरिमित गुण, नाम वाला परब्रह्म तिलों में तेल और दूध में घी की तरह इस समस्त ब्रह्माण्ड में अव्यक्त रूप से व्याप्त है।

ब्रह्माण्ड के ऊपर के लोकों का परिचय देते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं—ब्रह्म के ऊपर वैकुण्ठलोक है, जिसमें विष्णु जी वास करते हैं। उसके ऊपर कौमारलोक है जिसमें स्वामी कार्त्तिकेय रहते हैं। उसके ऊपर उमालोक है जिसमें शिवशक्ति परम शोभित है। उसके ऊपर सनातन शिवलोक है, जिसमें त्रिगुणातीत परब्रह्म शम्भु महेश्वर विराजते हैं। इस शिवलोक के समीप ही गोलोक है, जहाँ सुलाला रूप गोमाता निवास करती है और वहीं शिवजी के आज्ञापालक कृष्ण जी गोसेवा करते हैं।

शिवलोक की प्राप्ति मानव ही नहीं अपितु यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और देव-दानव का चरम लक्ष्य है परन्तु इस पद को केवल मनुष्य ही पा सकता है, क्योंकि यही एक कर्मयोनि है, अन्य योनियाँ तो भोग-योनियाँ ही हैं। मानव जीवन की यही तो अतिरिक्त विशिष्टता है।

मनुष्य दुराराध्य शिवजी को तप से ही सुसाध्य वना सकता है। तप की महिमा अमित है। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी तप में ही स्थित हैं। तप के तीन प्रकार भेद हैं—सात्त्विक, राजसिक, और तामसिक। निष्काम भाव से अथवा लोकहित की भावना से किया

गया तप सात्त्विक कहलाता है। स्नान, पूजा, व्रत, दान, दया, कूप, वापी तथा आश्रमादि का निर्माण सात्त्विक तप के अन्तर्गत है। इससे सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति होती है। कामना विशेष से की जाने वाली साधना राजसिक तप है और इससे भी अभीष्ट सिद्धि होती है। दूसरों के अनिष्ट के लिए किया जाने वाला जप, होम तामसिक तप है। यह अवाञ्छनीय होते हुए भी सिद्धिदाता है। वस्तुतः तप की शक्ति अमोघ है। प्राणायाम को सर्वोत्तम सात्त्विक तप कहा गया है। रेचक, पूरक और प्राणायाम से सम्पूर्ण पापों का नाश होता है।

मनुष्य-जन्म पाकर जिसने शिवप्राप्ति के लिए तप का आश्रय नहीं लिया, उसने दुर्लभ मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही गँवाया है। उसने इस जन्म का दुरुपयोग करके एक प्रकार से अपने लिए ही तो काँटे बोए हैं। ऐसा व्यक्ति आवागमन के चक्र में पड़कर नाना दुःख-क्लेश भोगता है। शिवभक्ति ही संसार के रोगों को निवृत्त करने वाली औषधि है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण भगवान् शंकर के अंगों से ही उत्पन्न हुए हैं। उनकी पूर्वापर उत्कृष्टता का आधार तप ही है। तप को अपनाने के कारण ही ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं। क्षत्रिय का संग्राम भी घोर तप के ही समान है। युद्ध में प्राणत्याग करने वाला क्षत्रिय अक्षयलोक को प्राप्त करता है। युद्ध में ब्राह्मण का वध करने पर भी उसे ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगता। यदि वैश्य और शूद्र भी तप और उत्तम कर्म का आश्रय लें तो वे भी क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः उत्कृष्टता का आधार कर्म है और कर्म के अनुसार ही यह विभाजन एवं व्यवस्था है।

व्यास जी बोले—हे मुनीश्वर ! अब आप जीव के जन्म, गर्भ-स्थिति तथा वैराग्य के सम्बन्ध में बताने की कृपा कीजिए। सनत्कुमार जी बोले—हे सत्यवतीनन्दन ! पाक पात्र में जिस प्रकार प्रथम जल और अन्न दोनों पृथक् रहते हैं और पुनः अग्नि से जल के ऊष्ण होने पर अन्न पककर रस और मल दो भागों में विभक्त हो जाता है, उसी प्रकार खाया गया भोजन जठराग्नि में जब पक जाता है तो उसका रस सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाता है और मल द्वादश स्थानों—कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दन्त, शिश्न, गुदा, मलाशय, कफ, स्वेद, विष्ठा और मूत्र—से बाहर निकल जाता है। हृदयकमल से जुड़ी नाड़ियों के द्वारा रस शरीर में पहुँचता है और आत्मा द्वारा पकाए

जाने पर प्रथम त्वचा और फिर रुधिर बनता है। तब रोम, केश, स्नायु, मज्जा और नख उत्पन्न होते हैं। फिर मज्जा से विकृत होकर प्रसवात्मक शुक्र अर्थात् वीर्य उत्पन्न होता है।

वीर्य जब स्त्री के योनिमार्ग से उसके रक्त में मिलता है, तभी जीव उसमें प्रविष्ट होता है। वह एक दिन में कलिल, में पाँच रात्रि में बुदबुद सदृश होता है। सात रात्रि में मांसपिण्ड, दो मास के भीतर उसके ग्रीवा, स्कन्ध, पीठ, छाती, उदर, हाथ और पैर आदि बन जाते हैं। तृतीय मास में अंकुर सन्धि, चतुर्थ में अंगुलि, पाँचवें में मुख, नासिका, कर्ण, छठे मास में दन्त, गुह्य-इन्द्रिय, नख, कर्ण छिद्र और सातवें मास में उपस्थ, गुदा और नाभि बनते हैं। इस प्रकार जीव माता के गर्भ से सात महीनों में अंग-प्रत्यंगों से पूर्ण होकर माता के किए भोजन के रस से पुष्ट हो जाता है।

माता के गर्भ में जीव को अपने बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ने, अनेक योनियों में उत्पन्न होकर नाना दुःख पाने की स्मृति हो जाता है और बाहर आने पर गर्भदुःख जैसे अति भयंकर दुःख-पर्वत से दबे के समान जरायु से लिपटा होना, सुइयाँ चुभने के समान मर्मान्तक पीड़ा अनुभव करना-से निवृत्ति पाने के लिए प्रयत्नशील होने का संकल्प करता है, परन्तु दुःख की बात यह है कि उत्पन्न होते ही वह अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर संसार में रमण करने लगता है, जिससे पुनः आवागमन के चक्र का शिकार बनता है।

यह जीव माता के गर्भ से बाहर आकर आत्मस्वरूप को विस्तृत कर दुर्गन्ध के आगार तथा कभी शुद्ध और पवित्र न किए जा सकने वाले शरीर में आसक्त हो जाता है। जिस प्रकार काली वस्तु सफेद नहीं हो सकती, जिस प्रकार जल में धोने से कुत्ते की पूंछ पवित्र नहीं हो जाती, जिस प्रकार देवालयों में रहने वाले कपोत मुक्त नहीं हो जाते, उसी प्रकार स्नान, ध्यान, दान, देवपूजा आदि किसी भी साधन से शरीर शुद्धि-पवित्र नहीं बनाया जा सकता है। शरीर की शुद्धि का एकमात्र उपाय है—वैराग्य। ममत्व की भावना के त्याग और अनासक्ति से ही जीव का कल्याण होता है।

योनिमार्ग में पड़ा जीव ज्ञान के द्वारा योनि यन्त्र की पीड़ा से मुक्त तो हो जाता है परन्तु बाहर आने पर संसार की वायु का स्पर्श करते ही मोहरूपी महाज्वर से ग्रस्त हो जाता है। उस ज्वर से इसमें आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और पूर्व-स्मृति नष्ट हो जाती है। फलतः जीव

कर्त्तव्यच्युत होकर निजस्वरूप को नहीं पहचान पाता।

बाल्यावस्था में चाहते हुए भी जीव कुछ नहीं कर सकता। कुमारावस्था में मनुष्य पढ़ने से दु:खी होता है। युवावस्था में स्त्रीसंग में पड़कर दु:ख को सुख समझने लगता है। बुढ़ापे में इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, जिससे मनुष्य कुछ करने में असमर्थ रहता है। वास्तव में आत्मोद्धार की सही अवस्था यौवन है किन्तु इस अवस्था में मनुष्य को स्त्रीसंग बड़ा प्रिय लगता है और स्त्रियाँ समस्त दोषों की पात्र हैं। नारद जी के पूछने पर पंचचूड़ा अप्सरा ने स्त्रियों के दोष इस प्रकार से गिनाए हैं :

स्त्री का सबसे बड़ा और प्रथम दोष यह है कि वह कुलीन, सुशिक्षित और सुरक्षित होने पर भी मर्यादा में नहीं रहती। उसका दूसरा दोष यह है कि वह पापी मनुष्य का भी निर्लज्जतापूर्वक सेवन करती है। पतिप्रिया और घर में अत्यन्त सम्मानित स्त्रियाँ भी अन्धे, जड़, वामन और लँगड़े पुरुषों में आसक्त देखी-सुनी जाती हैं। स्त्रियों के लिए सुरूप-कुरूप कोई भी अगम्य है। वस्तुत: जिस प्रकार काष्ठों से अग्नि तथा नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषों से सन्तुष्ट नहीं होतीं। वे अधिक से अधिक शारीरिक सुखभोग के लिए और पुरुषों की कामना करती हैं। सत्य तो यह है कि स्त्रियाँ नरक का द्वार हैं। अपने रतिसुख के लिए वे अपना भर्त्ता तथा पुत्र की हत्या तक कर सकती हैं। ऐसी अधम स्त्रियों में आसक्त होकर मानव अपना भविष्य नष्ट करता है।

शिवजी द्वारा पार्वती को बताए गए काल (मृत्युसूचक चक्र) लक्षणों का उल्लेख करते हुए सनत्कुमार जी कहते हैं—यदि अकस्मात् शरीर चारों ओर से पीला और ऊपर से लाल हो जाए अथवा मुख, कान, आँख, जीभ, बँध जाएँ तो यह समझना चाहिए कि उसकी छ: मास के भीतर ही मृत्यु होने वाली है। यदि सूर्य, चन्द्र और अग्नि का प्रकाश दिखाई न पड़े तथा सब पदार्थ श्याम दिखाई पड़ें तो भी जीवन की शेष अवधि छ: मास के लगभग ही समझनी चाहिए। यदि सात दिन तक निरन्तर बायाँ हाथ फड़कता रहे अथवा सब गात्रों का उन्मीलन और तालु शुष्क हो जाता है तो उसका जीवन एक मास शेष समझना चाहिए। त्रिदोष—वात, पित्त और कफ—से पीड़ित होने पर व्यक्ति की छ: मास के भीतर मृत्यु हो जाती है। जिसे अपनी छाया सिर के साथ दिखाई पड़े अथवा दिखाई ही न पड़े, वह व्यक्ति

एक मास के भीतर मृत्यु का ग्रास वन जाता है। जिसे तारागण दिखाई न दें, वह भी एक महीना ही जीता है। सप्तर्षि और स्वर्गमार्ग को आकाश में न देख पाने वाला छः मास के भीतर मृत्युग्रास वन जाता है। नीली मक्खियों से घिरा हुआ व्यक्ति तथा जिसके सिर पर गिद्ध, कौवा, कपोत आकर बैठ जाए, वह व्यक्ति एक मास से अधिक नहीं जी पाता। यदि किसी को रेखा भौंरे के समान दीख पड़े तो वह एक पक्ष के भीतर ही नामशेष हो जाता हैं। पाँचों इन्द्रियों द्वारा एक साथ बहन किये जाने पर, साल भर में प्राणनाद के ब्रह्माण्ड में सत्रह दिन तक चढ़े रहने पर, एक वर्ष सात महीने में तेरह दिन तक नाड़ी के वहते रहने पर, एक वर्ष चार महीने में अट्ठारह दिन तक वाम नाड़ी के प्रवाहित होने पर, आठ मास बारह दिन में प्राणी की मृत्यु हो जाती है।

कालवञ्चन की विधि वतलाते हुए शिवजी पार्वती जी से कहते हैं—पञ्चभौतिक शरीर में आकाश व्यापक है और अन्य सभी तत्त्व आकाश से ही उत्पन्न होते हैं और आकाश में लीन हो जाते हैं। वैसे तो देवता, दैत्य, राक्षस, सर्प और मनुष्य कोई भी काल को वंचित नहीं कर सकता परन्तु ध्यानलीन योगी काल को नष्ट कर सकता है। योगी इस वात का विचार करता है कि वास्तव में पञ्चभूतों द्वारा अपने गुणों का ग्रहण करना ही जीव का जन्म और पञ्चभूतों द्वारा गुणों का परित्याग ही प्राणी की मृत्यु है। योगीजन प्रजाओं के सो जाने पर दीपकरहित अँधेरे स्थान पर आसनासीन होकर एक मुहूर्त तक अपनी तर्जनियों से अपने दोनों कानों को वन्द रखते हैं। उस समय उन्हें अग्निप्रेदित तुंकार शब्द सुनाई पड़ता है। प्रतिदिन दो घड़ी तक इस शब्द को सुनने वाला योगी मृत्यु पर विजयी हो जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह तुंकार (अनाहत नाद) उच्चारण में नहीं आता। योगियों द्वारा पहचाने गए निम्नोक्त नौ शब्द उसमें प्रकट होते हैं :—

(१) आत्मा का संशोधक तथा सर्वव्याधि विनाशक घोषनाद
(२) प्राणियों की गतिनिरोधक, विषभूत, गृहादि का निवारक कांस्यनाद
(३) अभिचार, शत्रुमारण तथा उच्चाटनादि का निवर्तक शृंगनाद।
(४) देवों तक का आकर्षक शिवरूप घण्टानाद।
(५) योगियों के लिए [illegible] मनोरम वीणानाद।

(६) समग्र तत्त्वों का प्रापक वंशजनाद।
(७) जरा-मृत्यु-व्याधि आदि निवारक दुन्दुभिनाद।
(८) यथेच्छरूप ग्रहण का सामर्थ्यदायक शंखनाद।
(९) समग्र विपत्तियों से मुक्तिदायक मेघनाद।

इन नौ शब्दों को त्याग कर और इनसे ऊपर उठकर निरन्तर तुंकार का अभ्यास करने वाला योगी पुण्य-पापों से निर्लिप्त होकर सर्वज्ञ, समदर्शी और कामरूप हो जाता है।

वायु को भीतर रोकने का नाम प्राणायाम है और इसमें बड़ी भारी शक्ति है। योगी जब प्राणायाम द्वारा वायु को भीतर रोक लेता है तो उसके हृदय में स्थित वायु दीपक की भाँति भीतर और बाहर प्रकाश करती है। जिस प्रकार लुहार धोंकनी को अपने मुख की वायु से भरकर अपना काम करता रहता है, उसी प्रकार योगी भी वायु को अपने भीतर भरने का अभ्यास करे। ऐसा करने से वह सहस्रनेत्र, सहस्र हस्त-पाद हो जाता है तथा सब ग्रन्थियों को पार-कर दश अंगुल पर स्थित रहता है। गायत्री को जपता हुआ वह प्राणा-याम करता है तथा चन्द्रादि ग्रहों को देखता है। इस प्रकार ध्यान में तत्पर योगी परमधाम को पहुँच कर वहाँ से नहीं लौटता है। यह प्राणायाम की प्रथम विधि है।

दूसरी विधि यह है कि एकान्त में चन्द्रमा अथवा सूर्य से प्रका-शित प्रदेश में निरालस होकर अग्नि के तेज को भृकुटियों के मध्य में देखने और फिर हाथ की अँगुलियों से नेत्रों को बन्द करके मुहूर्त मात्र ध्यान में तत्पर रहने वाले योगी को ईश्वरीय ज्योति दिखाई देने लगती है। इस प्रकार वायु को वश में करके दिव्यज्योति के दर्शन पाने वाला योगी कारण—प्रथम—आवेश—परकाय प्रवेश अणि-मादि गुणों की प्राप्ति, मन से देखना तथा अदृश्य आदि सिद्धियों को पा लेता है तथा परमपुरुष परमात्मा को जान कर मृत्यु से छूट जाता है। ध्यान करने वाले योगियों की तुरीया गति होती है।

तीसरी विधि इस प्रकार है—अपनी जिह्वा को तालु में सिकोड़ कर लगाने का अभ्यास करने से जिह्वा लम्बी हो जाती है और फिर स्पर्श से शीतल अमृत टपकता है जिसका पान कर योगी अमर हो जाता है।

चतुर्थ विधि वह है कि जिसमें योगी उन्नत शरीर होकर अंजलि

बाँधकर चंचु के आकार वाले मुख से धीरे-धीरे वायुपान करने पर

क्षणमात्र में ही उसके तालु से जीवनदायक जल टपकने लगता है जिसे पीकर योगी दिव्य शरीर, तेजस्वी, भूख-प्यास से रहित और मृत्युञ्जयी बन जाता है।

इस प्रकार इन चारों में से किसी एक विधि को अपना कर योगी अजर-अमर हो जाता है।

काल-जप का एक अन्य उपाय बताते हुए शंकर जी पार्वती जी से कहते हैं :—सूर्य अथवा सोम को पीछे करके श्वेत वस्त्र पहनकर धूपादिकों से सुगन्धित होकर सम्पूर्ण काम फल देने वाले—"ओं नमो भगवते रुद्राय"— नवाक्षर मन्त्र का स्मरण करने और अपनी छाया देखने वाले को भी ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। छाया पुरुष को देख कर एक वर्ष तक नवाक्षर मन्त्र जपने पर अतिरिक्त सब सिद्धियाँ हस्तामलकवत् हो जाती हैं। यही गुप्त साधना विद्या, खेचरी विद्या, दृश्या, अदृश्या, चला, नित्या, व्यक्ता, अव्यक्ता, बिन्दुमालिनी तथा कुण्डलिनी साधना कहलाता है। इसका साधक योगी सहज ही कृत-कृत्य हो जाता है।

शौनकादि ऋषियों की प्रार्थना पर उन्हें ब्रह्मा की सृष्टि का रहस्य समझाते हुए सूत जी कहते हैं—प्रत्येक समय ब्रह्मा जी सृष्टि को उत्पन्न, विष्णु जी उसका पालन और शिवजी संहार करते हैं। सृष्टि रचना की इच्छा करने पर स्वयंभू ने प्रथम जल को उत्पन्न करके उसमें वीर्य डाला, जिससे जल नर और वही नर का पुत्र नार कहलाया। उस जल में निवास करने से स्वयंभू नारायण कहलाए। जल में स्थित स्वर्णवत् कान्तिमान् अण्ड के ब्रह्मा जी ने दो भाग किए। एक खण्ड आकाश और एक खण्ड भूमि हुआ। भूमि के अर्द्ध भाग में प्रभु ने चौदह भुवन बनाए। फिर प्रभु ने जलों के ऊपर स्थित पृथ्वी और आकाश में दस दिशाओं को मन, वाणी, काम, क्रोध तथा रति आदि को, मरीचि, अंगिरादि सप्त ऋषियों को, अपने क्रोध से ग्यारह रुद्रों को और पुनः सनत्कुमारों को उत्पन्न किया। ब्रह्मा जी ने यज्ञ की सिद्धि के लिए चारों वेदों की रचना की और पुनः मुख से देवताओं को, वक्षःस्थल से पितरों को, जंघा से मनुष्यों को और जंघा के नीचे के भाग से दैत्यों को उत्पन्न किया। इतने पर भी जब ब्रह्मा जी की प्रजा नहीं बढ़ी तब उन्होंने अपनी देह के दो—स्त्री और पुरुष—भाग किए। स्त्री भाग शतरूपा और पुरुष भाग मनु कहलाया। इन मनु-शतरूपा में प्रियव्रत तथा उत्तानपाद ने अति सुन्दर तेजस्वी

पुत्र ध्रुव को जन्म दिया। ध्रुव के दो पुत्र उत्पन्न हुए—पुष्टि तथा धन्य। पुष्टि के पाँच पुत्र—वृष, रिपुञ्जय, वित्र, वृकल और तत्रसू—उत्पन्न हुए। साथ ही उसने चाक्षुष नामक एक अन्य पुत्र भी उत्पन्न किया। चाक्षुष बड़ा ही प्रतापी था और वह मनु के नाम से विख्यात हुआ। उसने नड्वला पत्नी से दस तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किए—पुरु, मास, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यजित, कवि, अग्निष्टोम, अतिरात्र, मन्यु और सुयश। पुरु के छः पुत्र—अङ्ग, सुमनस्, ख्याति, स्मृति, अंगिरस् और गय—उत्पन्न हुए। अङ्ग का वेन नामक महापापी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे क्रुद्ध होकर ऋषियों ने अपनी हुंकार से मार दिया। वेन की पत्नी सुनीथा की प्रार्थना पर वेन के दक्षिण हाथ को मथ कर ऋषियों ने पृथु को उत्पन्न किया। पृथु सूर्य के ही समान तेज़स्वी और साक्षात् विष्णु का अवतार था। उसने प्रजाहित के लिए गोरूपी पृथ्वी को दुहा और एक सौ यज्ञ भी किए। पृथु के सूत, मागध, विजिताश्व, हर्यश्व और वर्हि आदि पुत्र उत्पन्न हुए। बर्हि के ही पुत्र दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए जिन्होंने मन से चर, अचर, द्विपाद और चतुष्पाद जीव उत्पन्न किए। इसके उपरान्त वे मैथुनी सृष्टि रचने में प्रवृत्त हुए। उन्होंने हर्यश्व आदि दस सहस्र पुत्र उत्पन्न किए जो नारद जी के उपदेश से विरक्त हो गए। दक्ष ने पुनः शवलाश्व नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किए, वे भी नारद जी की प्रेरणा से पूर्वजों के अनुगत हुए। इस पर क्रुद्ध दक्ष ने नारद को कहीं स्थिर होकर रहने का स्थान उपलब्ध न होने तथा भटकते रहने का शाप दे दिया। इसके पश्चात् दक्ष ने अनेक कन्याएँ उत्पन्न करके धर्म को, कश्यप को, अंगिरा को तथा सोम को ब्याह दीं, जिनसे देव, दैत्यादि वहुत पुत्र उत्पन्न हुए और इनसे जगत् भर गया।

वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन करते हुए सूत जी कहते हैं—प्रथम सृष्टि में उत्पन्न सप्तर्षियों के चले जाने पर दिति ने कश्यप जी को प्रसन्न करके उनसे इन्द्रहन्ता पुत्र माँगा, जिसे कश्यप जी ने स्वीकार किया। एक दिन उच्छिष्ट मुख और बिना पैर धोए गर्भवती दिति के सो जाने पर इन्द्र उसके गर्भ में प्रविष्ट हो गया और उसने अपने वज्र से गर्भ के सात भाग कर दिए और पुनः एक-एक भाग के सात-सात, इस प्रकार कुल उनचास खण्ड कर दिये। इन्द्र से भ्रातृत्व घोषित किए जाने पर इन्द्र ने इनसे द्वेष त्याग दिया और यही उनचास मरुत नामक देवता कहलाए। इनके लिए प्रजापति ने

पृथक्-पृथक् राज्यों की कल्पना की। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी ने राज्यों का विभाग करके वेनपुत्र पृथु, सोम, वरुण, विष्णु, पावक, शूलपाणि, महादेव आदि को उन राज्यों पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने पूर्व दिशा में विराज के पुत्र को, दक्षिण दिशा में कर्दम के पुत्र को, पश्चिम दिशा में रजसू के पुत्र को और उत्तर दिशा में दुर्धर्ष के पुत्र को अभिषिक्त किया।

सूत जी बोले—मुनीश्वरो ! भूत, भविष्य और वर्तमान में कुल चौदह मनुस्वायम्भुव, स्वारोचिष्, उत्तम, तामस, रवत, चाक्षुष, वैवस्वत सावर्णि, रौच्य सावर्णि, धर्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देव सावर्णि और इन्द्र सावर्णि—हुए हैं। इनका समय चौदह हजार कल्प निर्माण किया जाता है। इनकी सन्ततियों का विवरण इस प्रकार से है :—

स्वायम्भुव मनु के दस पुत्र थे, जिसमें इन्द्र का नाम यज्ञ था। यह प्रथम मन्वन्तर बड़ा ही दिव्य था। द्वितीय मन्वन्तर में स्वारोचिष् मनु के भी दस वीर्यवान् और पराक्रमी पुत्र पैदा हुए, जिनमें इन्द्र का नाम रोचन था। तृतीय मन्वन्तर में उत्तम मनु के दस पुत्र हुए जिनमें सत्यजित नाम का इन्द्र था। चतुर्थ मन्वन्तर में तामस मनु के दस पुत्रों में त्रिशिख नाम का इन्द्र था। इस प्रकार चौदह मन्वन्तरों में मनुओं की सन्तानों में पृथक्-पृथक् इन्द्र, ऋषि और देवतादि होते आए हैं, जो सहस्र युगों तक सृष्टि का पालन करने के पश्चात् ब्रह्मलोक को जाते हैं। जब सूर्य की किरणों से प्राणी जलने लगते हैं तब ब्रह्मा जी नारायण हरि में प्रवेश करते हैं और कल्पान्त में भूतों को उत्पन्न करते तथा शिवजी उनका संहार करते हैं। मन्वन्तरों की उत्पत्ति का यही क्रम है।

महर्षि कश्यप के पुत्र विवस्वान् सूर्य ने अपनी पत्नी संज्ञा से तीन सन्तानें—श्राद्धदेव, मनु और यम-यमी (युग्म)—उत्पन्न कीं। अपने पति के तेज को न सहन कर पाने के कारण संज्ञा अपनी सन्तानें छाया को सौंप कर अपने पिता के घर चली गई। पिता द्वारा अवहेलित संज्ञा वहाँ न रह पाने के कारण अश्वी का रूप धारण कर कुरुदेश में भ्रमण करने लगी।

इधर छाया को ही संज्ञा समझकर विवस्वान् ने उससे सावर्णि मनु नामक पुत्र उत्पन्न किया। छाया के इस शिशु से सर्वाधिक स्नेह एवं पक्षपात को देखकर यम ने छाया पर चरणप्रहार किया तो छाया ने उसे चरणहीन हो जाने का शाप दे दिया। यम ने अपने पिता सूर्य

को सारा वृत्त बताया तो सूर्य ने शाप को अन्यथा करने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

सूर्य ने अपनी पत्नी पर क्रोध करते हुए उसकी इस चेष्टा के लिए जब उससे स्पष्टीकरण माँगा तो उसने संज्ञा के छाया होने का रहस्य बताया और सूर्य के प्रचण्ड तेज को शान्त करके उसे सुन्दर रूप भी दिया। रहस्य का पता चलते ही सूर्य ने अश्व रूप धारण कर संज्ञा से भोग करने का प्रयास किया परन्तु संज्ञा द्वारा इन्कार करने पर सूर्य का वीर्य उसकी नासिका के दो नथुनों पर गिर ही पड़ा जिससे दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। उसके पश्चात् संज्ञा अपने पति के सुन्दर मोहक रूप को देखकर उसके साथ घर लौट आई। यही यम धर्मराज, मनु, सावर्णि मनु और यमी यमुना नदी हुई। सूत जी बोले—ऋषियो! वैसे तो मनु के इक्ष्वाकु, शिवि आदि नौ पुत्र थे, परन्तु एक समय सन्तान न होने पर मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा इला अथवा इड़ा नामक कन्या को उत्पन्न किया। इला ने मित्रावरुण के पास जाकर कहा कि वह उनके ही अंश से उत्पन्न हुई है अत: उनसे कर्त्तव्य का निर्देश चाहती है। मित्रावरुण ने प्रसन्न होकर उसे सुद्युम्न के नाम से पुरुष हो जाने का वर दिया, परन्तु घर लौटते समय मार्ग में उसे बुध मिला, जिसकी प्रार्थना पर उससे मैथुन करके इला ने पुरुरवा नामक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। पुन: उसने सुद्युम्न बन कर तीन पुत्र—उत्कल, गय और विनताश्व—उत्पन्न किए।

मनु के एक पुत्र नरिष्यन्त ने तीन पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। राजपुत्री सुकन्या ने च्यवन ऋषि से सौ पुत्र उत्पन्न किए। इनमें सबसे बड़े ककुद्मी की कन्या रेवती थी, जिसका विवाह ब्रह्मा जी की अनुमति से बलराम से हुआ।

मनु के एक दानी पुत्र नृग के गोदान के व्यतिक्रम, दुर्बुद्धि एवं पाप से गिरगिट योनि में गिरने पर श्रीकृष्ण ने उसका उद्धार किया। उसका पुत्र प्रवृत्ति भी बड़ा धर्मात्मा था। मनु का आठवाँ पुत्र वृषघ्न अपने कर्मों से शूद्र बना और नवम पुत्र कवि बड़ा बुद्धिमान हुआ, जो इस लोक में सुख भोग कर दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त हुआ।

मनु की वंशावली का परिचय देते हुए सूत जी कहते हैं :—मनु की नासिका से उत्पन्न इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में विकुक्षि सबसे बड़ा था। एक बार उसने शश का मांस खा लिया, जिससे वशिष्ठ

जी की आज्ञा से इक्ष्वाकु ने उसे राज्य से च्युत कर दिया। इक्ष्वाकु ने शकुनि आदि अन्य पन्द्रह पुत्र उत्पन्न किए। इनमें अयोध की वंशपरम्परा इस प्रकार चली—अयोध → कुकुत्स्थ → आदिनाम → पृथु → विष्टराश्व → इन्द्र → युवनाश्व → श्राव → श्रावस्तक—वृदृय-श्व → युवनाश्व → कुवलाश्व → दृदाश्व → हर्यश्व → निकुम्भ → मह-न्ताश्व → अक्षाश्व → हेमवती कन्या → प्रसेनजित → युवनाश्व → मान्धाता → मुचकुन्द → कवीश्वर → सत्यव्रत पुत्र हुआ।

सत्यव्रत बड़ा ही अधार्मिक राजा था, जिससे अप्रसन्न होकर इन्द्र ने बारह वर्ष तक उसके राज्य में वर्षा नहीं की। उन्हीं दिनों विश्वा-मित्र अपनी पत्नी को त्याग कर समुद्र तट पर तपस्या कर रहे थे। भूख से व्याकुल बच्चों को बचाने के लिए विश्वामित्र की पत्नी जब अपने सुपुत्र को अपने गले में बाँधकर उसके साथ अपने को भी बेचने लगी तो सत्यव्रत ने उसे खरीद लिया। गले में बँधने के कारण गालव नाम पड़े उस बालक तथा उसकी माँ सहित और भाइयों का सत्यव्रत ने विश्वामित्र की प्रसन्नता के लिए बड़े ही प्रेमपूर्वक पालन-पोषण किया।

सत्यव्रत को वशिष्ठ जी ने राजा बनाया था, इसलिए बारह वर्ष तक वे उसके उत्पातों को सहन करते रहे। एक बार दुष्ट सत्यव्रत ने वशिष्ठ जी की कामधेनु को ही मार डाला और उसका मांस स्वयं खाया तथा विश्वामित्र के पुत्रों को खिलाया। पिता के अपमान करने, विश्वामित्र के आश्रम पर मृत पशु फेंकने और कामधेनु का वध करने के रूप में तीन-तीन महापातक करने वाले सत्यव्रत को वशिष्ठ जी ने त्रिशंकु होने का शाप दिया।

विश्वामित्र ने तप से लौटने पर जब सत्यव्रत द्वारा अपनी पत्नी और पुत्रों के रक्षा किये जाने की बात सुनी तो कृतज्ञतावश विश्वा-मित्र ने अपने तपोबल से उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया। सत्यव्रत की वंशपरम्परा आगे इस प्रकार चली :—

सत्यव्रत → हरिश्चन्द्र → रोहित → वृक → बाहु → सगर → साठ हजार पुत्र (कपिलमुनि के शाप से भस्मीभूत) और पंचजन → अंशु-मान् → दिलीप → भगीरथ (स्वर्ग से गंगा लाकर पूर्वजों का उद्धर्त्ता) → श्रुतसेन → नाभाग → अम्बरीष → अयुताजित → ऋतुपर्ण → अनु-पर्ण → कल्मषपाद → सर्वकर्मा → अनरण्य → कुण्डद्रुह → निषिरवि षद्वांग → दीर्घबाहु → रघु → अज → दशरथ → रामचन्द्र → कुश →

अतिथि→विपथ→नल →पुण्डरीक →क्षेत्रधन्वा →देवानीक →अहिनग →रायाद सहस्वान् →वीरसेन →परियात्र →बलाख्य →स्थल→सूर्य→यक्ष→अगुण→विरध्री→हिरण्यनाभ →योगाचार्य →याज्ञवल्क्य →पुष्प →ध्रुव →अग्निवर्ण →शीघ्र→मरुत और उनका योगसिद्ध पुत्र हुआ जो कलाप ग्राम में अब तक स्थित है और कलियुग में नष्ट होने पर कलाप ग्रामवासी, वे लोग फिर से सूर्यवंश का उद्धार करेंगे तथा उनकी वंशावली इस प्रकार से आगे चलेगी:—
-योगसिद्ध→पृथुश्रुत→सन्धि →आमर्षण→महत्त्व→विश्व→प्रसेनजित→तक्षक→वृहद्बल→वृहद्रण→उरुक्रिय→वत्सवृद्ध →प्रतिव्योप →भानु दिवाकर →सहदेव →वृहदश्व →भानुमान्→प्रतीकाश्व→सुप्रतीक→मरुदेव→सुनक्षत्र→पुष्कर→अन्तरिक्ष →सुत →संजय →शाक्य→शुद्धोद →लांगल →शूद्रक→सुरथ→सुमित्र →विचित्रवीर्य। विचित्रवीर्य के साथ ही इक्ष्वाकु वंश की समाप्ति हो जाएगी।

श्राद्ध के माहात्म्य और उसके फल का वर्णन करते हुए सूत जी शौनकादि ऋषियों को बताते हैं:—अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह का श्राद्ध करने वाले पुरुष सत् धर्म तथा अच्छी सन्तान को अवश्य प्राप्त करते हैं। पितृ-श्राद्ध एवं पिण्डदान से ही पितरों ने भीष्म को कालजयी होने का वर दिया था। सनत्कुमार आदि-पितर हैं। शास्त्र वचन के अनुसार तो पितर श्राद्ध को स्वयं अपने हाथ पर ग्रहण करते हैं परन्तु उत्तम विधि यह है कि पिण्ड को कुशा पर ही छोड़ देना चाहिए।

स्वर्ग में पितरों के सात—चार मूर्त्तिवाले तथा तीन मूर्तिरहित—गण हैं। जो लोग श्राद्ध से पितरों को तृप्त करते हैं, पितर भी उन्हें पुष्टि, आरोग्य तथा वृद्धि देते हैं। इस सम्बन्ध में एक इतिहास प्रसिद्ध है:—भारद्वाज ऋषि के सात दुष्टबुद्धि पुत्र थे। उन्होंने एक दिन ऋषि विश्वामित्र की गाय को मार कर खा लिया और आकर कह दिया कि वन में सिंह ने गाय को पकड़ लिया है। उन्होंने एक अच्छा काम यह किया था कि उस गाय के मांस से अपने पितरों का श्राद्ध कर दिया था।

सातों ही भाई इस मिथ्याभाषण और गोहत्या के पाप से दूषित होकर क्रमशः व्याघ्रपुत्र, मृग, चक्रवाक, जलचर तथा नभचर बने। इन सब योनियों में पितरों के प्रसाद से ही उन्हें उत्तम ज्ञान बना

रहा और क्रमशः उनका शाप दूर हो गया। इसका एकमात्र कारण उनका गाय का प्रोक्षण करके धर्म से पितरों के अर्पण करना ही था। इस प्रकार पितृतर्पण, श्राद्ध एवं पूजन अति पुण्यदायक है।

व्यास जी की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए सूत जी कहते हैं:—एक दिन महर्षि पराशर तीर्थयात्रा करते हुए यमुना के किनारे आए और वहाँ भोजन करते निषाद से शीघ्र ही नदी पार कराने को कहने लगे। इस पर निषाद ने अपनी पुत्री मत्स्यगन्धा को दृश्यन्ती के पुत्र महातपस्वी पराशर ऋषि का परिचय कराते हुए उन्हें नाव द्वारा यमुना नदी पार कराने को कहा।

नाव में बैठकर पराशर मुनि जब मध्य में पहुँचे तो संयोग की बात कि अप्सराओं के साग्रह प्रणय-अनुरोध को ठुकराने वाले पराशर उस निषाद बाला पर मुग्ध हो उठे और उसका हाथ पकड़ कर उससे प्रणय निवेदन करने लगे। लड़की द्वारा इन्कार करने पर पराशर ने उसका हाथ छोड़ दिया। परन्तु पार पहुँचते ही वे पुनः कामज्वर से पीड़ित हो उठे। मत्स्यगन्धा ने कहा कि कहाँ आप वशिष्ठ कुलोत्पन्न सुन्दर, सुरूप महात्मा और कहाँ मैं दुर्गन्धा और कृष्णवर्णा निषादबाला, हम दोनों का संग तो कंचन और काँच के समान नितान्त अवाञ्छनीय है। इस पर पराशर ने अपने तेजोबल से ही मत्स्यगन्धा को रूपवती पद्मिनी बाला बना दिया। पराशर उस सुबाला से मैथुन को प्रवृत्त हुए तो उसने लज्जावश कहा कि दिन के प्रकाश में उसके पितादि देख लेंगे तो उसकी क्या स्थिति रहेगी इस पर पराशर ने रात्रि के समान घनाअन्धकार उत्पन्न करके उसके साथ मैथुन किया। मैथुन के उपरान्त वह बाला बोली कि आपके चले जाने पर, आप के अमोघ वीर्य से गर्भवती हो जाने पर मेरी क्या गति होगी ? पराशर बोले—मेरी आज्ञा का सत्य-रूप में पालन करने से तू सत्यवती नाम से प्रसिद्ध होगी। तुम्हारे गर्भ से एक अद्‌भुत शक्ति वाला पुत्र उत्पन्न होगा लेकिन इतने पर भी तुम्हारा कन्याधर्म (कौमार्य) नष्ट नहीं होगा।

यह कहकर पराशर ऋषि यमुना में स्नान करके चले गये। इधर यथासमय सत्यवती ने व्यास नामक एक सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे उत्पन्न होते ही माता को प्रणाम करके कहा कि आवश्यकता पड़ने पर मेरा स्मरण करना, मैं आपकी कामनापूर्त्ति के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।

विभिन्न तीर्थों का भ्रमण करते हुए व्यास जी शिवपुरी काशी में आए तथा पिण्डदान देकर विचार करने लगे कि काशी के विभिन्न लिंगों में कौन-सा लिंग अति शीघ्र सिद्धिदायक है, जिसका आराधन कर मैं सम्पूर्ण विधाओं को पाकर पुराण-रचना की शक्ति प्राप्त करूँ। इस विचार से ही व्यास जी शिवजी के ध्यान में समाविस्थ हो गए। समाधि खुलने पर उन्होंने अपने आपको सम्बोधित करते हुए कहा कि मैंने अब जान लिया है कि अति मुक्तेश्वर क्षेत्र में मध्यमेश्वर लिंग के समान काशी में दूसरा लिंग नहीं है। यह विचार कर ही उन्होंने मध्य मेश्वर की पूजा का निश्चय किया।

गंगा में स्नान कर व्यास जी ने व्रत का प्रारम्भ कर दिया। कभी फल, कभी शाक, कभी पत्ते, कभी वायु, कभी केवल जल का सेवन करके तो कभी निराहार रह कर यमनियमादि का पालन करते हुए उन्होंने मध्यमेश्वर लिंग का विधिवत् पूजन किया, जिससे प्रसन्न होकर पार्वती जी सहित शंकर जी ने उन्हें दर्शन दिए। व्यासजी ने गद्गद् होकर उनकी स्तुति की। इस पर उन्होंने व्यास जी से वर माँगने को कहा तो व्यास जी ने मनोऽभिलषित निवेदन किया। इस पर शिवजी ने तथास्तु कहते हुए उन्हें बताया कि मैं तुम्हारे कण्ठ में बैठकर इतिहास पुराणों का निर्माण करूँगा।

मध्यमेश्वर महादेव जी के प्रसाद से व्यासदेव ने निम्नोक्त अठारह पुराणों की रचना की :—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, कूर्म, मत्स्य, गरुड़, वामन तथा ब्रह्माण्ड। इन सभी पुराणों को पढ़ने-सुनने, से पुण्य, यश तथा मोक्ष मिलता है।

ऋषि बोले— सूत जी महाराज ! अब हम आपसे भगवती जगदम्बा का सुन्दर चरित्र सुनना चाहते हैं। सूत जी बोले—हे ऋषियो ध्यान देकर इस परम पावन चरित्र को सुनो। स्वारोचिष् मन्वन्तर में विरथ का सत्यवादी तथा देवीभक्त पुत्र सुरथ हुआ। नौ राजाओं द्वारा बलपूर्वक राज्य छीन लिए जाने पर वह वन को चला गया और वहाँ एक सुन्दर आश्रम में ऋषियों के सान्निध्य में रहने लगा। वहाँ राजा अपने दुर्भाग्य और विवशता पर सदा चिन्तित तथा खिन्न ही रहता था।

एक दिन वहाँ समाधि नामक एक वैश्य ने आकर सुरथ को

बताया कि पुत्र-पौत्रादिकों ने उसके धन का हरण करके उसे घर से

निकाल दिया है और वह भटकता हुआ वहाँ आया है। उसने बताया कि इतने पर भी वह उन पुत्र-पौत्रादि के कुशल क्षेम जानने को उत्सुक है। राजा ने अपमानित करने वालों में वैश्य द्वारा प्रीति रखने पर आश्चर्य प्रकट किया तथा मेधा ऋषि के पास आकर इस विप्रतिपत्ति का कारण पूछा। ऋषि ने इसका कारण सबके मन को मोहित करने वाली मायारूपा सनातनी शक्ति बताया। राजा की जिज्ञासा पर महामाया का परिचय देते हुए ऋषि बोले—विष्णु जी के योगनिद्रा में सो जाने पर उनकी कर्ण-मल से उत्पन्न मधु और कैटभ नामक दो दैत्य विष्णु जी की नाभि-कमल में स्थित ब्रह्मा जी को मारने को उद्यत हुए। ब्रह्मा जी आत्मरक्षा के लिए विष्णु जी तथा परमेश्वरी देवी की इस प्रकार स्तुति करने लगे :—हे महामाये ! हे शरणागत वत्सले ! इन दैत्यों से मेरी रक्षा करो।

ब्रह्मा जी की प्रार्थना सुनकर फाल्गुन सुदी द्वादशी के दिन महामाया विष्णु जी के नेत्र और मुख से निकलकर ब्रह्मा जी के सम्मुख महाकाली के रूप में प्रकट हुई। देवी ने उन दैत्यों को मारने का ब्रह्मा जी को आश्वासन दिया। इसी समय भगवान् जनार्दन भी जाग पड़े।

विष्णु जी ने क्रोधित होकर सहस्र वर्ष पर्यन्त मधु-कैटभ दैत्यों से युद्ध किया और अन्त में भगवान् ने उन्हें अपनी जंघाओं पर डाल कर सुदर्शन चक्र से उनसे मस्तकों को छिन्न कर डाला।

रम्भासुर का पुत्र महिषासुर संग्राम में देवताओं को जीतकर स्वर्ग का राज्य करने लगा। तब सारे देवता ब्रह्मा जी और विष्णु जी को साथ लेकर शिवजी की सेवा में उपस्थित हुए। देवों की पीड़ा से शिवजी और विष्णु जी को बड़ा क्रोध आया और उस समय उन दोनों के मुख से और देवताओं के शरीर से तेज निकला जिसने पुञ्जीभूत होकर एक शक्तिस्वरूपा देवी का रूप धारण किया। उस शक्ति को देवों ने प्रसन्न होकर अपने-अपने सर्वोत्तम आयुध तथा सुन्दर-सुन्दर आभूषण समर्पित किए। उन्हें धारण कर देवी बारबार अट्टहास करती हुई गरजने लगी। उसकी भीषण गर्जना से धरती-आकाश काँप उठे और दैत्यगण शस्त्रास्त्र लेकर युद्ध के लिए सामने आ गए। महिषासुर भी उस गर्जना को चुनौती समझकर सजधजकर वहाँ लड़ने के लिए आ गया।

महामाया की शक्ति के आगे दैत्यशक्ति विफल और पराजित रही। देवी ने अपने शस्त्रों से दैत्यों को तहस-नहस कर दिया।

महिषासुर ने राक्षसी माया का आश्रय लेकर कभी सिंह तो कभी महिष, कभी गज और कभी अपने वास्तविक रूप को धारण कर प्रचण्ड और भीषण युद्ध किया। उसके उत्पातों और राक्षसी शक्ति को देख-कर देवता आतंकित हो उठे। अन्ततः सर्वकालमयी देवी ने अपने त्रिशूल से उसकी ग्रीवा काट दी, जिससे वह पृथ्वी पर गिरकर नाम-शेष हो गया। इन्द्रादि देवों ने भगवती अम्बिका की जय-जयकार करते हुए उनकी बहुविधि स्तुति वन्दना की।

शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों से उत्पात से पीड़ित देवता पार्वती जी की शरण में आकर उनकी स्तुति करने लगे और उनसे पीड़ाहरण की प्रार्थना करने लगे। पार्वती ने देवों को आश्वस्त किया और अन्तर्धान हो गईं।

शुम्भ-निशुम्भ के सेवकों ने पार्वती के अनुपम रूप को देखकर अपने स्वामियों से ऐसे अपरूप मनोहर स्त्री रत्न को ग्रहण करने का निवेदन किया। शुभ-निशुम्भ के आदेश पर सुग्रीव नामक दूत ने आ-कर जगदम्बा से कहा कि इन्द्रादि देवों के विजेता शुम्भ-निशुम्भ में से एक का वरण करो। देवी ने कहा कि मेरी तो प्रतिज्ञा है कि मैं अपने को संग्राम में जीतने वाले को ही अपना पति बनाऊँगी। सुग्रीव से यह सब सुन कर शुम्भ ने अपने सेनापति धूम्राक्ष को बलपूर्वक उस नारी को लाने का आदेश दिया। धूम्राक्ष देवी की प्रतिज्ञा सुनकर उससे लड़ने लगा तो देवी ने हुंकार से ही उसे नष्ट कर दिया और देवी के सिंह ने धूम्राक्ष के गणों को चबा लिया। शुम्भ ने धूम्राक्ष की मृत्यु सुनकर अत्यन्त क्रोध से अपने अत्यन्त पराक्रमी चण्ड, मुण्ड और रक्तबीज नामक वीरों को भेजा। इन्हें भी देवी ने अपने खड्ग से मृत्यु के घाट उतार दिया।

शुम्भ-निशुम्भ ने अपने वीरों को मरा सुनकर कालकेय, मौर्य तथा दौहृद आदि दुर्धर्ष वीरों को साथ लिया तथा रथ में आरूढ़ होकर वे स्वयं युद्ध करने आ गए। शत्रु सेना को देख कर देवी ने घण्टानाद कर के धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और फिर दोनों ओर से भयंकर शास्त्रास्त्र छूटने लगे। सहस्रों दैत्यों के मर जाने पर निशुम्भ स्वयं देवी के सामने आया और उन पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगा। अम्बिका ने विषैले शरों के प्रहार से निशुम्भ का सिर काट डाला। ज्येष्ठ भ्राता के वध से क्षुब्ध शुम्भ देवी पर बड़ा उग्र प्रहार करने लगा और अपने भयंकर शस्त्रों से देवी को मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाते

लगा। भगवती ने त्रिशूल से उसका भी मस्तक काट डाला। शुम्भ-निशुम्भ के मारे जाने पर अवशिष्ट दैत्य पाताल को भाग गए और देवता हर्षित होकर देवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगे।

देवों ने दानवों पर भयंकर युद्ध द्वारा विजय पाई तो उन्हें अपनी शक्ति और साहस पर गर्व हो गया तथा वे आत्मप्रशंसा करने लगे। देवों का गर्वहरण करने के लिए देवी से एक अति रूपधारी कूट तेज निकला, जिसे देखकर देवताओं ने घवड़ाकर इन्द्र के पास जाकर सारा वृत्त निवेदन किया। इन्द्र ने वायु को उसका पता लगाने भेजा तो उस दिव्य तेज ने वायु के आगे एक तिनका रखकर उसे उठाने को कहा। वायु पूरी शक्ति लगा कर भी उसे हिला तक नहीं सका। इसी प्रकार अग्नि तिनके को दग्ध न कर सका और इन्द्र द्वारा भेजा गया वरुण तिनके को आर्द्र न कर सका। तव स्तव्ध इन्द्र स्वयं उस तेज का पता लगाने गया तो वह दुःसह तेज अन्तर्हित हो गया। विस्मित इन्द्र उस दिव्य तेज का शरणागत होकर स्तुति करने लगा, तव प्रसन्न होकर चैत्र शुक्ला नवमी तिथि को मध्याह्न वेला में प्रकट होकर देवी ने कहा —मैं परब्रह्म प्रणवरूपिणी हूँ और मैंने ही दैत्यों से तुम्हारी विजय कराई है। अतः तुम गर्व छोड़ कर नम्रतापूर्वक ही मेरा स्तवन करो। उस दिन से देवताओं ने गर्व छोड़ दिया और उमा की आराधना करने लगे।

एक वार महावली रुद्र के पुत्र दुर्गम ने देवताओं से वेद छीन लिए और वह भयंकर उत्पात करने लगा। वेदों के अभाव में यज्ञकर्म बंद हो गए और ब्राह्मण आचारभ्रष्ट हो गए। तव देवता महामाया की शरण में जाकर आर्त्तवाणी से रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। देवी ने देवताओं को आश्वस्त करके दुर्गम पर अभियान कर दिया। दोनों ओर से तीखे वाण छूटने लगे। उस समय देवी के शरीर से दस देवियाँ —कालीतारा, छिन्नमस्ता, श्री, विद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगुला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी और मातंगी—प्रकट हुईं और उन्होंने दैत्य दल को नष्ट कर दिया। फिर भगवती ने दुर्गम को मार कर वेदों का उद्धार किया और सद्धर्म की रक्षा के साथ-साथ देवताओं को सुखी किया। देवताओं की स्तुति-वन्दना पर प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को आश्वस्त किया कि असुरों की वाधा से मुक्ति दिलाने के लिए वे अवतार धारण करती रहेंगी। इस देवी का नाम ही शताक्षी, शाकम्भरी तथा दुर्गा है।

सूत जी बोले—ऋषियो ! नदियों में गंगा के समान सब देवों में पराम्बा का सर्वोच्च एवं श्रेष्ठतम स्थान है। भगवती पराम्बा की प्राप्ति के तीन मार्ग—ज्ञान, कर्म और भक्ति—हैं। चित्त का आत्मा से संयोग ज्ञान योग, वाह्य-अर्थ का संयोग कर्म योग और देवी तथा आत्मा की एकत्वानुभूति भक्ति योग है। इन तीनों योगों का संयोग क्रिया योग कहलाता है। कर्म से भक्ति, भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। क्रिया योग परम साधन है।

देवी पराम्बा का मन्दिर बनाने वाला अपने सहस्रों कुलों को पवित्र करता है तथा जन्म-जन्मान्तर में वैभव और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। देवी की सुन्दर प्रतिमा बनवाने वाला निश्चय ही उमालोक को प्राप्त करता है। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया को जगदम्बा का व्रत करने वाला कोटि जन्मों के पापों से मुक्त होकर अक्षय लोक को जाता है। आश्विन शुक्ल पक्ष में नवरात्रि पर्यन्त व्रत करने वाला सभी मनोरथों की सिद्धि पाता है। कार्त्तिक, अगहन, पौष और वैशाख के कृष्ण पक्ष की तृतीया को व्रत करके पुष्प-धूप-दीपादि से मंगला देवी की पूजा करने वाला सभी मंगलों को प्राप्त करता हैं। स्त्रियों को सौभाग्यप्राप्ति के लिए यह व्रत अवश्य करना चाहिए। पुरुष भी इस व्रत से विद्या, धन, यश और पुत्रों की प्राप्ति करता है। देवी के मन्दिर का निर्माण, मूर्त्ति-स्थापन और व्रत धारण कर प्रतिमा पूजन भुक्ति-मुक्ति का दायक है। देवी पूजन से सभी मनोरथ सहज सुलभ होते हैं, इससे अधिक सुकर उपाय अन्य कोई भी नहीं हैं।

कलाश संहिता

एक समय हिमालयवासी तपोधन मुनियों ने काशी में जाकर गंगा स्नान किया और वहाँ विश्वेश्वर महादेव का शतरुद्रीय मन्त्रों से पूजन किया। उसी समय सूत जी भी पंचक्रोशी के दर्शन की इच्छा से वहाँ पहुँचे तो मुनियों को सत्संग का अच्छा अवसर मिल गया। ऋषियों ने सूत जी से महेश्वर का परम ज्ञान सुनाने की करबद्ध प्रार्थना की। सूत जी ने नैमिषारण्यवासी मुनियों को व्यास जी द्वारा सुनाया गया दिव्यज्ञान बताना प्रारम्भ किया। सूत जी बोले—पुण्यात्मा ऋषियो! एक बार नैमिषारण्य निवासी ऋषियों ने एक बृहत् यज्ञ का अनुष्ठान किया और वहाँ उस यज्ञ में पधारे व्यास जी से 'ओंकार' का अर्थ प्रकाशित करने का अनुरोध किया। व्यास जी ने कहा—विप्रो! शिव का वास्तविक ज्ञान ही प्रणव के अर्थ का प्रकाशक है और यह उसी को प्राप्त होता है जिस पर शूलपाणि महादेव प्रसन्न होते हैं। शिवभक्ति-विहीनों को तो इसकी प्राप्ति ही नहीं होती। व्यास जी ने ऋषियों को बताया कि एक बार भगवती पार्वती ने शंकर जी से पूछा था—हे महादेव जी! वेद के मन्त्रों में सर्वप्रथम प्रणव (ओंकार) का उच्चारण क्यों किया जाता है? इसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है तथा इसकी मात्राओं की संख्या और इसके देवता कितने और कौन-कौन से है? महादेव जी ने देवी पार्वती की इन जिज्ञासाओं का जिस प्रकार से समाधान किया, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

शिवजी बोले—हे देवि! प्रणवात्मक मन्त्र मेरा स्वरूप और सब विधाओं का आदिमूल वीजरूप है। इस प्रणव को जान लेना ही परम विज्ञान है। जिस प्रकार एक छोटे से वीज में बरगद का विशाल वृक्ष निहित है, उसी प्रकार इस प्रणव मन्त्र में सारे वेद सन्निहित हैं। प्रणव शिवरूप और शिव प्रणव रूप हैं इन दोनों— वाच्य और वाचक

—में कोई भी भेद नहीं। 'ईशानम् सर्वविधानम्' इस श्रुतिवाक्य के अनुसार शंकर जी ही समस्त विधाओं के आदिविधान हैं। अत: वेद-मन्त्रों के आरम्भ में प्रणव रूप में मैं ही उपस्थित हूँ। इस प्रकार यह प्रणव मेरा ही रूप होने के कारण वेद के आदि में उच्चरित होता है।

तीन मात्रा और बिन्दु-नादात्मक यह प्रणव ही सबका प्राण है। इसके आकार के रजोगुण से सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा, उकार के सतोगुण से सृष्टि-रक्षक विष्णु, मकार के तमोगुण से सृष्टि-संहर्त्ता शिव उत्पन्न होते हैं। जब साक्षात् महेश्वर देव का तिरोभाव होता है तो वे बिन्दुरूप होते हैं और सब पर कृपा करने के लिए वही नादरूप होते हैं। यहीं नाद मंगलरूप परात्पर शिव है। वही सर्वज्ञ, सर्वेश, निर्मल, अविनाशी, अद्वैत और परब्रह्म है। वही अकार की अपेक्षा सर्वव्यापक और उकार की अपेक्षा सर्वाधिक व्याप्य है—ऐसी भावना करके अकारादि पाँच वर्णों में ब्रह्म के स्वरूप को देखना चाहिए। इन पञ्चवर्णों में—सद्य, वामदेव, घोर, पुरुष और ईशान—मेरी पाँच मूर्त्तियों के दर्शन करने चाहिएँ।

वैसे तो परमात्मा शंकर जी के—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, सर्वज्ञ, संसारवैद्य और परमात्मा—यह आठ मुख्यनाम हैं, परन्तु उपाधि निवृत्त होने पर शिव, महेश्वर और रुद्र ये तीन ही नाम शिवरूप हैं। कल्याणमूर्त्ति होने के कारण शिवनाम, समस्त देवताओं में महान् होने से महादेव नाम तथा आगत कष्टों की निवृत्ति करने से और अनागत का निरोध करने से शिवजी का रुद्र नाम है। तेईस तत्त्वों से और प्रकृति से परे इन्हीं पच्चीसवें पुरुष (शिव) को वाच्य-वाचक भाव से वेदादि ग्रन्थों में ओंकार कहा गया है। इस ओंकार-रूप शिव की उपासना से ही जीव बन्धनमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

महादेव जी से प्रणव के अर्थ के प्रकाशक अति गुह्य विधान को सुनकर पार्वती ने उनकी बहुविध स्तुति की। वेदव्यास जी ऋषियों को उमा-महेश संवाद सुनाकर वहाँ से चले गए। इस दिव्य ज्ञान को देवी से स्कन्द ने, स्कन्द से नन्दी ने, नन्दी से सनत्कुमार ने, सनत्कुमार से व्यास ने और व्यास से सूत जी ने ग्रहण करके ऋषियों में प्रकाशित किया। इसके उपरान्त सूत जी शिव-पार्वती जी के पूजन के लिए कालहरित शैल पर चले गए। इधर इस दिव्य ज्ञान को सुनकर ऋषियों की परमरूप शिवजी में गहन निष्ठा हो गई, जिससे वे उनका पूजन

करते हुए यथासमय होने पर मुक्त हो गए।

एक वर्ष के पश्चात् जब सूत जी पुनः काशी पधारे तो ऋषियों के अनुरोध पर उन्होंने वामदेव जी का मत उन्हें इस प्रकार से समझाया—पहले रथान्तर कल्प में वामदेव के नाम के मुनि हुए, जो जन्म से ही वेद, शास्त्र और पुराणों के तत्त्वज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने मेरु के दक्षिण कुमार शिखर पर कार्त्तिकेय स्कन्द की बहुत प्रकार से आराधना की और उन्हें प्रसन्न किया। स्कन्द जी द्वारा वामदेव से अभीष्ट पूछने पर उन्होंने उनसे 'प्रणव' का अर्थ समझाने की प्रार्थना की, जिसे स्वीकार करते ही स्कन्द जी ने इस प्रकार से कहा—प्रणव ही साक्षात् महेश्वर है। इस प्रणव के छः प्रकार के अर्थों—मन्त्ररूप, मन्त्रभाव, वेदार्थ, प्रपञ्चार्थ, गुरुरूप तथा शिष्य के अनुरूप—से एक महेश्वर ही जाने जाते हैं। वेद में ओंकार के अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नाद से पाँच वर्ण माने गए हैं। इन पाँच वर्णों से पञ्चमुख शिवजी की पाँच मूर्त्तियाँ ही निर्दिष्ट होती हैं। आकाश के अधिपति सदाशिव समष्टिरूप और सर्व सामर्थ्यवान् हैं। महेश्वरादि चारों रूप इन्हीं की समष्टि हैं, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और महेश्वर कहा जाता है। अनन्त रूप होने से वह पुरुष वायु का अधिपति है और वे ही वाम में मायाशक्ति से युक्त सब क्रियाओं के स्वामी हैं। महेश्वर के सहस्रांश से ही रुद्र मूर्त्ति उत्पन्न हुई है। वे ही सृष्टि-रचना के समय ब्रह्मा रूप, सृष्टि-पालन के समय विष्णु रूप और सृष्टि-विनाश के समय रुद्र रूप धारण करते हैं। वासुदेव, अनिरुद्ध, संकर्षण और प्रद्युम्न आदि नाम से विख्यात चार व्यूह इन्हीं के रूप हैं। वे ही प्रणवस्वरूप भगवान् रुद्र सालोक्य, सामीप्यादि मुक्तियों के देने वाले हैं। भगवान् शिव आशुतोष हैं और आराधना से शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। सांसारिक वासनाओं से मुक्त होकर शिवजी की उपासना में निरन्तर तन्मय रहने वाले उनके उत्तम पद को प्राप्त करते हैं।

वामदेव बोले—हे ज्ञानशक्ति के धर्त्ता स्वामिन्! आप संसार चक्र का निवर्त्तक अद्वैतज्ञान मुझे बतलाने की कृपा कीजिए। स्कन्द जी ने कहा—हे मुने! जब मैं अभी दूध-पीता बालक ही था, तब यह तत्त्व ज्ञान भगवान् शंकर ने भगवती पार्वती को समझाया था। अपने पूर्व संस्कारों के कारण अद्यावधि कण्ठस्थ यह दिव्यज्ञान मैं आपको सुनाता हूँ। जिस प्रकार बिना चेतन कुम्हार के अचेतन घट नहीं बन सकता, उसी प्रकार चेतन परमात्मा के बिना प्रकृति के अचेतन कार्य

नहीं हो सकते। देह में जीवरूप चेतन के विना जड़ देह की अचेतन इन्द्रियों में काम करने की शक्ति नहीं आ सकती।

"सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म' आदि श्रुतिवाक्य उस परमेश को सत्य, विज्ञान और आनन्दस्वरूप बतलाते हैं। ब्रह्मज्ञान ही इस असत् रूप प्रपञ्च की निवृत्ति कराने वाला है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है—जो स्वयं बढ़े, जगत् को बढ़ावे और सबसे वृहत् हो। उस ब्रह्म में शिवत्व और शक्तित्व का योग बना रहता है। परमात्मा और जीवात्मा की एकता कराने वाला महामन्त्र है—'सोऽहम्।' इसी का विपरीत उच्चारण 'हंस' शब्द है। हंस नाम शुद्ध, निर्विकार, निर्गुण शिव का है। 'शिवोऽहम्' ऐसा कहने से जीवात्मा अपने में शिवत्व का अनुभव करता है और इस अनुभूति के फलस्वरूप उसे अखण्डानन्द प्राप्त हो जाता है।

'न तस्य कार्यं कारणं च विद्यते' आदि श्रुतिवाक्यों से प्रतिपादित होता है कि वह परब्रह्म परमात्मा कार्य-कारण से अतीत स्वयंभू एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। "स्वाभाविकी ज्ञान-बल क्रिया च" उस परमेश्वर की ज्ञान क्रिया और बल क्रिया सहज रूप में ही है। उसकी पराशक्ति अनेक प्रकार की है—पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रुयते"। इस ओंकार परब्रह्म में समस्त ब्रह्माण्ड समाया हुआ है और वही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र रूप धारणकर क्रमश:सृष्टि का सर्जन, पालनऔरविनाश करते हैं।

शिवभक्तियोग परमात्मा रूप है। उसकी पराशक्ति से ही चित् शक्ति, चित् शक्ति से आनन्द शक्ति और इसी से क्रमश: अच्छा ज्ञान और प्रिया शक्ति उत्पन्न हुई तथा भगवान् शिव से ईशान और ईशान से पुरुष की उत्पत्ति हुई। शिवभक्ति से नाद, विन्दु और स्वर और इनसे प्रणव मन्त्र उत्पन्न हुआ। पुरुष से अघोर वाम और इनसे सद्या-जातादि उत्पन्न हुए। मात्राओं से अड़तालीस कलाएँ, पुन: शान्ति कलाएँ शास्त्र उत्पन्न हुआ। उसके उपरान्त मिथुन पञ्चक—अनुग्रह, तिरोभाव, विनाश, स्थिति और सृष्टिरूप कृत्यों का हेतु—उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् आकाशादि क्रम से पञ्चभूत उत्पन्न हुए। इन पंचभूतों में आकाशतत्त्व में गुण शब्द है, वायुतत्त्व में शब्द और स्पर्श गुण हैं, अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप गुणवाला है, जल शब्द, स्पर्श, रूप और रस गुण वाला तत्त्व है, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तत्त्वों वाला भूत है। ये सभी तत्त्व निज भूतों में लीन होकर रहते हैं तथा गन्धादि क्रम द्वारा विपरीत भाव से व्याप्त हो रहे हैं। ये सभी तत्त्व अन्त में शिवजी में लीन हो जाते हैं। विश्व की रचना के आरम्भ

में ये सभी तत्त्व अपने-अपने गुणों द्वारा पुनः प्रादुर्भूत हो जाया करते हैं तथा शिवजी की ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति ही प्रधान रूप से उत्पन्न होकर सृष्टि रचना में संलग्न हो जाती है। शिवजी अपनी दैवी माया से पुरुष सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। ईश माया द्वारा उत्पन्न जीव अपनी मूर्खतावश माया के भ्रम में पड़कर परब्रह्म को भूल जाता है, जिसके फलस्वरूप वह विविध योनियों में पड़कर कष्ट भुगतता है।

वामदेव जी की जिज्ञासा पर उन्हें अद्वैत-द्वैत का स्वरूपगत अन्तर समझाते हुए स्कन्द जी कहते हैं—द्वैत नश्वर स्वरूप है और अद्वैत अविनाशी सनातन रूप है। अद्वैत शैव के लिए कोई स्थान नहीं। एक ही शिव सच्चिदानन्द रूप वाले और ब्रह्मा हैं, उन्हें सर्वज्ञ, सबका कर्त्ता और त्रिवेदों का उत्पादक कहा जाता है। शिवजी ही अपनी माया और इच्छा से अपने संकुचित रूप में पुरुष हो गए हैं। वही पुरुष रूप में प्रकृति के गुणों के भोक्ता हैं, वही समष्टि और वही चित्त प्रकृति तत्त्व हैं। सत्त्वादि भेद प्रकृति के गुण, प्रकृति के गुणों से बुद्धि, बुद्धि से तीन प्रकार का अहंकार, उससे तेज, तेज से मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई है। मन का रूप संकल्प-विकल्पात्मक है। इसी प्रकार इन्द्रियाँ और उनकी तन्मात्राएँ हुईं। इस प्रकार सृष्टि के सभी तत्त्व —स्थूल और सूक्ष्म, सूर्य-चन्द्रमा नक्षत्र, ब्रह्मादि देवता, देव, पितर, दैत्य, किन्नर, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष, लता, औषधि, पर्वत, समुद्र और नदियाँ सभी की उत्पत्ति ब्रह्म-ज्योति से हुई है। "सर्वं ब्रह्मा सर्वो वै रुद्रः" सभी कुछ शिवस्वरूप है—यह अद्वैतभावना करके शिवाराधन में तत्पर हो जाना चाहिए।" सदा 'शिवोऽहम्' इस भावना वाला व्यक्ति सभी वस्तुओं को प्रधान योगों से पृथक् करके सर्वत्र प्रणव के ही दर्शन करता है। ब्रह्मरूप में भेदद्रष्टा शिवजी के कोप का भाजन बनाता है।

वामदेव जी ने स्कन्द जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनसे शैव-सम्प्रदाय के उस योगपथ (ज्ञान) को बताने का अनुरोध किया, जिसके बिना जीवों को भोग-मोक्षादि की सिद्धि प्राप्त नहीं होती। स्कन्द जी बोले—हे महात्मन्! वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्त्तिक, अगहन और माघ महीनों के शुक्ल पक्ष तथा शुभ दिन में पंचमी अथवा पूर्णमासी को साधक शिष्य होकर आचार्य के चरणों का प्रक्षालन करे। गुरु के निकट मृगचर्म के आसन को शंख में पुष्प रखकर प्रणव मन्त्र से आमन्त्रित करे और गन्ध-पुष्पादि से पूजन करे,

दीपदर्शन कराए और मुद्रा से रक्षा तथा कवच मन्त्र से आच्छादित करे। इसके उपरान्त अर्घ्यविधान कर सुगन्धित पुष्प अर्पित करे। पृथ्वी पर जल छिड़क कर वहाँ घट स्थापित करे और उस घट को सूत से लपेटकर उसमें सुगन्धित जल भरे। पुनः पीपल, पाकड़, जामुन, आम और वड़ इन पाँच वृक्षों की छाल तथा पत्ते तथा गज, अश्व, रथ, वाँकी और नदी संगम की मिट्टी लेकर इन सबको मिलाकर सुवासित करे और इनसे कलश पर लेप करे। आम्रपत्र, वस्त्र, कुशाग्र, नरिकेल तथा पुष्पादि से घट को अलंकृत करे। इसके पश्चात् घट के जल में पंचरत्न—नील, माणिक्य स्वर्ण, गंगा और गोमद—उनके अभाव में सुवर्ण डाले फिर भक्तिपूर्वक सविधि पूजा करें। इस प्रकार गुरु की पूजा से और उनकी कृपा से निर्मलत्मा होवे। वस्तुतः गुरु ही शिव है, अतः उसके द्वारा निर्दिष्ट विधि से उसकी पूजा करनी उचित है। तदुपरान्त गुरु अपने शिष्य को "सोऽहं हंसः" का उपदेश दे और शिष्य यह सोचे कि वही मैं ही शिव हू। गुरु शिष्य को भस्म का परोक्ष ज्ञान कराते हुए निम्नोक्त वाईस वाक्यों में उसका तात्पर्य समझावे—

१. प्रज्ञान ही साक्षात् ब्रह्म है।
२. मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ।
३. वह ब्रह्म तू ही है।
४. वह आत्मा ब्रह्मरूप है।
५. समस्त जगत् ईश्वर से ही प्रतिष्ठित है।
६. मैं प्राणरूप हूँ।
७. आत्मा ज्ञानरूप है।
८. जो यहाँ करोगे, सो वहाँ मिलेगा और जो वहाँ है सो यहाँ भी है।
९. ब्रह्म दोनों—विदित, अविदित—से अतीत है।
१०. ब्रह्म आत्मा में अन्तर्यामी रूप से स्थित अमृत है।
११. पुरुष और सूर्य में वह एक मास रहा है।
१२. मैं ही परब्रह्म अविनाशी हूँ।
१३. मैं ही सर्वातीत, समस्त लक्षणसम्पन्न तथा वेद-शास्त्रवेत्ता सर्वज्ञ हूँ।
१४. मै ही सब प्राणियों का घट-घटवासी तथा पुरुषादित्य से तेजस्वता हूँ।

१५. तत्त्वों का साक्षी और धरा-प्राण मैं ही हूँ।
१६. पवन और गगन का प्राण मैं ही हूँ।
१७. तीन गुणों का प्राण-स्वरूप ही मैं हूँ।
१८. दोनों—जल और आकाश—का प्रकाशदाता मैं ही हूँ।
१९. अद्वितीय ज्योतिमान और सर्वगत केवल मैं ही हूँ।
२०. मैं समस्त बन्धनों से मुक्त शुद्ध-बुद्ध हूँ।
२१. यह समस्त चराचर ब्रह्मस्वरूप है।
२२. जो यह है वह मैं हूँ और मेरा ही नाम हंस है।

इसी प्रकार की भावना सर्वत्र और सभी चराचर प्राणियों में करनी उचित है। भगवान् शंकर की अमोघ शक्ति विश्व को आनन्द-दायिनी है और उसी से पृथ्वी स्थिर है।

छान्दोग्य-उपनिषद् के षष्ठ ऋषि उद्दालक ने श्वेतकेतु को यही उपदेश दिया था "अयमात्मा ब्रह्म"—यह आत्मा अविनाशी ओंकार-स्वरूप ही है। उपर्युक्त महावाक्यों में प्रयुक्त प्राण शब्द परब्रह्म का बोधक है और इस रूप में प्रणव का पर्याय है। विश्व के कार्य, कारण और कर्त्ता सदाशिव अनेक रूपों और नामों से सर्वत्र व्याप्त रहते हैं परन्तु जिस प्रकार मलिन दर्पण में मुख दिखाई नहीं देता उसी प्रकार अज्ञानान्धकार से आवृत्त लोगों को सदाशिव विद्यमान होते हुए भी प्रतिस्थापित नहीं होते। हठयोग तथा साधना से मन निर्मल हो जाता है और अन्तःकरण के शुद्ध होते ही भगवान् शंकर न केवल प्रत्यक्ष हो जाते हैं अपितु भक्त पर अनुरक्त भी हो जाते हैं। किन्तु इसके लिए मनुष्य के हृदय में सच्ची भावना होनी चाहिए। भक्त चार प्रकार के होते हैं:—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन चारों में ज्ञानी ही शिवजी को परमप्रिय हैं। अन्तर्यामी, शास्ता, नित्य और अगोचर सदाशिव भक्तों की कामनापूर्ति के लिए सदा उपस्थित रहते हैं। वेदों में शिवजी का स्वरूप स्वर्णसदृश कान्तिमान् बताया गया है। नख से शिखा तक ज्योतिस्वरूप तुरीय ब्रह्म एकमात्र शिवजी ही हैं। वे ही परब्रह्म परमेश ज्ञान शिक्षा के समय शिष्य की बुद्धि में स्वयं आकर निवास करते हैं। वेदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है :—

—सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु
—पुरुषो वै रुद्रः
—विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यतः
सर्वो ह्येष रुद्रः।

ये वाक्य स्वयं शिवजी के मुखारविन्द से निगलित एवं वेदोक्त हैं। शिष्य गुरु से इन मन्त्रों को पढ़े और प्रतिदिन शिवपूजन करे। शिष्य आधारयुत शंख-घड़ियाल का पूजन करे, मस्तक पर त्रिपुण्ड लेपन करे और समस्त देह में भस्म धारण करे। कायिक, वाचिका एवं मानसिक रूप से शिवाराधान करना मोक्षदायक है।

स्कन्द जी बोले—हे ऋषिवर वामदेव ! अब स्नान और क्षौर-कर्म का विधान सुनिए। सर्वप्रथम गुरुदेव को प्रणाम करके शिष्य उनसे अनुमति ले और फिर आचमन करके वस्त्र पहने ही हजामत करवावे। नाई के हस्तपाद धुलवा कर 'नमः शिवाय' कहते हुए अपनी अनामिका और अंगुष्ठा का स्पर्श करे तथा आँखें मींचकर शिवजी का ध्यान करे। ओंकार मन्त्र से उस्तरा और कैंची को अभिमन्त्रित करके नाई को दक्षिण की ओर से क्षौरकर्म करने को कहे। प्रथम सिर के आगे के तथा पुनः पीछे के बाल कटवाने चाहिएँ। दक्षिण की ओर वालों के रखने के लिए एक पत्ता भी रखना चाहिए। हजामत बनवाकर हाथ पैरों के नाखून उतरवाने चाहिएँ। नदीतट पर जाकर सोलह वार शुद्ध जल से कुल्ला करे। तुलसी, बेल तथा पीपल आदि वृक्षों के नीचे की मिट्टी को दोनों हाथों की मुट्ठियों में लेकर नदी में सात गोते लगावे, फिर उस मिट्टी के तीन भाग करके एक भाग सिर पर, दूसरा भाग दक्षिण हस्त से वक्षस्थल पर और तृतीय भाग वाम हस्त से शरीर के निचले भाग पर लेपन करे। इसके उपरान्त पुनः नदी में उतर कर ग्रीष्मकाल में १२ वार और शीतकाल में तीन वार गोता लगावे। किनारे पर बैठकर सन्ध्योपासन, प्राणायाम और सूर्य नमस्कार करे। इसके उपरान्त शिव-पार्वती का पूजन करे। इस प्रकार नित्यकर्म से निवृत्त होकर सदाचारी गृहस्थों के घर पर भिक्षा माँगने जाये। आश्रम में लौटकर शुद्ध आसन पर बैठकर गुरु और शिवजी का ध्यान करके प्राप्त भिक्षा का सेवन करे। संन्यासी को प्रतिदिन की आवश्यकता के अनुरूप ही भिक्षा लानी चाहिए। अवशिष्ट, वासी भोजन करना अथवा अगले दिन के लिए संग्रह करना संन्यासी के लिए वर्जित है। संन्यासी के लिए तेल, कंघा, जूता, सिले कपड़े, चाकू तथा धातुओं के बरतन आदि को रखना, पान चबाना, स्त्रीमैथुन, बालमैथुन, वीर्यपात, दिवःस्वाप तथा रात्रि-भोजन सर्वथा निषिद्ध एवं त्याज्य है। अशिक्षित संन्यासी तो राक्षस-तुल्य है। संन्यासी का मुख्य कर्तव्य शिवोपासना है और उसे नियमों का पालन करते हुए

व्रतनिष्ठ रहना चाहिए।

यतियों का दाहकर्म न करके उन्हें पृथ्वी के गर्भ में दवाना उचित है। इसकी विधि वताते हुए स्कन्द जी कहते हैं:—भृकुटि के मध्य चन्द्रमौलि शिवजी का ध्यान करके समाधिस्थ होने वाला संन्यासी साक्षात् शंकर-स्वरूप हो जाता है। स्थिर चित्त से ही समाधि लगाई जाती है। अधीरों के लिए साधन है कि वे समय और नियम का अभ्यास करके वेदान्तशास्त्र के कथित वचनों की विधि से शंकर जी के ध्यान में तत्पर रहें और अपने चित्तसे प्रणवमन्त्र को कदापि न हटावें। संन्यासी नश्वर शरीर से विरक्त होकर और मोह-माया से पृथक् होकर सदा शिवजी का ध्यान धारण करे। षोडशोपचार की विधि से शिवजी का अर्चन करे। 'ओम् नमः शिवाय' मन्त्र का उच्चारण करे। ऐसा नियम पालन करने वाला संन्यासी जब मर जाए तो धरती में एक गड्ढा वनाकर उसे उसमें बैठा दिया जाय और उस गर्त्त को मिट्टी से भर देना चाहिए। गड्ढे खोदने की व्यवस्था यति द्वारा समाधि लगाने से पूर्व ही कर लेनी चाहिए। गड्ढ में रखने से पूर्व संन्यासी के शव को गंगाजल से स्नान कराना चाहिए, उसके मस्तक पर पुष्प रखने चाहिए। पुरानी कौपीन उतरवा कर उसे नई कौपीन पहनवानी चाहिए। उसके मस्तक पर भस्मी का त्रिपुण्ड भी लगाना चाहिए और उसके वक्ष, कण्ठ, कर्ण तथा भुजा आदि में रुद्राक्ष के आभूषण पहनाने चाहिएँ। इसके पश्चात् उसे डोली में बिठाकर वाजे-गाजे के साथ गाँव की परिक्रमा करानी चाहिए और यह सब करने के उपरान्त उसे समाधि में लीन अथात् भूमि के गर्भ में गाड़ना चाहिए। खोदे गए गर्त्त को मिट्टी से पूर्ण करके, एक हाथ चौड़े और एक गज लम्वे स्थान पर आसन वनाकर उसे गाय के गोबर से लीप देना चाहिए तथा दस दिन तक धूप-दीप, अक्षतादि से इस स्थान पर पूजन करते रहना चाहिए।

ग्यारहवं दिन भूमि को साफ-सुथरा करके शिष्य उसे लीपे-पोते और पंचमण्डल की रचना करे। शिष्य उत्तराभिमुख होकर चतुष्कोण मण्डल बनाये और उस पर शंख-घंटा स्थापित करके पूजा की सामग्री रखे। पंचदेव पूजन और प्रधान रूप से शिवपूजन करके मृतक के सिर पर पुष्पमाला रखे। पश्चात् शिवजी का ध्यान करके उनसे मृतक की सद्गति की प्रार्थना करे और पुनः षोडशोपचार से शिव-लिंग का पूजन करे। इस प्रकार शिष्य अपने गुरु यति का एकादश

कर्म समाप्त करे।

यतियों के लिए शास्त्रोक्त पार्वण श्राद्ध की विधि इस प्रकार से है :—श्राद्ध-कर्त्ता शिष्य स्नान करके यज्ञोपवीत बदले और प्राणायाम करके पार्वण श्राद्ध करने का संकल्प करे। वह उत्तर दिशा में कुशासन पर बैठकर चार शिवभक्त ब्राह्मणों को निमन्त्रित करके उनके चरण धोए और उन्हें पिण्ड अर्पण करे। उनके भोजन से तृप्त होने पर उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे और पुनः पूर्व की ओर तीन कुशाओं पर—ओम् भूः स्वाह, ओम् भुवः स्वाह, ओम् स्वः स्वाह—इन तीन मन्त्रों से तीन बलि देकर शिष्य इसे सम्पन्न बनाए।

बारहवें दिन स्नान तथा नित्यकर्म से निवृत्त होकर शिष्य शिवभक्त विप्रों को निमन्त्रित करे और दोपहर को उन सबको स्वादिष्ट मिष्टान्न तथा लवणान्न का भोजन कराए। ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनका पूजन करे और उन्हें अर्घ्य प्रदान कर पुष्पमाला अर्पित करे। ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होकर लौट जाने पर वह द्वारस्थ अतिथियों का यथोचित आदर-सत्कार करे और तदनन्तर चराचर विश्वव्यापी शंकर जी का ध्यान करते हुए यति के निःश्रेयस के लिए उनसे प्रार्थना करे। तब निरन्तर शिवजी का स्मरण करते हुए उनकी कृपा के लिए उनके प्रति आभार प्रकट करे तथा प्रतिवर्ष इसी प्रकार गुरु की पूजा करता रहे। इस प्रकार गुरु का आराधक यहाँ के उत्तम भोगों को भोग कर अन्त में शिवलोक को जाता है।

स्कन्द जी वामदेव जी को यह दिव्य उपदेश देकर कैलाश की ओर चले गए। वामदेव जी ने भी स्कन्द जी का अनुकरण किया तथा शंकर जी का आराधन करते हुए वे उनके कृपापात्र बन कर वहाँ रहने लगे।

यह सब सुनाकर सूत जी बोले—मुनीश्वरो! अब मैं भी अपने गुरु की सेवार्थ बदरिकाश्रम जाता हूँ। आप लोग विश्वेश्वर की सेवा करते हुए अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त कीजिए।

वायवीय संहिता

(पूर्वार्द्ध)

एक समय नैमिषारण्य के अन्तर्गत गंगा और कालिन्दी के संगम-स्थल पर पवित्रात्मा ऋषियों ने एक वृहत् यज्ञ के अनुष्ठान का कार्य-क्रम वनाया तो वहाँ पर व्यास जी के शिष्य श्री सूत जी भी पधारे। ऋषियों ने तत्त्ववेत्ता सूत जी का यथोचित स्वागत-सत्कार करके उनसे विशिष्ट तत्त्वज्ञान सुनाने की प्रार्थना की। सूत जी ने श्वेतकल्प में वायु द्वारा निरूपित, शब्दार्थ समन्वत, निगम आगम-तात्पर्य-सुशोभित तथा सकल विद्याओं के विधान, पुराणों के प्राकश्य का वृत्तान्त उन्हें सुनाना प्रारम्भ किया। सूत जी वोले—चार वेद, छः शास्त्र, मीमांसा, न्याय,धर्मशास्त्र तथा पुराण ये सब चतुर्दश विद्याएँ कही गई हैं। धनुर्विद्या, आयुर्वेद, गन्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र को मिला देने से यह संख्या अष्टादश हो जाती है। इन अष्टादश विद्याओं के जन्म-दाता भगवान् शंकर ने विश्वसर्जन के लिए ब्रह्मा जी को उत्पन्न करके सर्वप्रथम ये विद्याएँ उन्हें प्रदान कीं। शंकर जी ने ही विश्व की रक्षा के निमित्त विष्णु को शक्ति प्रदान की। शिवजी से अष्टादश विद्याएँ पाकर ब्रह्मा जी ने सर्वप्रथम पुराणों का विस्तार किया और तत्पश्चात् अपने चार मुखों से चार वेदों को प्रादुर्भूत किया। वेदों के उपरान्त समस्त शास्त्रों की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्मा द्वारा प्रकाशित पुराणों, वेदों तथा शास्त्रों के विस्तार को सँभालने में ऋषियों के असमर्थ होने पर कृपालु शिवजी की आज्ञा से द्वापर में विष्णु ने व्यास के रूप में अवतार लिया। उन्होंने वेदों को लघु रूप देकर उनका चार भागों में विभाजन किया। इसके उप-रान्त वेद व्यास जी ने चार लाख श्लोकों की संख्या में परिमित करके पुराणों को सामान्य रूप दिया। सूत जी बोले—हे धूतपाप

ऋषियो ! उपनिषदों तथा वेदांगों सहित वेदों का अध्ययन किए जाने पर भी पूर्णता नहीं आती। वस्तुतः पुराणों के अध्ययन के विना वेदों का रहस्य हृदयंगम हो ही नहीं सकता। तत्त्ववज्ञ मुनियों द्वारा प्रकाशित पुराण अष्टादश हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ तथा ब्रह्माण्ड। इन पुराणों में चतुर्थ शिव पुराण समस्त कामनाओं का पूरक है। शिव पुराणोक्त विधान के अनुसार भगवान् शंकर की आराधना करने वाले शंकर भगवान् की कृपा से शीघ्र ही मुक्ति पा लेते हैं। मुमुक्षु साधकों को शिव पुराण का अध्ययन और शिवजी का पूजन करना चाहिए।

सूत जी बोले कि एक समय ऋषिगण ईश्वरीय सत्ता के निश्चित निर्णय में किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए और अपने संशय की निवृत्ति के लिए ब्रह्मा जी के पास गए। ऋषियों को ब्रह्मा जी ने कहा—मन और वाणी के अगोचर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि तथा मूलेन्द्रियसहित समग्र जगत् के स्रष्टा तथा सज्जनों को आनन्दप्रदाता भगवान् शंकर ही एकमात्र परमेश्वर हैं। उन भगवान् शंकर की कृपा से ही मैंने प्रजापति पद पाया है। वे ही अनेक निष्क्रिय जीवों को सक्रिय बनाते हैं तथा समग्र जगत् पर शासन करते हैं। उनके अतिरिक्त कोई अन्य ईश्वर नहीं। उनकी ही अद्भुत लीला से प्रथम यह समस्त संसार तैयार होता है और पुनः प्रलयकाल होने पर उनके भीतर ही विलीन हो जाता है। इन्हीं भगवान् शंकर के ही तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म। स्थूल रूप देवों को, सूक्ष्म रूप योगियों को और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप भक्तों को दृष्टिगोचर होता है। शिव पुराण में निरूपित साधनों से शिव पूजन करने से पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों की समानता हो जाती है और पुनः भगवान् शंकर की कृपा प्राप्त हो जाती है। कर्मफल के त्याग से शिवधर्म में प्रवृत्ति होती है। गुरु अपेक्षा वाला यह धर्म गुरुअनपेक्षा वाले धर्म से उत्कृष्ट माना गया है क्योंकि गुरुकृपा से साधना पथ के विघ्न दूर हो जाते हैं और साधक को शिव-ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। शिवज्ञान से वह संसार को असार देखने लगता है और उस स्थिति में उसकी विषयों से निवृत्ति और भाव-साधन की प्रवृत्ति हो जाती है। भावसाधन में योगसाधन और योग-साधन से शिवकृपा और शिवकृपा से शिवत्व की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

ब्रह्मा जी ऋषियों से बोले कि ईश्वरीय शिवतत्त्व को जानने के लिए तुम लोग देव परिमाण के सहस्रवर्षीय यज्ञ का आयोजन करो। यज्ञसमाप्ति पर आवाहित वायु तुम्हें शिवतत्त्व का मर्म समझाएगा। उसे समझ कर तुम लोग वाराणसीपुरी में जाकर शिव-पार्वती का आराधन कर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना। मैं अब तुम्हें मनोमय चक्र प्रदान करता हूँ। तुम इसके पीछे चलते जाओ और जहाँ इसकी नेमि टूट जाए, उस स्थान पर ही एक वृहत् यज्ञ का आयोजन करो। वह चक्र नैमिषारण्य में आकर गिरा। वहाँ पुरुरवा ने मोहवश ऋषियों की स्वर्णिम यज्ञशाला पर अधिकार करने का प्रयास किया। ऋषियों ने इस पर क्रुद्ध होकर कुशाओं के प्रहार से उसकी हत्या कर दी। इस स्थान पर ब्रह्मा जी के निर्देशानुसार ऋषियों ने सहस्रवर्षीय यज्ञ का आयोजन किया।

यज्ञ की समाप्ति पर वायुदेव प्रकट हुए और उन्होंने ऋषियों से यज्ञ का उद्देश्य और मन्तव्य पूछा तो ऋषियों ने उनसे शिवतत्त्व समझाने का अनुरोध किया। वायुदेव बोले— श्वेतरूप नामक इक्कीसवें कल्प में विश्वनिर्माण के लिए ब्रह्मा जी ने घोर तप करके शिवजी को प्रसन्न किया। शिवजी ने प्रकट होकर ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर उन्हें ब्रह्मज्ञान दिया। उसी ब्रह्मज्ञान को तप द्वारा मैंने स्वय ब्रह्मा जी के मुख से प्राप्त किया है। यह ज्ञान पशु, पाश और गति संज्ञा वाला है। अज्ञानजन्य दुःख ज्ञान से ही निवृत्त होता है। चेतन जीव और जड़ प्रकृति रूप से वस्तु दो प्रकार की है और इन दोनों का नेता ज्ञान है। वह ज्ञान पशु, पाश और यति इन तीनों की क्रमानुसार अक्षर, क्षर आर अक्षर-क्षर से अतीत संज्ञा है। पशु अक्षर है, पाश क्षर है और यति अक्षर-क्षर से अतीत है। क्षर प्रकृति तथा अक्षर पुरुष को प्ररित करने वाला परात्पर परमेश्वर है। प्रकृति माया है और मूलकम से सम्बन्ध रखने वाला माया से युक्त पुरुष है और इन दोनों के प्रेरक परमेश शिव हैं। इन्हीं शिवजी की शक्ति ही माया है आर इस माया से आवत्त होने वाला चिद्रूप है। यह आवृत्त करने वाला मल स्वयं शिवजी द्वारा ही कल्पित है और उस अन्धकार से परे वे शुद्ध बुद्ध शंकर भगवान् हैं। यह चिद्रूप जीव कर्मफल भोगने का व्यापी माया से आच्छादित होकर कलादि से उत्पन्न होता है और मल का विनाश होने पर मुक्त हो जाता है।

विद्या, राग, काल और नियति का नाम ही कला है। रजोगुण

से विषयों की अभिलाषा और उससे विद्या उत्पन्न होती है और इसी का नाम राग पड़ जाता है। शक्ति का नाम काल और पुरुष का योग ही नियति है। सुख-दुःख रूपी फलप्रद कर्म पाप-पुण्य भेद से दो प्रकार का है। भोग का कर्म विनाश के निमित्त है और इसे ही प्रवृत्ति अर्थात् माया कहा जाता है। शरीर ही भोग का साधन है। विशेष भावना द्वारा शिवजी की कृपा से जीव के मल का विनाश होता है और मल के नष्ट होने पर उसे शिवजी के स्वरूप की ममता प्राप्त होती है।

वायु ने कहा—पुरुष की ज्ञान-उत्पादिका विद्या एक शक्ति है। क्रिया उसकी व्याज कला है। काल उसका राग प्रवर्तक और देव-शक्ति उसकी नियामिका है। सत्, रज और तम रूपा प्रकृति ही अव्यक्त का कारण है। कला, क्रियात्मक और ईश्वरीय शक्ति की व्यञ्जिका है। इसी से ही सृष्टि के पूर्व अनभिव्यक्त और सृष्टि की दशा में अभिव्यक्त रूप में रहने वाला विमोहित आत्मा त्रिविध गुणों का भोक्ता है। यह अचल, सर्वव्यापक आत्मा, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर से निश्चित रूप से ही पृथक् है। कारण सहित उसका जानना तो कठिन है, केवल जन्म-परम्परा से उसकी जानकारी हो सकती है। हाँ, यह निश्चित है कि बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर आत्मा नहीं है। आत्मा एक शरीर को छोड़ कर दूसरे में प्रविष्ट होता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह शरीर से भिन्न है। वह आत्मा सब में व्याप्त और सर्वत्र स्थित होने पर भी न तो दृष्टिगोचर किया जा सकता है और न ही ग्रहण किया जा सकता है। योगीजन योग से मन शुद्ध कर उसका अनुभव कर सकते हैं।

परमपुरुष (आत्मा) देह से पृथक् है। देहात्म-भावना वाले यथार्थदर्शी न होकर भटके हुए ही हैं, क्योंकि यह शरीर तो अनेक दुःखों, रोगों तथा संकटों का भोक्ता और अन्त में मृत्यु के मुख में जाने वाला है। आत्मा तो सहस्रों शरीरों वाला है। वह एक शरीर के जीर्ण होने पर दूसरा शरीर ग्रहण कर लेता है। जिस प्रकार मेघा-वृत्त आकाश में चन्द्रमण्डल कभी प्रकाशित और कभी अप्रकाशित होता है, उसी प्रकार आत्मा देह से कभी संयुक्त और कभी वियुक्त दिखाई देता है परन्तु वस्तुतः आत्मवृत्ति. देह-भेद से सर्वथा भिन्न है। शरीरों के लक्ष्य से ही, एक ही आत्मा अनेक आकारों में दिखाई

पड़ता है। इस संसार में स्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवों का साथ तो

नदी-नाव संयोग के समान है। जीव शरीर को देखता है, आत्मा को नहीं। इन दोनों—जीव और शरीर—का द्रष्टा कोई और ही है, जिसे ये दोनों नहीं देख सकते। ब्रह्मा से स्थावरपर्यन्त सब पशु हैं। सुख-दुःख के पाश में बँधे होने के कारण ही इसकी पशु संज्ञा है। अज्ञानी और अनीश यह पशु सुख-दुःख का विषय होने के कारण स्वर्ग-नरक को जाता है। इस पाश के विमोचक पशुपति भगवान् शंकर हैं, जिनके न होने पर विश्व की रचना ही सम्भव नहीं। परमात्मा की प्रेरणा से युक्त पशु (जीव) कर्तव्य रूप में भासता है किन्तु वास्तव में यह कर्त्ता नहीं, कर्त्ता तो परमेश्वर है। प्राणियों को वह परमात्मा इस प्रकार दिखाई नहीं होता, जिस प्रकार नेत्रहीन मनुष्य को दूसरा कोई नहीं दीखता। पशु, पाश और यति इन तीनों का पूर्ण ज्ञान होने पर ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो जाता है। परमात्मा क्षर-अक्षर के संयोग से व्यक्त-अव्यक्त को धारण करते हैं वही विश्व और वही विश्वविनाशक हैं। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक तीन ही मननीय हैं। मायावी परमात्मा शिव ही अपनी ईशानी शक्तियों द्वारा समस्त संसार के शास्ता हैं। वही सर्जक, पालक और संहारक हैं। समस्त विश्व उस विराट् पुरुष शिव के नेत्र, मुख, भुजा तथा चरण आदि अवयव हैं। वह बिना नेत्रों के देखता और बिना श्रवणों के सुनता है।

इस संसार रूपी वृक्ष पर समान अवस्था वाले जीवात्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी विद्यमान हैं। जीवात्मा इस वृक्ष के कटु-मधुर फल खाता है और परिणामस्वरूप सुख-दुःखादि फल भी भोगता है। इसके विपरीत दूसरा परमात्मा उस जीवात्मा को फल भोगते हुए देखता रहता है। दसों दिशाओं में अपने तेज का प्रकाश करके वह अद्वितीय ब्रह्म, शिव उदासीन और साक्षी रूप में ही स्थिर रहता है। इस परात्पर ब्रह्म को ऋषियों ने जाना है कि यही परमेशशंकर समस्त विश्व के स्वामी हैं, इनका जनक तथा स्वामी दूसरा कोई नहीं। इन्हें जानने से ही प्राणी अपने कर्मों के बन्धन से निवृत्ति पाते हैं।

काल के सम्बन्ध में ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर वायुदेव बोले —जिसके अधीन यह विश्व निरन्तर सर्ग तथा संहार मुद्रा से चक्रवत् परिचलित होता है, वह भगवान् शंकर का ही तेज है और उन्हीं की इच्छा से विश्व का नायक है। जिस प्रकार लोहे में अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, उसी प्रकार इस कालात्मा में परमेश्वर की ही शक्ति

समाविष्ट है, जिसके बल से, वह सर्वशास्ता एवं स्वच्छन्द है। चक्रवर्ती सम्राट् भी इस काल के प्रतिबन्ध को अन्यथा करने में अक्षम हैं। यही समस्त जीवों को इच्छित-अनिच्छित तथा सुख-दुःख आदि देने वाला है। यह काल ही ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि का, बाल्य, यौवन तथा वार्द्धक्य आदि का एवं जन्म-मृत्यु का कारणभूत है। जगत् और जीवन के आधार हेतुभूत इस काल से परे केवल शिवजी ही हैं। इस काल तत्त्व को समझने वाला परमेश्वर शिव को जान लेता है।

काल की आयु का परिमाण अर्थात् अवधि की परम संख्या बतलाते हुए वायुदेव बोले—आयु का प्रथम परिमाण तो निमेष हैं। पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा, तीस काष्ठाओं की एक कला, तीस कलाओं का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात, पन्द्रह दिन-रातों का एक पक्ष, दो-शुक्ल और कृष्ण पक्षों का एक मास (शुक्ल पक्ष पितरों का एक दिन और कृष्ण पक्ष एक रात्रि) छः मासों का एक अयन और दो—उत्तरायण तथा दक्षिणायन—अयनों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन-रात होता है। इस परिमाण से मनुष्यों के ३६० वर्ष व्यतीत होने पर देवताओं का एक वर्ष होता है। देवों के वर्ष से चार हजार वर्षों का सतयुग तीन हजार वर्षों का त्रेता, दो हजार वर्षों का द्वापर और एक हजार वर्षों का कलियुग है। एक हजार बार इन चारों युगों के बीतने पर एक कल्प बीतता है और एक हजार बार चारों युगों के बीतने पर एक मन्वन्तर होता है। अब तक बीते सैकड़ों-हजारों मन्वन्तरों और कल्पों की गणना सम्भव नहीं। परमात्मा शिवजी से उत्पन्न ब्रह्मा का कल्प एक दिन के बराबर और सहस्रकल्प एक वर्ष के समान है। इस प्रकार के आठ सहस्र वर्षों की अवधि ब्रह्मा जी का एक युग है। ऐसे सहस्र युगों का एक सवन होता है और ब्रह्मा जी की पूर्ण आयु तीन सहस्र सवन है। ब्रह्मा जी के एक दिन में चौदह इन्द्र होते हैं और पूर्णायु में पाँच लाख चालीस हजार इन्द्रों की उत्पत्ति तथा विनाश हो जाता है। विष्णु के एक दिन में ब्रह्मा जी की, रुद्र जी के एक दिन में विष्णु जी की तथा ईश्वर के एक दिन में रुद्र की आयु समाप्त हो जाती है। शिवजी की पाँच लाख चालीस हजार वर्ष की आयु में समस्त सृष्टि है। परब्रह्म परमात्मा शिव कालातीत है और सृष्टि का कालान्तर उनका एक दिन है और इतनी ही उनकी

रात्रि है। दिन में वे सृष्टि की रचना और रात्रि में संहार करते हैं। लोगों के समझाने के लिए यह सब उदाहरण रूप है अन्यथा कालातीत उस सर्वशक्तिमान् सदाशिव की न कभी रात्रि होती है और न ही कभी दिन होता है।

ऋषियों की प्रार्थना पर उन्हें संसार का रचना क्रम समझाते हुए वायुदेव कहते हैं:—सर्वप्रथम सर्वशक्तिमान् शिवजी से शक्ति उत्पन्न हुई। उस शक्ति से माया और माया से अव्यक्त प्रकृति का जन्म हुआ। सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली शक्ति के आगे शान्त्यातीत, उसके आगे शान्ति, शान्ति से आगे विद्या, विद्या से आगे प्रतिष्ठा और प्रतिष्ठा से आगे निवृत्ति पद उत्पन्न हुआ। इन सब का अनुलोम से उद्भव और प्रतिलोम से विनाश होता है। सारा जगत् इन पाँच कलाओं में व्याप्त है और इसके मध्य सब कुछ आत्मा से अनुष्ठित है। मध्यादि से विशेष के अन्त तक सब उससे उत्पन्न हुए हैं परन्तु उसमें अव्यक्त और जीव का कर्त्तापन नहीं है। वही सब के पालक, पापहर्त्ता और सब से पृथक् हैं—ऐसी शाश्वतिक निष्ठा उन सत्पुरुष के मन में बैठी है, जिसे स्वल्पवेत्ता नहीं समझ सकते।

सृष्टि से प्रलय तक ब्रह्मा की दो भागों—पूर्वार्द्ध और परार्द्ध वाली—पूर्ण आयु व्यतीत हो जाती है। कार्यवश ही अव्यक्तात्मा जब विकार संयुक्त हो जाता है तब वह प्रधान तथा पुरुषधर्मी हो जाता है और उसमें तमोगुण और सतगुण समान मात्रा में स्थित रहते हैं। गुणों की यह समानता उसे तपोमय कर देती है जिससे उसका विभाग नहीं हो सकता। उस समय शान्त वायु से निश्चल जल में कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इस अज्ञात जगत् के मध्य अद्वितीय महेश्वर परम महेश्वरी रूपी निरन्तर निशा का सेवन करके, प्रातःकाल होते ही महायोग से महेश्वर प्रकृति के पुरुष के मध्य प्रविष्ट होने पर इन दोनों को क्षुभित करते हैं और तब परब्रह्म तहेश्वर की आज्ञा से सृष्टि की उत्पत्ति तथा पुनः लय होता है।

सर्वप्रथम शिवजी की आज्ञा से पुरुष अधिष्ठित अव्यक्त से बुद्धि आदि से लेकर विशेष के अन्त तक क्रमशः विकार उत्पन्न हुए और उन विकारों से अप्रतिहत शक्ति और अणिमादि सिद्धि-सम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पन्न हुए, जिनके कर्म क्रमशः उत्पत्ति, पालन तथा लय हैं। ये तीनों एक ही महेश्वर के रूप होने के कारण समान हैं। इनमें न्यूनाधिक महत्त्व की भावना विनाशमूलक है। वस्तुतः ये तीनों ही

देवता उस पुरुष-प्रकृति की आत्मा हैं, जो जगत् का सृष्टा और ईश्वरत्व में स्थित है। इनमें सर्वप्रथम बुद्धि, ख्याति और मति की उत्पत्ति हुई। फिर पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा सत्त्वरजोमय ग्यारहवाँ मन उत्पन्न हुआ। मन के अहंकार से भूतादि तन्मात्रा और उससे शब्द, शब्द से आकाश, आकाश से स्पर्श, स्पर्श से वायु, वायु से रूप, रूप से तेज और तेज से रस, रस से जल, जल से गन्ध, गन्ध से पृथ्वी और इस प्रकार पञ्चमहाभूतों से यह सारा चराचर उत्पन्न हुआ। इन सबसे मिलकर एक अण्ड उत्पन्न हुआ और उस अण्ड में ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्र से वृद्धि को प्राप्त ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। वही सृष्टि कर्म में चतुर्मुख संहार में रुद्र और पालन में सहस्रशिर कहलाता है। वही ब्रह्म तीन विभक्तियों से त्रिगुण और चार से चतुर्व्यूह, अजन्मा होने से अज तथा प्रजा की रक्षा करने से प्रजापति कहलाता है। उस महात्मा का निवास स्वर्णमय सुमेरु पर्वत है। इस अण्ड को चारों ओर से दस गुना जल, जल को दस गुना तेज, तेज को दस गुना वायु, वायु को दस गुना आकाश, आकाश को पंचभूतादि, पंचभूतादि को महतत्त्वादि और उन्हें प्रकृति ढके हुए हैं। सारा ब्रह्माण्ड प्रकृत्ति के सात आवरणों से आवृत्त है। इस प्रकार आवृति परस्पर सापेक्ष है। सृष्टि का कर्म, स्थिति और संहार कार्य करने वाले तीनों देव आपस में एक-दूसरे से उत्पन्न हो एक दूसरे को धारण करते हैं। अव्यक्त से उत्पन्न यही आधार है और यही अधेय है। अव्यक्त से होने वाला यह संहार क्रमपूर्वक रचा जाता है और रचना के विपरीत क्रम से लय होता है। काल की अधीनता के कारण ही सम और विषमगुण होते हैं। गुण की समानता होने पर सृष्टि का प्रलय और न्यूनाधिकता होने पर रचना होती है। यही बना अण्ड पितामह की योनि और ब्रह्मा जी का क्षेत्र है। इससे ब्रह्मा जी क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। प्रकृति के सर्वगामी होने के कारण इस प्रकार के हजारों-करोड़ों अण्ड स्थित हैं जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र शिवजी के सान्निध्य में स्थित हैं। व्यक्त से अव्यक्त, अव्यक्त से अण्ड, अण्ड से ब्रह्मा और ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति तथा अन्त में संहार आदि सब कुछ अप्रकृत वैभव वाले महेश्वर का ही लीलाविलास है।

मन्वन्तरों और कल्पों की चर्चा करते हुए वायुदेव कहते हैं :—
ब्रह्मा जी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर होते हैं। इस रूप में मन्वन्तरों के असंख्य होने से उन सबका वर्णन सम्भव नहीं। वर्तमान में

चल रहे वाराह कल्प को मैं उदाहरण रूप में प्रस्तुत करता हूँ। इस-से अन्य कल्पों का परिचय स्वतः हो जाएगा क्योंकि सभी कल्प एक समान हैं।

वर्तमान वाराह कल्प के चौदह—सात स्वायम्भुव और सात सावर्णिक—मनवन्तर हैं। इस समय सातवाँ वैवस्वत मनु प्रचलित है। प्रथम कल्प की समाप्ति के समय अग्निदेव ने संसार को जलाया और पुनः जल बरसा कर पृथ्वी को सागर बना दिया। दसों दिशाओं को जलपूर्ण देखकर पितामह ब्रह्मा नारायणस्वरूप होकर जल के ऊपर सा गए और तब उनका नाम नारायण पड़ा। प्रातःकाल होने पर सिद्धजनों ने विविध स्तोत्रों से स्तुति करते हुए उन्हें जगाया। निद्रा से जाग कर उन्होंने चारों ओर देखा और अपने को अकेला पाया। उन्होंने शिवजी का स्मरण किया और उनकी कृपा से यह जान लिया कि पृथ्वी जल के भीतर डूब गई है। तब उन्होंने अपने वाराह स्वरूप का ध्यान किया और अपने विशाल वाराह शरीर से जल का विलोड़न कर वे रसातल से पृथ्वी को निकाल लाए। उनके इस कृत्य का देवों ने स्वागत-प्रशंसन किया।

ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि की चिन्ता करने पर सर्वप्रथम तमोमोह, महामोह, तामिस्र, अन्ध और अविद्या ये पाँच प्रादुर्भूत हुए। फिर ध्यान धारण करने पर यह जगत् बीजकुम्भ के समान चारों ओर अन्धकार से आवृत्त दिखाई दिया। अतः आच्छादित आत्मा वाले वृक्ष, पर्वतों आदि की सृष्टि हुई। इनसे सृष्टि साधन न होते देख ब्रह्मा जी ने दूसरी सृष्टि रचने का विचार किया तो तिर्यक् (तिरछे चलने वाले) जीवों का एक स्रोत प्रकट हो गया। इन्हें असत्मार्गी देखकर ब्रह्मा जी ने तीसरी सात्त्विक देवसृष्टि की रचना की। इसके पश्चात् पितामह ने संसार के साधनरूप उत्कट दुःखमयी मानव सृष्टि उत्पन्न की। ब्रह्मा जी की पाँचवीं अनुग्रह सृष्टि चार प्रकार से अवस्थित है—(१) महत्सृष्टि (२) तन्मात्राओं की सृष्टि (३) वैकारिक सृष्टि तथा (४) ज्ञान-कर्मेन्द्रिय सृष्टि। उपर्युक्त चार—स्थावर तिर्यक्, देव और मनुष्य—सृष्टियों को मिलाकर यह संख्या आठ होती है। इनमें प्रथम तीन अज्ञानयुक्त और अन्तिम पाँच ज्ञानयुक्त सृष्टियाँ हैं।

इन सर्गों में सर्वप्रथम ब्रह्मा जी ने वीतराग और गलित-अभिमान, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार को उत्पन्न किया।

उनके सृष्टि रचना से विमुख होने पर ब्रह्मा जी ने पुनः तप का आश्रय लिया। बहुत काल तक तप को प्रभावी न होता देखकर ब्रह्मा जी के नेत्रों में अश्रु आ गए और उन अश्रुओं से प्रेतों को उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा जी ने इन्हें उत्पन्न करने के लिए अपने को कोसा। ग्लानि से मूर्च्छित ब्रह्मा जी ने शरीर त्याग दिया। उस समय नीललोहित भगवान् शंकर प्रजापति के मुख से ग्यारह रुद्रों के रूप में प्रकट हुए और शिवजी की आज्ञा से सृष्टि रचना में प्रवृत्त हुए। शिवजी ने ब्रह्मा जी के घट में प्राणों का सञ्चार किया और उन्हें 'ग्यारह रुद्रों' द्वारा रक्षित होने का आश्वासन दिया। इस पर ब्रह्मा जी ने शिवजी की बहुत स्तुति की।

ऋषि बोले—हे वायुदेव ! सृष्टि के आदि में ब्रह्मा, विष्णु को जन्म देने वाले तथा प्रलयकाल में ब्रह्मा, विष्णु अग्नि समेत समस्त विश्व का संहार करने वाले साक्षात् परमेश्वर शिवजी ब्रह्मा जी के मुख से किस प्रकार उत्पन्न हुए ?—हमारे इस संशय को दूर करने की कृपा कीजिए। वायुदेव बोले—निस्सन्देह जगत् की रचना, पालन और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को महेश्वर ने ही उत्पन्न किया है। भगवान् शंकर कभी प्रथम विष्णु को और कभी प्रथम रुद्र को और उससे विष्णु तथा ब्रह्मा को और कभी प्रथम ब्रह्मा को और उससे विष्णु तथा रुद्र को उत्पन्न करते रहते हैं। इस प्रकार ये तीनों ही एक-दूसरे से उत्पन्न होते रहते हैं। इसी सन्दर्भ में भगवान् रुद्र के प्रजापति के मुख से उत्पन्न होने का उल्लेख हुआ है। यद्यपि ये तीनों एक हैं तथापि ये तीनों सदा एक-दूसरे से विशेष होने की होड़ में रहते हैं और इसके लिए भगवान् शिव को तप द्वारा प्रसन्न करके उनसे अतिरिक्त शक्ति माँगते रहते हैं। मेघवाहन कल्प में भगवान् विष्णु ने मेघस्वरूप धारण करके देवताओं के दस सहस्र वर्ष पर्यन्त इस भूमि को धारण किया, जिसे देखकर महेश्वर ने उन्हें सर्वात्मा भाव से अव्यय शक्ति प्रदान की। इस शक्ति से विष्णु जी ने ब्रह्मासहित इस विश्व का निर्माण किया। विष्णु के वैभव को ब्रह्मा जी फूटी आँख न देख सके और उससे अधिक शक्ति पाने के लिए भगवान् शंकर का आराधन करने लगे। भगवान् शंकर के प्रसन्न होने पर ब्रह्मा ने उनसे पूर्ण समर्थ होने का वर माँगा। शिवजी से प्राप्त शक्ति से उन्मत्त ब्रह्मा ने लौटते ही विष्णु को पकड़ और जकड़ लिया। विष्णु जी अन्तर्धान हो गए और पुनः ब्रह्मा जी की भौंहों के बीच में से उत्पन्न

होकर प्रकट हो गए। शिवजी गुप्त रूप से प्रथम तो उन दोनों शक्तिशालियों का संघर्ष देखते रहे और पुनः प्रकट होकर उन्होंने दोनों में समझौता करा दिया।

कल्पान्तरों का विवरण ऋषियों को सुनाते हुए वायुदेव जी बोले—ब्रह्मा जी जब प्रत्येक कल्प में अपनी प्रजा की वृद्धि नहीं देखते तो भगवान् शंकर की शरण में आते हैं, तब महेश्वर की इच्छा से कालस्वरूप भगवान् रुद्र पुत्ररूप से प्रकट होकर ब्रह्मा को अनुग्रहीत करते हैं। एक बार जब महेश्वर भगवान् ने विकराल रुद्रों को उत्पन्न किया तो ब्रह्मा ने इन्हें सँभाल पाने में अपनी असमर्थता प्रकट की तथा उनसे जन्म-मरण-धर्मा प्रजा उत्पन्न करने की प्रार्थना की परन्तु शिवजी ने मरणधर्मा सृष्टि उत्पन्न करना स्वीकार न किया।

ब्रह्मा को जब अपनी सृष्टि बढ़ती दिखाई न दी तो उसने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने का निश्चय किया, परन्तु शिवजी ने नारी जाति को उत्पन्न ही नहीं किया था। अतः ब्रह्मा जी ने तप का आश्रय लिया। भगवान् शंकर अर्धनारीश्वर के रूप में ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्मा जी ने भगवान् महेश्वर और भगवती महेश्वरी की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। शंकर भगवान् ने ब्रह्मा के मनोरथ को जानकर अपने अंग से दिव्य गुण वाली कए परमशक्ति देवी को प्रकट किया। उस देवी के समक्ष नतमस्तक होकर ब्रह्मा ने मैथुनी सृष्टि के लिए नारी कुल की उत्पत्ति करने की प्रार्थना की। देवी ने अपनी भौंहों के मध्य से अपने ही समान तेज वाली शक्ति को उत्पन्न किया। महेश्वरी ने उस शक्ति को ब्रह्मा की कामना पूर्ण करने का आदेश दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गए। उस शक्ति से ब्रह्मा जी ने अपने आधे शरीर से मनु नाम वाले पुरुष को और आधे शरीर से शतरूपा नाम वाली स्त्री को उत्पन्न किया। मनु और शतरूपा ने मैथुन द्वारा प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्रों तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नामक तीन कन्याओं को उत्पन्न किया। प्रसूति का विवाह दक्ष से और आकूति का रुचि प्रजापति से हुआ। आकूति के यज्ञ और दक्षिणा पुत्र-पुत्री युगल रूप में पैदा हुए। प्रसूति की चौबीस—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति, ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्मति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा—कन्याएं उत्पन्न हुईं। श्रद्धादि तेरह कन्याओं का धर्म के साथ, ख्याति आदि एकादश कन्याओं का

क्रमशः भृगु, रुद्र, मरीचि, अंगिरा, पुलह, ऋतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि तथा पितर के साथ विवाह हुआ। दक्ष प्रजापति की पुत्री ही पिता द्वारा अपने पति के किए गए अपमान को न सह पाने के कारण यज्ञाग्नि में शरीर को भस्म करके हिमालय के घर मैंना के उदर से उमा नाम से उत्पन्न हुई और उसने कठोर तप द्वारा रुद्र को पतिरूप में प्राप्त किया।

भृगु ने ख्याति से विष्णुप्रिय लक्ष्मीपुत्री को तथा धाता-विधाता दो पुत्रों को जन्म दिया। धाता-विधाता के परम्परा से सहस्त्रों पुत्र हुए। वे सभी भार्गव कहलाए। मरीचि ने सम्भूति से चार पुत्रियों और एक पौर्णमास नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसी वंश में आगे चल कर कश्यप ऋषि हुए। अंगिरा ने स्मृति से आग्नीध्र और शरभ दो पुत्र और चार पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। पुलस्त्य ने प्रीति से दन्ताग्नि पुत्र उत्पन्न किया, जो आगे चलकर अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुलह ने क्षमा सें कर्दम, आसुरि तथा सहिष्णु को जन्म दिया। ऋतु ने सन्नति से बालखिल्यादि साठ हजार बालक उत्पन्न किए। अत्रि ने अनसूया से सत्यनेत्र, दृव्य, आपोमूर्त्ति, शनैश्चर और सोम नामक पाँच पुत्रों और श्रुति नामक एक पुत्री को उत्पन्न किया। वसिष्ठ ने ऊर्जा से पुण्ड-रीक आदि सात पुत्र उत्पन्न किए। इन सब की आगे चलकर सैकड़ों-हजारों सन्तानें हुईं, जिनसे विश्व भर गया। ब्रह्मा जी के मानसपुत्र रुद्र रूप अग्नि ने स्वाहा से पावक, पवमान और शुचि नामक तीन पुत्र जने। पितरों—अयज्वान् और अग्निष्ठवान—ने स्वधा से मैंना और धरणी को पैदा किया। मैंना और धरणी का विवाह हिमाचल से हुआ ओर मैंना के दो पुत्र तथा गौरी और गंगा दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। धरिणी ने मन्दराचल पुत्र को तथा वेला, आयाति और निर्याति तीन कन्याओं को जन्म दिया। सागर की वेला से उत्पन्न कन्या सपर्णा का प्राचीन बर्हिषू से विवाह हुआ, जिससे उसे प्रचेतस् नामक दस पुत्र हुए। इन्हीं का पुत्र दक्ष शिवजी के शाप से चाक्षुष मन्वतर में उत्पन्न हुआ।

ऋषियों ने पूछा—हे वासुदेव ! शिवजी ने दक्ष को शाप क्यों दिया—यह सब आप हमें बतलाने की कृपा करें। वासुदेव बोले—मुनीश्वरो ! एक समय देवता, दैत्य, सिद्ध, ऋषि तथा गन्धर्व आदि उमासहित भगवान् शंकर के दर्शनार्थ कैलाश पर्वत पर गए। उस सभा में जब पार्वती परमेश्वर बैठे हुए थे तो कुछ देवताओं के साथ

दक्ष भी वहाँ पहुँचा और पार्वती से अतिरिक्त सम्मान न पाकर रुष्ट हो गया। इसी रोष के कारण उसने अपने वृहत् यज्ञ में उमा-महेश को निमन्त्रित नहीं किया। नारद द्वारा अपने पितृगृह के आयोजन को सुनकर पार्वती अनाहूत ही वहाँ गई परन्तु दक्ष ने उसका स्वागत न किया। पार्वती ने जब शंकरसहित उसकी उपेक्षा करने के लिए दक्ष को बुरा-भला कहा तो दक्ष शिवजी को ही अपशब्द कहने लगा, जिससे दु:खी होकर पार्वती ने यज्ञाग्नि में अपने प्राण त्याग दिए। सती के देहत्याग का समाचार सुनकर शिवजी ने दक्ष और उनके सभी जामादों को चाक्षुष मन्वन्तर में जन्म लेने का शाप दिया। शिवजी के शाप देते ही दक्ष का अध:पतन हो गया।

दक्ष ने अश्वमेघ यज्ञ में शिवजी को छोड़कर अन्य सभी देवताओं को निमन्त्रित किया था। शिव जी का यज्ञ भाग न देखकर महात्मा दधीचि ने इस अनौचित्य के लिए जब दक्ष से पूछा तो उसने उलटा-सीधा उत्तर दिया। यज्ञाधिपति रुद्र की उपेक्षा करने वाले दक्ष के यज्ञ का दधीचि ने बहिष्कार कर दिया। उन्होंने यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त न होने की और किसी अनिष्ट के उपस्थित होने की भविष्य-वाणी की। इसके पश्चात् सती के देहपात की घटना घटी। जिसे सुनकर शिवजी ने वीरभद्र को प्रकट करके उसे उमा की देह से उद्-भूत भद्रकाली के साथ दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने के लिए भेजा।

यज्ञस्थल में पहुँचकर वीरभद्र ने गुरु-गम्भीर गर्जन करके यज्ञ को विध्वस्त करना प्रारम्भ कर दिया। शिवगणों ने याज्ञिकों को मण्डप के स्तम्भों से बाँध दिया। यज्ञ पात्रों को तोड़-फोड़कर गंगा जी में फेंक दिया। अन्नादि को नष्ट कर देवताओं को मारा-पीटा। वीर-भद्र के उपद्रवों से संत्रस्त विष्णु आदि देवता यज्ञभूमि से भागने लगे। शिवगणों ने घेरकर देवताओं को पकड़ लिया और शूलादि के प्रहार से उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया। वीरभद्र ने सरस्वती की नासिका का अग्रभाग, अदिति के हस्त का अग्रभाग, अग्नि की भुजा तथा जिह्वा, स्वाहादेवी का सव्य नासापुट काट डाला। उसने भृगुदेवता के नेत्र और पूषा के दाँत निकाल लिए। चन्द्रमा को पैर के अँगूठे के नीचे दवाकर कीड़े के समान मसल दिया। दक्ष का मस्तक काटकर भद्र-काली के हाथ में दे दिया, भद्रकाली गेंद के समान उससे खेलने लगी।

वीरभद्र के उपद्रव से विक्षुब्ध विष्णु व इन्द्रादि देवता युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गए। विष्णु जी ने शार्ङ्ग धनुष से तीखे बाण छोड़

कर वीरभद्र पर प्रहार किया और इधर वीरभद्र ने जैत्र धनुष को टंकार कर विष्णु के मस्तक पर वाण छोड़े, विष्णु ने क्रुद्ध होकर वीरभद्र की भुजाओं पर वाण मारा तो वीरभद्र ने भी वैसा ही किया। इस प्रकार दोनों वीरों में तुमुल युद्ध छिड़ गया। कुछ देर में वीरभद्र ने कठिन वाण विष्णु के वक्ष:स्थल में मारा, जिससे वे व्याकुल होकर भूमि पर गिर पड़े और मूर्छित हो गए। सचेत होने पर उन्होंने वीरभद्र को अपने दिव्यास्त्रों का लक्ष्य बनाया परन्तु वीरभद्र ने उन्हें शान्त कर दिया और साथ ही विष्णु के धनुष को और गरुड़ के पंखों को काट डाला। अब विष्णु जी सुदर्शन चक्र चलाने को उद्यत हुए परन्तु शिवजी की माया से वे वहीं स्तम्भित हो गए। यह सब देखकर वीरभद्र के वाणों से व्याकुल देवता वहाँ से भाग निकले, परन्तु शिवगणों ने उन भागते हुए देवताओं को बन्दी बना लिया। ब्रह्मा जी ने वीरभद्र की अनुनय-विनय करके विष्णु, इन्द्रादि देवताओं को बन्धनमुक्त करा दिया। वीरभद्र ने सब देवताओं को लाकर शिवजी के समक्ष खड़ा कर दिया। शिवजी ने उन्हें प्रबोधित करते हुए कहा कि उनके अपने अपराध के कारण ही उन्हें दण्डित होना पड़ा है। देवगण भगवान् शंकर की स्तुति-वन्दना करने लगे तथा उनसे मृत देवों को जीवित और क्षत-विक्षत तथा छिन्नांगों को स्वस्थ करने की प्रार्थना करने लगे। शिवजी ने प्रसन्न होकर वैसा ही कर दिया। शिवजी की आज्ञा से ब्रह्मा ने दक्ष की देह पर बकरे का सिर रखकर उसे जीवित कर दिया। दक्ष ने नतमस्तक होकर शिवजी से क्षमा-याचना की। उसने स्वीकार किया कि भगवान् शंकर ही विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और संहृति करने वाले हैं। पश्चात्ताप के रूप में अविरल अश्रु बहाते दक्ष को देखकर शिवजी ने उसे अपने गणों का स्वामी बना दिया।

इसके उपरान्त भगवान् शंकर ने देवताओं से कहा कि कृतकर्म का फल भुगतने के लिए जीव परतन्त्र एवं बाध्य है। आप लोग भी अपने कर्मों का फल पा चुके हो, अत: अब अपने अपने धाम को प्रस्थान करो। यह कहकर उमा सहित महेश्वर अन्तर्हित हो गए। विष्णु इन्द्रादि देवता शिवजी का गुणगान करते हुए वहाँ से लौट गए।

प्रजा के बढ़ जाने पर शुम्भ-निशुम्भ नामक दो अत्यन्त पराक्रमी दानव उत्पन्न हुए। इन दोनों ने अपने तप से ब्रह्मा को प्रसन्न करके उनसे अपने अवध्य होने का वरदान पाया। ब्रह्मा जी ने उन्हें वर देते

हुए कुमारी कन्या के प्रति कुदृष्टि न रखने की चेतावनी दी।

शुम्भ-निशुम्भ ने अपने पराक्रम से इन्द्र को जीत कर स्वर्ग पर अपना आधिपत्य जमा लिया ब्रह्मा जी देवों की असहाय स्थिति से चिन्तित होकर शंकर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे भगवती पार्वती को रुष्ट करने का अनुरोध करने लगे। भक्तों पर अनुग्रह करने वाले भोलेनाथ पार्वती के समक्ष जाकर नारीकुल की निन्दा करने लगे, जिसे सुनकर उमा को भी क्रोध आ गया और वह बोलीं—यदि आप नारी जाति के निन्दक हैं तो मेरे साथ रमण क्यों करते हैं ? नारी शरीर को छोड़ने का निश्चय करके उमा शिवजी से तप करने को जाने की अनुमति माँगने लगी। शिवजी ने उमा को समझाने की बहुत चेष्टा की परन्तु उमा को यह भ्रम हो गया कि उसके कालेपन के कारण ही शिवजी नारी जाति की निन्दा के बहाने उसका अपमान कर रहे हैं। तव उसने तप द्वारा गौर वर्ण पाने का निश्चय किया और तप के लिए चल दी। हिमाचल के एक मनोरम स्थल में उमा घोर तप करने लगी। वहाँ एक सिंह ज्यों ही उन्हें खाने को लपका त्यों ही उमा के तेज से चित्रस्थ होकर स्थिर बनकर खड़ा हो गया। उसने मानवी मांस की आशा में रात-दिन वहीं खड़े रहने का निश्चय किया तो देवी ने उसे अपना भक्त जानकर उसका उद्धार कर दिया। वहीं रहकर वह भगवती की सेवा करने लगा।

दानवों के उपद्रवों से त्रस्त देवता ब्रह्मा जी के पास आए तो उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा जी पार्वती की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे तप का उद्देश्य पूछने लगे। उमा देवी ने कहा कि शिवजी से सर्वप्रथम आपकी उत्पत्ति होने से आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। प्रजा की वृद्धि के लिए रुद्र में भगवान् शंकर आप के मुख से प्रकट हुए हैं—इस नाते आप मेरे श्वसुर हैं। मेरे पिता हिमाचल थे। पिता होने के नाते आप मेरे पितामह हैं। अत: मैं आप से कुछ नहीं छिपाऊँगी। मेरे तप का उद्देश्य कृष्ण वर्ण की छोड़ कर गौर वर्ण पाना हैं।

ब्रह्मा जी बोले— देवि ! यह रूप-परिवर्तन तो आप स्वेच्छा से ही कर सकती हैं। इस समय अब शुम्भ-निशुम्भ का वध करके देवों को सुखी बनाने की कृपा कीजिए। ये दानव आप के सिवाय किसी से भी नहीं मर सकते। ब्रह्मा जी के इस कथन पर उमा ने उस देह को त्याग कर गौरी का रूप धारण किया। उमा के त्यागे शरीर से काली कौशिकी नाम की कन्या उत्पन्न हुई और ब्रह्मा जी द्वारा दिये शस्त्रास्त्र

से सन्नद्ध होकर और रथ पर आरूढ़ होकर विन्ध्याचल को चल दी। वहाँ उसने शुम्भ-निशुम्भ का वध करके देवों को सुखी बनाया।

इसके पश्चात् गौरी देवी मन्दराचल पर शिवजी के पास लौटी। शिवजी ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया। उमा ने कौशिकी का और सिंह का शिवजी से परिचय कराया। उमा का इच्छानुसार शिवजी ने कौशिकी को आराध्य देवी के रूप में और सिंह को नन्दी राज-भवन के द्वारपाल के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

वायुदेव बोले—मुनियो! रुद्र का घोर तेजस्वी शरीर ही अग्नि है और शान्ति से पूर्ण जगदम्बिका गौरी का शरीर अमृतमय सोम है। इसे शक्ति का शान्तिमय शरीर भी कहते हैं। तेज सूर्यस्वरूप और अग्निस्वरूप होने के कारण दो प्रकार का है। इसी प्रकार सोमस्वरूप तथा जलस्वरूप होने के कारण इसकी वृत्ति भी दो प्रकार की है। तेज विद्युन्मय और रस मधुरादिमय है। तेज और रस के भेद से ही चराचर जगत् की स्थिति है। अग्नि से ही अमृत की उत्पत्ति होती है और घृत या अमृत अग्नि की वृद्धि करता है। अतः लोककल्याण के लिए ही अग्नि में अमृत की हवि दी जाती है। हवि के निमित्त अन्न की उत्पत्ति होती है और अन्न की वृद्धि के लिए वर्षा होती है। इस प्रकार अग्नि और अमृत ने ही संसार को धारण कर रखा है। ऊपर की ओर जलता हुआ अग्नि वहाँ तक बढ़ता है, जहाँ से कि सोम से उत्पन्न अमृत नीचे गिर रहा है। ऊपर को जाने वाले इस कालाग्नि को शक्ति ने और नीचे को गिरने वाले सोम को शिव ने धारण कर रखा है। इस जगत् के नीचे शक्ति और ऊपर शिव अथवा नीचे शिव और ऊपर शक्ति है। एक बार अग्नि ने इस जगत् को जलाकर भस्म कर दिया था, तब से भस्म को अग्नि का वीर्य कहा जाता है। इस तत्त्व को जानकर भस्म से स्नान करने वाला संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

इस लोक में सभी शब्द अर्थयुक्त हैं। शिव तथा उमा शब्दों का अर्थ प्रकृति और मूर्त्तिभेद से दो प्रकार का है। शब्दस्वरूपिणी विभूति तीन—स्थूल, सूक्ष्म और पर—प्रकार की कही गई है। पराशक्ति ही शिवतत्त्व का आधारभूत है। ज्ञान और शक्ति के योग से इच्छा सहित समस्त शक्तियों का समष्टि रूप ही शक्तितत्त्व है। यही परमादेवी कुण्डलिनी माया है। विभाग की दृष्टि से यह छः मार्ग वाली है। तीन शब्दमार्ग हैं और तीन ही अर्थमार्ग हैं। मन्त्र, पद और

वर्ण शब्द के तथा भुवन, तत्त्व और कला अर्थ के मार्ग हैं। इन सबका आपस में व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध है। वाक्य के भाव से पद और पदों से समस्त वर्ण पूर्ण हैं। भुवनों में वर्ण का ही आधार है। सभी तत्त्व यथोचित कलाओं से परिपूर्ण हैं।

परा-प्रकृति की परिणामरूप से पाँच—कला, निवृत्ति प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति—स्थितियाँ है। पराशक्ति इन से परे षट् मार्गों में विभक्त है। वही सर्वत्र व्याप्त है। वही पर-प्रकृति का भाव है और वही सत्त्वादिक गुणों से शिवतत्त्वरूप है। आदिशक्ति से लेकर पृथ्वी तक शिवतत्त्व प्रकट है और यही शिव का परमधाम है। इसी में व्यापिका शक्ति विद्यमान है और यही पंचतत्त्वों के शोधन से ज्ञात होता है। निवृत्ति कला से लेकर रुद्र तक अण्ड की स्थिति का शोधन किया जा सकता है। प्रतिष्ठा कला से अव्यक्त अगोचर की, विद्या कला से विश्वेश्वर तक की, शान्ति कला से ऊर्ध्व मार्ग तक की शुद्धि की जा सकती है। शान्ति के बाहर पर-प्रकृति के मेल से परम व्योम है। इन्हीं पाँच तत्त्वों से सारा जगत् व्याप्त है। इसकी उपेक्षा करने वाला साधक शुद्धि से वञ्चित, विफलश्रम और अधोयोनि को जाने वाला होता है। शक्तिपातयोग और तत्त्वव्याप्तियोग के ज्ञान के बिना विशुद्धि का जानना सम्भव नहीं, क्योंकि शक्ति ही परमाज्ञा शिव-सम्बन्धी चिद्रूपा परमेश्वरी है, उसी से साधनभूत होकर शिव सब में अधिष्ठित है। न आत्मा, न माया और न यह विचार है। बन्ध और मोक्ष को देने वाली शिव की वही अव्यभिचारिणी शक्ति ही है, जो उन-उन भावों से शिव की सहधर्मिणी है। उस गृहिणी से ही शिव गृही तथा गृहस्थी है और उस कर्त्ता शिव का कार्य यह जगत् है। इसी से वे जगत् के माता-पिता हैं। शिव और शक्ति वास्तव में एक हैं। कुछ लोग स्त्री-पुरुष रूप से उनमें भेद मानते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्य से भिन्न भी है और अभिन्न भी, उसी प्रकार से शक्ति शिव का सम्बन्ध है। शिव परम कारण रूप है, उनकी आज्ञा ही वह परमेश्वरी है, वही शिव की अविनाशिनी शक्ति तथा त्रिगुणात्मिका महामाया कहलाती है। वह कार्य भेद से विविधा होकर छः मार्गों को प्रकट करती है। शब्द और अर्थ स्वरूप वाले छः प्रकार के मार्ग समस्त संसार में व्याप्त तथा शास्त्रों में वर्णित हैं।

ऋषि बोले—भगवन्! शिवा-शिव का यह तत्त्वज्ञान तो बड़ा ही विचित्र, गहन और मोहक है। शिवजी का ऐश्वर्य सर्वतन्त्र स्व-

तन्त्र है, परन्तु जगत् के कारण होने से उनका स्वतन्त्र स्वरूप सिद्ध नहीं होता। वेदों में सर्वत्र उनका निर्गुण स्वरूप कहा गया गया है, तब उन एक ही के निर्गुण और सगुण दो रूप कैसे हो गए ? क्या सम्पूर्ण जगत् को अपने में अधिष्ठित करने वाले निर्गुण शिव और सगुण शिव दोनों एक हैं अथवा पृथक्-पृथक् हैं ? मूर्त्ति हो जाने से तो मूर्त्तिमान उस मूर्त्ति में परतन्त्र हो जाता है। इसके अतिरिक्त निरपेक्ष की कल्पनामूर्त्ति तो हो ही नहीं सकती है ? साध्यफल की इच्छा से ही मूर्त्ति का स्वीकार होता है। अपनी इच्छानुसार भी शरीर स्वाधीनता के लिए नहीं होता। अपनी इच्छा भी मनुष्यों के कर्मों के अनुकूल ही होती है। कर्म के अधीन रहने वाले ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक क्या सभी अपनी इच्छा से ही शरीर धारण करते हैं ? एक अन्य आशंका यह है कि शिवजी सबों पर अनुग्रह करने वाले कहे गए हैं। यह कैसे सिद्ध होगा जब कि उन्होंने बहुतों का विनाश भी किया है। शिवनिन्दा करने पर ब्रह्मा जी का पाँचवा मस्तक उन्होंने ही काटा, विष्णु के नृसिंह रूप को शरभ रूप से उन्होंने ही शान्त किया। दक्षयज्ञ में देवताओं और उनकी स्त्रियों को वीरभद्र द्वारा उन्होंने ही दण्डित कराया। त्रिपुर तथा कामदेव को अपनी नेत्राग्नि से उन्होंने ही भस्म किया। उन्होंने ही त्रिशूल से जलन्धर को मारकर दैत्यकुल को नष्ट किया। उन्होंने ही त्रिशूल से अन्धकासुर को, कण्ठ से कालरूपा स्त्री उत्पन्न कर दारुक को, गौरी की त्वचा से कौशिकी को उत्पन्न कर के शुम्भ-निशुम्भ को तथा अपने रोष से तारकासुर को नष्ट किया। शिवजीने ही स्कन्द को उत्पन्न करके उसे देवसेना का सेनापति बनाया और उससे दैत्यकुल का विनाश कराया। कैलाश को भुजाओं से उठाने वाले रावण को अपने पैर के अँगूठे से दबाने वाले तथा मार्कण्डेय को दीर्घायुष्य देने वाले यही शिवजी ही हैं। इस प्रकार उनके सारे कार्य मानवीय—अनुकूल पर अनुग्रह तथा प्रतिकूल पर आक्रोश—हैं। इस स्थिति में उन्हें निर्गुण तथा सब पर अनुग्रह करने वाला कैसे माना जा सकता है ? एक और विचारणीय बात यह है कि यदि शिव परमशान्त और सब पर अनुग्रह करने वाले हैं तो वे सबको एक बार ही मुक्त क्यों नहीं कर देते ? प्रारब्ध रहते मुक्ति सम्भव न होने का तर्क संगत नहीं लगता क्योंकि कर्मों का कारण भी तो ईश्वरप्रदत्त ही होता है ?

वासुदेव बोले—ऋषियो ! बुद्धि की सावधानता नास्तिकता

नहीं। आप लोगों ने सत्पुरुषों का मोह दूर करने के लिए अत्युत्तम प्रश्न किए हैं। मैं आपको उनका उत्तर देता हूँ। शिवजी निश्चित रूप से सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। परन्तु 'स्वतन्त्र हैं' शब्द का अर्थ निरपेक्ष नहीं। अनुग्रहीता को परतन्त्र मानने से वो मुक्ति का अन्वय ही न होगा।

सगुण के द्वारा ही निर्गुण की प्राप्ति सम्भव है। इसीलिए ही परमकारण शिव अनुभवों से साक्षात् साकार होते हैं। काष्ठादि में अग्नि के समान प्रतिमादि में दिखाई न पड़ने पर भी शिवजी विद्यमान रहते हैं। अतः शिवप्रतिमा को सत्य मानकर उसका नित्य अर्चन करना चाहिए।

भोगों की प्राप्ति में सुख-दुःखरूपी कर्मों की प्रधानता है। जब शिवजी में कर्म नहीं तो भोग कहाँ से मिल सकता है? शिवजी अनुग्रहकर्त्ता हैं, निग्रहकर्त्ता नहीं। दोष पर ही वे ब्रह्मादि को दण्डित करते हैं। योग्यों में तो दण्ड की प्रशंसा होती है। यदि शिवजी अपनी ईश्वरता न करें तो वे जगत् के ईश्वर कैसे सिद्ध होंगे? पुत्र को निग्रहपूर्वक शिक्षा देने से भी पिता दोषी नहीं कहा जाता। अज्ञों को दण्ड देने में न्यांयतः कुछ कठोरता रहती है परन्तु इसे अनुचित कदापि नहीं माना जाता। निदानपूर्वक रोग का नाश करने वाला वैद्य तो कठोर के स्थान पर दयावान् ही कहलाता है। पापियों की उपेक्षा करना तथा उन्हें दण्डित न करना पाप को संरक्षण देना है।

मूर्त्त आत्मा वाले में राग तथा रोगादि दोष होते हैं परन्तु शिवजी की स्थिति इससे भिन्न है। जिस प्रकार कालिख लगे ताँबे के संसर्ग से अग्नि दूषित नहीं होती, उल्टे अपवित्र वस्तु ही अग्नि के संसर्ग से शुचि हो जाती है, ठीक इसी प्रकार शिवसंसर्ग द्वारा शोधन से आत्मा शुद्ध हो जाती है। जिस प्रकार अंगारता काष्ठ में है, अग्नि में नहीं, उसी प्रकार मूर्त्ति में ही शिव का ऐश्वर्य है, शिव में मूर्त्ति का नहीं। शिव का आवेश ही शिवत्व है और उनका हित ही अनुग्रह है। जिस प्रकार अग्नि सुवर्ण को ही द्रवित करता है, अंगार को नहीं, उसी प्रकार शिवजी भी उत्तम स्वभाव वालों पर ही अनुग्रह करते हैं, दुष्टवृत्ति वालों पर नहीं।

मलिन आत्मा की ही जीव संज्ञा है। कर्म और माया से ही इसका नाम संसार पड़ा है। ज्ञान-ऐश्वर्यादि की विषमता ही अर्ध्व-अधः स्थिति का कारण है। देवताओं की उत्तम योनि आठ हैं। मनुष्य योनि मध्य में है और पशु आदि पाँचयोनि अधः में हैं। उच्चावच योनि में

जाना जीव के अधीन है। पशु आत्मा के भी सत्, रज और तुम तीन प्रधान भेद हैं। इन्हीं उपाधि भेदों से निवृत्त करने वाले वैद्यनाथ शिवजी हैं। जिस प्रकार वैद्य के निर्देशों का उल्लंघन करने से स्वस्थ न होने वाला रोगी स्वयं अपराधी होता है उसी प्रकार शिवजी की आज्ञा का पालन न करने से दु:खी रहने वाला व्यक्ति अपनी दुर्दशा के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है।

यह सब बताने के उपरान्त वायुदेव बोले—मुनियो ! ज्ञान दो प्रकार का है :—परोक्ष और अपरोक्ष। अस्थिर को परोक्ष और सुस्थिर को अपरोक्ष कहा जाता है। हेतु और उपदेश परोक्ष ज्ञान हैं। अपरोक्ष के लिए अनुष्ठान करने से वह प्रकट हो जाता है और वही मोक्ष का हेतु है, अत: उसके लिए प्रयत्न अपेक्षित है।

प्रत्यक्ष ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति के लिए शिवाराधन ही उत्तम अनुष्ठान है। यह अनुष्ठान पाँच प्रकार का है :—क्रिया, जप, तप, ध्यान और ज्ञान। वेदों के अनुसार धर्म के दो रूप हैं :—उत्तम और अधम। उपनिषद में योग को लेकर आगे परम (उत्तम) धर्म का और इससे पूर्व अपरम (अधम) धर्म है। परमधर्म में पूतात्माओं का अधिकार है। इतिहास, पुराण तथा शिवाशास्त्र आदि में शिवाराधन को ही परम धर्म कहा गया है। प्रत्येक युग में स्वयं शिवजी योगाचार्य के रूप में अवतरित होकर परम धर्म का प्रचार करते हैं। रुद्र, दधीचि, अगस्त्य और उपमन्यु आदि ऋषि तथा उनके सहस्रों शिष्य पशुपति संहिता का प्रचार करते हैं।

पाशुपत योग में निहित आठ प्रकार के योगों से तुरन्त ही शिव-बुद्धि हो जाती है। शिवजी के शिव, महेश्वर, रुद्र, पितामह, विष्णु, संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा ये आठ कल्याणप्रद मुख्य नाम हैं। शिवतत्त्वज्ञों का कथन है कि समस्त मांगलिक गुणों के निधान और सबके स्वामी होने के कारण ही शिव की शिवसंज्ञा है। तेईस तत्त्वों के बाहर प्रकृति, प्रकृति से बाहर पुरुष और पुरुष से बाहर होने से वे महेश्वर हैं। प्रकृति और पुरुष उन्हीं के वशीभूत हैं। दु:ख तथा दु:ख के कारणों को दूर करने के कारण परमशिव रुद्र कहलाते हैं और जगत् के मूर्तिमान् पितर होने के कारण पितामह, देदीप्यमान् एवं सर्वव्यापक होने के कारण सदाशिव विष्णु, मनुष्यों के भव रोग को दूर करने के कारण संसारवैद्य और संसार के सब कार्यों को जानने के कारण सर्वज्ञ तथा अपने से भिन्न किसी अन्य आत्मा के

अभाव के कारण वे परमात्मा हैं।

साधक को सर्वप्रथम आचार्य से शिवजी के इन आठ नामों को प्राप्त करना चाहिए और पुनः आचार्य-निर्दिष्ट विधि से शिवादि पाँच नामों से निवृत्ति और कलाग्रन्थि का यथाक्रम छेदन करके इन नामों का आवर्त्तन करना उचित है। उसे अधिष्ठान क्रम से कुछ शोध कर प्राणायाम द्वारा मूलाधार को जाग्रत करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट हो कर आठ आकारों का भेदन करना चाहिए तथा यह विधि भी गुरु से ही सीखनी चाहिए। साधक को स्वस्थचित्त होकर नामाष्टक से अर्ध-नारीश्वर का ध्यान, पुष्पों से अष्टनामों की पूजा, जप तथा आत्म-निवेदन करना चाहिए। इस साधन को अपनाने से जीव को पशुपत ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है।

वायुदेव अथर्ववेद तथा शिरसू उपनिषद् में वर्णित पाशुपत व्रत की विधि इस प्रकार से बताते हैं:—यह व्रत चैत्र पूर्णमासी को किया जाता है। त्रयोदशी के दिन स्नानादि से निवृत्त होकर अग्निहोम करके आचार्य की पूजा करे और उनसे आज्ञा लेकर श्वेत वस्त्र, माला, चन्दन आदि धारण करके कुशासन पर बैठे और हाथ में कुश लेकर जितनी अवधि के लिए व्रत करने की भावना हो—आजीवन, बारह वर्ष, छः वर्ष, तीन वर्ष, एक वर्ष, छः मास, तीन मास, एक मास, बारह दिन, छः दिन, तीन दिन अथवा एक दिन—वैसा संकल्प करे। इसके पश्चात् पञ्चाक्षरी मन्त्र का जाप करता हुआ घी, समिधा और चरु से सविधि विरजा होम करे। इस समय वह यह धारणा करे कि मेरी देह के तत्त्व शुद्ध हो रहे हैं। इसके पश्चात् गोबर का एक पिण्ड बना कर उसे अग्नि में रख दे और हविष्य अन्न का भोजन करे। दूसरे दिन चतुर्दशी को भी वहीं पूजन, हवन आदि सब कुछ करे, परन्तु भोजन नहीं करे, निराहार ही रहे। पूर्णिमा के दिन प्रथम दो दिनों के समान पूजन, हवन आदि करके रुद्राग्नि को शान्त करके, लोक-लाज न हो तो दिगम्बर होकर अन्यथा कषाय, चर्म, चीर आदि लपेट कर, मेखला और दण्ड धारण करके तथा दो बार पाद प्रक्षालन और दो ही बार आचमन करके अथर्वणवेद के अग्निरीति, मन्त्रों को पढते हुए आपातमस्तक शरीर पर भस्म लगावे, मस्तक पर त्रिपुण्ड और ओंकार सहित शिव का उच्चारण करे। तीन कालों—प्रातः, मध्याह्न एवं सायं—में आचार्य द्वारा निर्दिष्ट विधि से कमलकली में स्फटिक के पंचमुख वाले शिवलिंग की स्थापना करके षोडशोपचार से उनकी

पूजा करे और सुगन्धित जल से अभिषेक कराए। प्रथम आवरण में गणेश, कार्त्तिकेय और ब्रह्मा आदि का, द्वितीय आवरण में विघ्नेश्वर का, तृतीय आवरण में शिव की अष्टमूर्तियों का, चतुर्थ आवरण में गणेश, महादेव आदि एकादश मूर्त्तियों का, पंचम आवरण में दिक्पालों, नक्षत्रों, देवी-देवताओं तथा समस्त ऋषि-मुनियों का यथोचित पूजन करे। रात्रि में भूशयन करे और अपवित्र वस्तुओं से पृथक् रहे।

इस अनुष्ठान से जीव सहज में ही शिवत्व प्राप्त कर लेता है। विद्वान् ब्राह्मण तो केवल भस्म धारण करने से ही दारुण पापों से मुक्त हो जाता है। भस्म रुद्राग्नि का परम वीर्य है और यह विभूति, ऐश्वर्यदायक तथा परमरक्षक है। भस्म से स्नान करने वाला व्रती साक्षात् महेश्वर हो जाता है। यह भस्म परमेश्वरी और शैवों का परम-अस्त्र है। इसी से तपस्वी उपमन्यु की आपत्ति का निवारण हुआ है। यह आख्यान निम्नोक्त रूप से है :—

मुनिवर व्याघ्रपाद के पुत्र पूर्वजन्म के सिद्ध थे। किसी अज्ञात कारण से ही वे मुनिकुमार हुए। उन्होंने एक वार अपनी माँ से गाय का दूध पीने के लिए माँगा तो दरिद्र गृहिणी ने वालक को वहलाने के लिए अनाज के घोल का कृत्रिम दूध उसे लाकर दिया। घूंट भरते ही वालक ने माँ से पेय पदार्थ के दूध न होने का उपालम्भ किया। माँ ने प्यार भरे शब्दों में वालक को समझाते हुए कहा कि शिव की कृपा के विना उन्हें दूध की प्राप्ति नहीं हो सकती। मामा के घर पिए थोड़े से दूध का स्वाद यदि तुम्हें चंचल वना रहा है तो साम्ब शिवजी को प्रसन्न करके अभीष्ट लाभ करो। पञ्चाक्षर मन्त्र का जाप शिवजी को प्रसन्न करने का सहज और अमोघ साधन है। मैं तुम्हें विरजाग्नि से उत्पन्न भस्म देती हूँ। वड़ी से वड़ी आपत्तियों की भी निवारक इस भस्म को शरीर पर धारण करके साधना करने से तुम्हें निश्चित ही सिद्धि मिलेगी। वालक प्रातःकाल होते ही शिवजी के आराधन के लिए घर से चले जाने का निश्चय करके भूखा ही सो गया। अर्धरात्रि में जागने पर उसने देखा कि द्वार पर स्थित शिवजी दुग्धपात्र हाथ में लिए उसे बुला रहे हैं। वालक उठकर द्वार पर पहुँचा परन्तु उसे कुछ दिखाई न दिया। शिवजी को वाहर गया समझ कर वह उनके पीछे वाहर निकल गया। कुछ दूर चलने पर उसे एक शिवमन्दिर दिखाई दिया और शिवजी को इस मन्दिर में

छिपा समझ कर वह भीतर प्रविष्ट हुआ। शिवलिंग से लिपट कर उपमन्यु पञ्चाक्षर मन्त्र का जाप करने लगा। इतने में मन्दिर में आया एक पिशाच उसे उठाकर पर्वत की गुफा के निकट ले गया। ज्यों ही पिशाच भूखे-प्यासे बालक उपमन्यु को अपने मुख में डालने को उद्यत हुआ त्यों ही शिवजी की माया से एक अजगर ने उसे डस कर मृत्यु के अंक में डाल दिया। बालक लुढ़कता हुआ नीचे आ गिरा परन्तु शिवजी की कृपा से उसे कोई चोट न आई। सचेत होने पर उपमन्यु ने पञ्चाक्षरी मन्त्र का जाप करना प्रारम्भ कर दिया। उसका कण्ठ सूख गया और तन जीर्ण-शीर्ण हो गया। गले से आवाज निकलनी वन्द हो गई परन्तु उसकी जिह्वा अब भी शिवमन्त्र का उच्चारण कर रही थी। उसके तप की ऊष्मा से व्याकुल होकर देवगण शिवजी के पास आए और शिवजी ने उन्हें आश्वस्त करके लौटा दिया।

इन्द्र का रूप धारण कर शिवजी उपमन्यु के समक्ष प्रकट हुए और उससे वर माँगने को कहने लगे। उपमन्यु ने जब उनसे शिवभक्ति का वर माँगा तो इन्द्र वेशधारी शिव ने उसकी परीक्षा लेने के लिए उससे कहा—शिव की चर्चा छोड़कर मुझ देवाधिपति से ही अभीष्ट प्राप्त करो। शिवनिन्दा सुनकर बालक उपमन्यु क्षुब्ध हो उठा और उसने भस्म अभिमन्त्रित करके इन्द्र पर फेंक दी। उपमन्यु के इस अघोरास्त्र को नन्दी ने धारण किया और शिवजी ने अपने में उपमन्यु की सत्यनिष्ठा देखते हुए उसे अपने स्वरूप के दर्शन कराए।

शंकर भगवान् ने उपमन्यु को अमर बनाते हुए उसे क्षीरसागर प्रदान किया। इसके उपरान्त आशुतोष भगवान् शिव ने उपमन्यु से वर माँगने को कहा तो उसने स्तुति करने के उपरान्त निश्चल भक्ति का वर माँगा, जिसे तथास्तु कहकर शिवजी ने प्रदान किया। इन्हीं उपमन्यु ने पाशुपत व्रत का ज्ञान देवकीपुत्र श्रीकृष्ण को दिया, जिससे उन्हें शिवजी से पुत्र-प्राप्ति हुई।

वायवीय संहिता

(उत्तरार्द्ध)

ऋषियों की उत्सुकता पर उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को प्रदत्त पाशुपत व्रत ज्ञान की विस्तृत चर्चा करते हुए वायुदेव बोले—श्रीकृष्ण पुत्र-प्राप्ति के लिए जब मुनियों के आश्रम में गए तो वहाँ उन्हें सम्पूर्ण अंगों में भस्म और मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाए, गले में रुद्राक्ष और सिर पर जटाजूट धारण किए उपमन्यु के दर्शन हुए। कृष्ण जी की प्रार्थना पर उपमन्यु ने उनकी देह में भस्म का लेप किया और बारह मास पर्यन्त पाशुपत व्रत कराकर उन्हें उत्तम ज्ञान प्रदान किया। उपमन्यु को गुरु मानकर श्री कृष्ण ने उनके द्वारा निर्दिष्ट विधि से तप किया। जिससे प्रसन्न होकर पार्वती सहित शिवजी प्रकट हुए। कृष्ण ने प्रणाम कर स्तुति की और शिवजी ने उन्हें पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया। इसी वरदान के प्रभाव से कृष्ण की पत्नी जामवन्ती से साम्ब नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

ऋषियों ने वायुदेव से कृष्ण और उपमन्यु के मध्य हुए संवाद को सविस्तार सुनाने की प्रार्थना की। वायुदेव बोले कि श्रीकृष्ण ने उपमन्यु से पशु, पाश, बन्धन, मोक्ष और पशुपति आदि का तत्त्व समझाने का निवेदन किया। इस पर उपमन्यु ने कहा—ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी प्राणी महादेव जी के पशु कहलाते हैं, उनके स्वामी होने से महादेव जी पशुपति कहलाते हैं। वे मल, माया आदि पाशों से पशुओं को बाँधते हैं तथा भक्ति से उपासना करने पर पाश से मुक्त करते हैं। माया के गुण, कर्म आदि चौबीस तत्त्व हैं। ये ही विषय हैं, जिनसे जीव बंधा है। महेश्वर शिवजी ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त पशुओं को पाशबद्ध कर अपना कार्य कराते हैं।

महेश्वर शिव की आज्ञा से ही आकाश सर्वव्यापक है। उन्हीं की आज्ञा से वायु प्राणादि नामों से जगत् का भीतर-बाहर पोषण करता है, जल जगत् को जीवन देता है और पृथ्वी जगत् को धारण करती है। शिवजी ही देवों का पालन और दैत्यों का संहार करते हैं। उनकी आज्ञा से इन्द्र त्रिलोकी की रक्षा और वरुण जलों का आधिपत्य करता है। संसार की सभी क्रियाएँ शंकर जी की ही आज्ञा से प्रवर्तित होती हैं। जीव की संगति का उपाय सर्वेश्वर शंकर का आराधन ही है।

इस सारे जगत् में परमात्मा शिव की मूर्त्ति व्याप्त है। शिवजी ही अपनी मूर्त्तियों से सर्वत्र व्याप्त हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान और सदाशिव इन पाँच मूर्त्तियों से यह विश्व व्याप्त है। उनकी अन्य पाँच मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैं—ईशान, पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात। इनमें क्षेत्रज्ञ कहलाने वाली ईशानमूर्त्ति सर्वप्रधान है। यह श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की अधिष्ठात्री है। मूर्त्तिवान् स्थाणु की मूर्त्ति पुरुष कहलाती है और वह तत्त्व, हाथ, स्पर्श तथा वायु की अधिष्ठात्री है। अघोर मूर्त्ति तत्त्व का आश्रय लेकर रहती है और वह चक्षु, चरण रूप तथा अग्नि की अधिष्ठात्री है। वामदेव मूर्त्ति ओंकारतत्त्व का आश्रय लेकर रहती है और वह रसना, वायु, रस तथा जल की अधिष्ठात्री है। सद्योजात मन का आश्रय लिए है और वह घ्राण, उपस्थ, गन्ध तथा पृथ्वी की अधिष्ठात्री है।

शिवजी की जिन अष्ट मूर्त्तियों में—सूत्र में मणियों के समान—विश्व गुम्फित है, वे इस प्रकार से हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव और महेश। ये क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य, चन्द्रमा और चराचरात्मक विश्व को धारण करती हैं।

इस विश्व में महादेवी साक्षात् शक्ति और महादेव शक्तिमान् हैं। शक्तिमान् से क्रियाशक्ति के प्रकट होकर क्षुब्ध होने पर क्रमशः नाद, बिन्दु, सदाशिवदेव, महेश्वर, शुद्धविद्या शिव की वाणीशक्ति कहलाती है और वही वर्ण और स्वरूप से मातृका हैं। फिर उन्हीं अनन्त के समावेश से क्रमशः माया, काल, नियति, कला और राग और पुरुष उत्पन्न होते हैं। पुरुषों के साथ उनकी शक्तियाँ भी उत्पन्न होती हैं। यह सारा स्थावर जंगम जगत् शक्तिमय है। उस शक्ति के योग से शिव शक्तिमान् हैं। जिस प्रकार माता-पिता के बिना पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता, उसी प्रकार शिवा-शिव के बिना यह जगत्

उत्पन्न नहीं होता है। शिवा-शिव (स्त्री-पुरुष) होने से ही यह जगत् स्त्री-पुरुषात्मक है।

शिव महेश्वर और शिवा माया है। शिवा रस और शिवरसास्वादी हैं। शिवक्षेत्र, पृथ्वी, वेला तथा लतारूपिणी हैं और शिवजी क्षेत्रज्ञ, आकाश, समुद्र तथा वृक्ष रूप हैं। किं बहुना, इस विश्व के सभी पुल्लिग महेश्वर की और सभी स्त्रीलिंग महेश्वरी की विभूतियाँ हैं।

पाशबन्धन में बँधे होने के कारण जीव इस तथ्य को नहीं जानता कि यह चराचर विश्व महादेव जी का ही स्वरूप है। कल्प-प्रभाव को न जानने के कारण ऋषि-मुनि भी उन्हें अपरब्रह्म, परब्रह्म, अनादि महादेव तथा ब्रह्म आदि अनेक नाम देते हैं। कोई उन्हें परमकारण कहते हैं तो कोई क्षराक्षरातीत मानते हैं, परन्तु कविजन उन्हें अन्तर्यामी, प्राज्ञ तथा विश्वात्मा रूप में मानते हैं। अनेक ऋषि अनेक प्रकार के विरोधाभासों से उनका वर्णन करते हैं। कोई उन्हें कर्त्ता, क्रिया, कार्य, कारण, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत, विगुण, गुणवान्, रागवान्, वीतराग, क्रियावान्, क्रियारहित, दृश्य, अदृश्य, वाच्य, अवाच्य आदि बतलाते हैं। अनेक प्रकार के विश्वासों के कारण मुनिजन भी उसका कुछ निश्चय नहीं कर पाते। वस्तुतः सर्वभाव से शिव का शरणागत ही अनायास परमतत्त्व शिव को जान लेता है। उस पुराण पुरुष शिव को जाने विना तो पाशबद्ध जीव चक्रनेमि के समान भ्रमता ही रहता है।

श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए उपमन्यु बोले— शिवजी प्रकृति, माया, बुद्धि, अहंकार, मन, चित्त, इन्द्रिय तथा तन्मात्राओं के बन्धन से परे हैं। वे वासना, भोग, कारण, कर्त्ता, आदि, अन्त, अन्तर, कर्म, करण, अकार्य, कार्य आदि से अतीत हैं। उनमें बन्धु, अबन्धु, नियन्ता, प्रेरक, पति, गुरु, माता, अधिक, समानकांक्षित, अकांक्षित, जन्म, मरण, विधि, निषेध, मुक्ति, बन्धन आदि कुछ भी नहीं। सभी कल्याणकारक रूप शिव की ही मूर्त्तियाँ हैं। सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित रहने वाले शिव को जानने वाला कभी मोहित नहीं होता।

सूर्य की कान्ति के समान उस परमात्मा की एकरूपा स्वाभाविक शक्ति विश्व में इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि अनेक रूपों में प्रकाशित होती है। प्रजा, श्रुति और स्मृतिस्वरूपा शिवाविद्या है और

श्री शंकर देव विद्यापति हैं। शक्तिमान् की शक्ति चराचर ब्रह्माण्ड को मोहित भी करती है और मुक्त भी। मुमुक्षु ब्रह्मवादी ऋषियों को शिवदर्शन से ही तत्त्वज्ञान हुआ था। शक्ति सहित शिव का हृदय में दर्शन ही शान्तिदायक है।

शक्ति और शक्तिमान् का नित्य और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मुक्तिलाभ के लिए ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति अधिक उपयोगी है। शिव की भक्ति से उनका प्रसाद मिलता है। प्रसाद से मुक्ति और मुक्ति से आनन्द प्राप्त होता है। भक्ति में भी सेवा को प्रमुखता प्राप्त है। सेवा प्रथम दो प्रकार की है—सांग और अनंग। पुनः यह सेवा तीन प्रकार की है—कायिक, वाचिक और मानसिक। मन में शिवजी का स्वरूपचिन्तन मानसी, वाणी द्वारा पञ्चाक्षरी मन्त्र का जाप वाचिकी और कर्मपूजा कायिकी कहलाती है। इस सेवा (त्रि-विधा) को शैव मत में धर्म कहा गया है क्योंकि इसे ही शिवजी ने पाँच प्रकार का धर्म कहा है :—तप, कर्म, जप, ज्ञान, ध्यान। चान्द्रायण आदि व्रतानुष्ठन तप, शिवलिंगपूजा कर्म, शिवनाम के उच्चारण का अभ्यास जप, शिवचिन्तन ध्यान और शैवशास्त्रों का अध्ययन ज्ञान है।

श्री कृष्ण बोले—भगवान्! आप अपने भक्तों के उद्धार के लिए महादेव जी द्वारा दिया गया वेद का सारूपी ज्ञान सुनाने की कृपा करें। उपमन्यु जी बोले—सिसृक्षा होने पर स्थाणु शिव स्वयं आविर्भूत हुए और उन्होंने ब्रह्मा को उत्पन्न करके उसे सृष्टि रचना का आदेश दिया। ब्रह्मा ने सृष्टि रचना करके वर्णाश्रम आदि की व्यवस्था की। फिर ब्रह्मा ने यज्ञ के लिए सोम को बनाया, सोम से स्वर्ग और स्वर्ग से विष्णु इन्द्रादि देवता हुए। भगवान् द्वारा ज्ञान का हरण किए जाने से वे उनसे पूछने लगे कि आप कौन हैं? रुद्र भगवान् ने अपना परिचय—मैं ही पुरातन पुरुष हूँ, मुझसे भिन्न कोई नहीं, मैं सबका नियन्ता हूँ, मेरे समान तथा मुझसे अधिक कोई नहीं—दिया और फिर अन्तर्धान हो गए। रुद्र भगवान् को लुप्त पाकर देवता घबरा गए और उनकी स्तुति करने लगे। उन पर प्रसन्न होकर पार्वती और गणों सहित शिवजी प्रकट हो गए। देवताओं ने स्तुतिवन्दना करने के उपरान्त उनसे यह बताने का अनुरोध किया कि आपकी पूजा की विधि क्या है और आपकी पूजा का अधिकार किसे है? इस पर शिवजी ने पार्वती की ओर देख कर देवताओं को अपना सर्वतो-

मय, सर्वगुणसम्पन्न, अष्टबाहु और चतुर्मुख स्वरूप दिखाया। उनके तेज से विस्मित देवताओं ने महादेव जी को सूर्य और महेश्वरी को चन्द्र समझ कर उन दोनों का आराधन किया। सूर्यमण्डल में स्थित भगवान् शिव देवताओं को शास्त्रों का सारतत्त्व समझाकर अन्तर्धान हो गए। उस शास्त्र से द्विजाति (तीनवर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को पूजा का अधिकार जान कर देवता स्वर्ग को चले गए। बहुत समय के उपरान्त उस शास्त्र के विरोहित हो जाने पर परमेश्वरी ने कह कर पुन: चन्द्रमौलि से उसे प्रकट कराया। इस शास्त्र को मैंने, अगस्त्य, और महर्षि दधीचि ने जाना। फिर हमसे ऋभु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, इन्द्र, धर्म, वसिष्ठ आदि कितने ही मुनियों ने क्रम से सुना। इसी परम्परा में व्यास जी का अवतार हुआ, जो योगाचार्य कहलाए।

श्री कृष्ण के अनुरोध पर उन्हें शिवा-शिव का संवाद सुनाते हुए महात्मा उपमन्यु कहते हैं कि एक समय महेश्वरी ने महेश्वर से पूछा —स्वामिन्! आप अल्पबुद्धि, अल्पशक्ति और अल्पभक्ति वाले जीवों पर किस प्रकार अनुरक्त होकर उनके वशीभूत हो जाते हैं? महेश बोले—देवि! मैं कर्म, जप, तप, समाधि तथा ज्ञानादि या धनी के वश में नहीं होता। मैं तो केवल श्रद्धा से ही वश में होता हूँ। वर्णाश्रमधर्म को पालन करने वाले की मुझ में श्रद्धा सहज रूप से हो जाती है। मेरी आज्ञा से ही ब्रह्मा ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था की है। इसका पालन श्रद्धा और उल्लंघन अश्रद्धा है। वर्णाश्रम धर्म का पालक मेरे बनाए मार्ग से मल-माया आदि पाशों से मुक्त होकर मेरे लोक में आकर मेरी समानता पाता है।

सनातन धर्म के चार पाद प्रसिद्ध हैं—ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग। पशुपति का तत्त्वबोध **ज्ञान**, छ: मार्ग द्वारा शुद्धि-विधि **क्रिया**, वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल मेरी अर्चना पूजा **चर्या** और मुझ में चित्त लगाकर अन्य वृत्तियों का निरोध **योग** कहलाता है। चित्तवृत्ति का निरोध बहुत ही उत्तम है परन्तु विषयी प्राणियों के लिए यह दुष्प्राप्य है। योग का आधार वैराग्य है। वैराग्य से ज्ञान और ज्ञान से ही योग होता है। योग-ज्ञान मुक्ति का अमोघ साधन है।

वाणी, मन तथा शरीर के भेद से मेरा भजन तीन प्रकार का है। इस भजन को ही तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान भेदों से पंचविध कहा गया है। मुझमें मन लगाना मानसिक भजन, वाणी द्वारा मेरे

नामों का उच्चारण वाचिक भजन और त्रिपुण्ड आदि चिह्न धारण करना कायिक भजन कहलाता है। केवल मेरी पूजा करना कर्म, मेरे लिए देह को सुखाना तप, ओंकार अथवा पंचाक्षर मन्त्र का उच्चारण जप, रुद्राध्याय का अध्ययन और मेरा रूपचिन्तन ध्यान, शास्त्रों के अर्थ का बोध ज्ञान कहलाता है। आभ्यन्तर शौच ही सच्चा शौच है और भजन से आन्तरिक शुचिता प्राप्त होती है। भाव के बिना भजन आत्मप्रतारणा है। निरपेक्ष भाव से मेरा भजन करने वाले और पुन: आवश्यकता पड़ने पर अपेक्षा रखने वाले भी मुझे प्रिय हैं।

पार्वती जी को वर्ण-धर्म बतलाते हुए शिवजी कहते हैं—क्षमा, शान्ति, सन्तोष, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य, ज्ञान, वैराग्य, भस्म-सेवन तथा निस्संगता ये दस ब्राह्मणों के लक्षण हैं। इन दस के अतिरिक्त दिन में भिक्षा और दिन में ही भोजन योगियों के लक्षण हैं। सब वर्णों की रक्षा, युद्ध में शत्रुवध, दुष्टों का दमन, सर्वत्र अविश्वास, केवल ऋतुकाल में स्त्री-संसर्ग तथा सेना-रक्षण क्षत्रियों के धर्म हैं। गोरक्षा, व्यापार तथा कृषि वैश्य के धर्म हैं। तीनों वर्णों की सेवा शूद्र धर्म है। गृहस्थ का धर्म अपनी धर्मपत्नी में ही गमन है। ब्रह्मचारी और यति का धर्म ब्रह्मचर्यपालन है। स्त्री का धर्म पतिसेवा है। पति की अनुमति मिलने पर ही मेरा पूजन करना उचित है। पतिसेवा को त्याग कर मेरा व्रत करने वाली स्त्री निश्चय ही नरकगामिनी होती है। व्रत, दान, तप, शौच, भूमि-शय्या, ब्रह्मचर्य, भस्म-लेप, जलस्नान, शान्ति, मौन, क्षमा, असज्जनों से पृथक् वास, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी विशेषत: एकादशी को व्रतोपवास तथा भगवद्भजन विधवाओं के धर्म हैं। हे पार्वती ! सब धर्मों का सार मेरा ध्यान और मेरे षडक्षर मन्त्र—ओं नम: शिवाय—का जाप करना है।

उपमन्यु श्रीकृष्ण से बोले—यह षडक्षर मन्त्र वेद का सार और मुक्ति का प्रदाता वाला है। सब विद्याओं के बीच तथा गहन सूक्ष्म अर्थ वाले इस मन्त्र का धीरे से उच्चारण करना चाहिए। 'ओम्' इस एकाक्षर में त्रिगुणातीत, सर्वज्ञ देवाधिदेव महादेव विद्यमान हैं। 'नमः शिवाय' मन्त्रमें ईशान आदि सूक्ष्म ब्रह्माण्ड रहते हैं। वाच्य-वाचक भेद से इस वाचक मन्त्र में वाच्य शिव सदैव विद्यमान रहते हैं। शिव ही संसार-सागर से उद्धर्ता एकमात्र देवता हैं। ज्ञान और विद्या के सभी ग्रन्थ इस षडक्षर मन्त्र के ही भाष्य हैं।

'नमः शिवाय' यह पञ्चाक्षरी विद्या कलियुगी जीवों का सहज

उद्धार करने वाली है। इस मन्त्र का जाप करने वाला निष्कलुष होकर संसार-सागर से तर जाता है—इस बात का आश्वासन ही नहीं अपितु प्रतिभूति स्वयं शिवजी ने दी है। प्रलय काल में वेद-शास्त्रादि इस पंचाक्षर मन्त्र में लीन हो जाते हैं। सृष्टि रचना के लिए ब्रह्मा को उत्पन्न करके उन्हें शक्ति देने के लिए शिव ने पंचानन होकर यही पाँच अक्षर कहे, जिसे ब्रह्मा ने पाँच मुखों से ग्रहण किया और इस मन्त्र की शक्ति से वे सृष्टि रचना में सक्षम हुए।

इस पञ्चाक्षर मन्त्र का मैं शिव ही देवता हूँ। वीजों में इस मन्त्र का वीज द्वितीय है। ऋषि वामदेव है और छन्द पंक्ति है। इस दिव्य मन्त्र के ग्रहण तथा जाप करने की विधि इस प्रकार से है—

आज्ञाहीन, क्रियाहीन, श्रद्धाहीन तथा दक्षिणाहीन जप सदा निष्फल होता है। अत: जप को सफल बनाने के लिए साधक को तत्त्ववेत्ता तथा जप करने वाले गुरु के पास जाकर उनका पूजन करना चाहिए तथा यथाशक्ति द्रव्यादि समर्पित कर उसे सन्तुष्ट करना चाहिए। सन्तुष्ट होने पर गुरु एक वर्ष तक शिष्य की परीक्षा करे और शिष्य के सर्वथा अहंकाररहित सिद्ध होने पर उसे दिव्य मन्त्र का ज्ञान देने की कृपा करे। इस प्रकार गुरु से आज्ञा पाकर शिष्य प्रतिदिन एक हजार आठ बार इस मन्त्र का जाप करे। पुरश्चरणपूर्वक नित्य जप करने वाला पुरुष अनुपम सिद्ध हो जाता है।

जप की पाँच विधियाँ हैं :—वाचिक, उपांशु, मानस, सगर्भ, ध्यान। वाचिक जप का एक गुणा, उपांशु जप का शतगुणा, मानस जप का सहस्र गुणा फल होता है। सगर्भ—मन्त्र के आदि और अन्त में ओम् उच्चारण करना—जप का लक्षगुणा और ध्यानसहित जप का सगर्भ से भी सहस्रगुणा फल होता है।

वशीकरण के लिए पूर्वाभिमुख, घात करने के लिए दक्षिणाभिमुख, धन प्राप्ति के लिए पश्चिमाभिमुख और शान्ति प्राप्त करने के लिए उत्तराभिमुख बैठकर इस मन्त्र का जप करना चाहिए। सदाचार परमधर्म है, आचारहीन पुरुष लोक में निन्दा का और परलोक में अधोगति का पात्र बनता है। अत: पुरुष को आचार की रक्षा करते हुए इस मन्त्र का जप करना चाहिए। इस महाबलशाली मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर और कुछ भी सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती। यद्यपि यह मन्त्र अमोघ है तथापि वशीकरण तथा शत्रुनाश आदि जैसे निम्न कार्यों के लिए इस परम-पवित्र मन्त्र का प्रयोग

अवाञ्छनीय है।

उपमन्यु बोले—हे कृष्ण ! छ: मार्ग की शुद्धि का नाम संस्कार है। ज्ञानप्रापक और पाशबन्धन से विमोचक संस्कार ही दीक्षा है। यह दीक्षा तीन प्रकार की है:—

(१) शाम्भवी :—गुरु के दर्शन, स्पर्श तथा सम्भाषण मात्र से पाशछेदिका।

(२) शाक्ती :—गुरु द्वारा योग मार्ग से शिष्य के देह में प्रविष्ट होकर ज्ञान प्रदायिका।

(३) कुण्डमण्डलपूर्वक वहिर्भाग से क्रियावती।

गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य की परीक्षा करके उसकी शक्ति के अनुसार ही उसे दीक्षा दे और ज्ञान-क्रिया द्वारा उसका शोधन करे। शिक्षणीय होने से शिष्य और गौरव से युक्त होने से गुरु, गुरु है। गुरु ही शिव है और शिव ही गुरु है। दोनों में भेद-दृष्टि अनर्थमूलक है। गुणवान्, तत्त्ववेत्ता तथा शिवभक्त गुरु स्वयं ही मुक्ति प्रदान कर सकता है। यदि एक वर्ष तक गुरु से कुछ प्राप्त न हो तो दूसरा गुरु कर ले परन्तु तब भी शिष्य प्रथम गुरु की अवज्ञा कदापि न करे। मोह से भी गुरु के विरुद्ध कहने वाला शिष्य रौरव नरक में पड़ता है। गुरु भी परीक्षा के उपरान्त खरे उतरे शिष्य को दीक्षा दे। स्त्रियों का शिव संस्कार कर्म में स्वयं अधिकार नहीं है। साधवा पति की आज्ञा, विधवा पुत्र की आज्ञा और कन्या पिता की आज्ञा मिलने पर ही पूजा करे।

शिवशास्त्रोक्त विधि से भूमि की परीक्षा करके शिष्य विधान से गुरु मण्डप की कल्पना करे। वेदी बना कर उसके मध्य में कुण्ड बनावे। फिर सिन्दूर, नीवार आदि के चूर्ण से गुरु के रूप में ईश्वर का आवाहन करे। हाथ दो हाथ का चौड़ा श्वेत अथवा रक्त वर्ण का कमल बना कर उसके अष्टदल की सविधि पूजा करे। इसके पश्चात् गुरु को द्रव्य समर्पण कर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करे। गुरु शिष्य को अपनी दाहिनी ओर कुशासन पर बिठा कर शिव का आराधन करावे। शिवालय में ले जाकर शिष्य से लिंग की पूजा कराए। नाड़ीसन्धान तथा प्राणायाम कराए। प्रायश्चित्त की पूर्णाहुति के पश्चात् मूलमन्त्र से दस आहुतियाँ दिलावे। शनै:-शनै: शिवमन्त्र का उच्चारण कराए और फिर शिष्य के निमित्त मंगलाचार करावे। शिवार्चन के बिना किसी भी स्थिति में शिष्य भोजन न करे—इसकी उसे शिक्षा देवे।

जब तक मोह दूर न हो तब तक शिष्य को गुरुनिष्ठ होकर देवपूजा करनी चाहिए। तत्पश्चात् स्वतन्त्र होकर गुरुनिर्दिष्ट विधि से ही पूजा, हवन, जप और ध्यान आदि करना उचित है।

योग्य शिष्य के बन्धनों की निवृत्ति के लिए गुरु उसकी षडध्वा—कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—शुद्धि करे। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और अतीत इन पाँचों को कलाध्वा, शिव-तत्त्व से लेकर भूमि पर्यन्त को तत्त्वाध्वा, आधार से लेकर उन्मना पर्यन्त को भुवनाध्वा, रुद्र रूप वर्ण को वर्णाध्वा, अगणित भेदों को पदाध्वा तथा सम्पूर्ण उपमन्त्रों को मन्त्राध्वा कहा गया है।

सर्वप्रथम मार्ग के स्वरूप को जानकर अध्व विशोधन करे। पूर्व दिशा में निर्मित कलशमण्डल से शिष्य सहित स्नान करके आचार्य मण्डल में जाकर शिवपूजन करे। सब दिशाओं में पाँच कलश स्थापित करके शिव की पाँच मूर्तियों की कल्पना करे। खीर बनाकर उससे 'ओम् हुं नमः शिवाय स्वाहा' इस मन्त्र से होम करे। इसके पश्चात् कुमारी कन्या के काते सूत को आमन्त्रित करके शिष्य की शिखा में बाँध दे। शिष्य बिना भोजन किए शिव का ध्यान करते हुए सो जाए।

प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर शिष्य गुरु की सेवा में उपस्थित होकर देवपूजा और होम करे। यदि शिष्य ने रात्रि में दुःस्वप्न देखा हो तो उसकी शान्ति के लिए गुरु उससे अतिरिक्त आहुतियाँ दिलाए। गुरु देवपूजन कराकर शिष्य को मन्त्रों से चैतन्य करे और उसकी शिखा काटकर गोबर में रखकर शिवाग्नि में डाल दे। आवरणसहित शिव पार्वती का पूजन करके उनका विसर्जन करे।

मन्त्रसाधन की विधि इस प्रकार है—मण्डल के मध्य शिवजी का पूजन, घट स्थापना तथा हवन करके गुरु खुले सिर वाले शिष्य को मण्डल में बिठाए। पुनः सौ आहुतियों से होम और पुष्प जल से अभिषेक करके शिष्य को शैवी विद्या से साधन का उपदेश दे, जिसे सुनकर शिष्य गुरु के सान्निध्य में ही मन्त्र का पुरश्चरण—मूलमन्त्र का साधन—करे और फिर यथाशक्ति दस-बीस लाख जाप करे।

योग्य शिष्य का अभिषेक गुरु इस प्रकार करे। उसे पंचकलाओं से परिपूर्ण करके शिवजी के लिए समर्पित करे, फिर पाँचों घंटों का पूजन करके मध्यवर्ती घट के जल से शिष्य का अभिषेक करे। फिर

महेश्वर को अलंकृत करके शिवमण्डप में देव की आराधना करके यज्ञ

करे। इस प्रकार शिष्य को समझा कर गुरुमण्डल से शिवजी को उठाकर शिवघट एवं अग्नि का पूजन करे। शिवशास्त्र के तत्त्वज्ञ शिवमन्त्र को दुर्लभ मानकर इस प्रकार से ही शक्ति संस्कार का प्रतिपादन करते हैं।

शिवशास्त्रोक्त नित्य नैमित्तिक कर्म इस प्रकार से हैं—प्रातःकाल उठते ही शिवाशिव का ध्यान करे और सूर्योदय पूर्व ही घर से वाहर जाकर शौच, दन्तधावन तथा स्नानादि करके शुद्ध वस्त्रों को धारण करे। पुनः शुद्ध और निर्मल स्थल पर बैठकर शिवजी की षोडषोपचार से पूजा करे। शरीर पर भस्म और मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण करे और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। अपने हाथ को चन्दनादि से चर्चित करके ध्यान के लिए हस्तशोधनपूर्वक न्यास करे।

अंगुष्ठ से कनिष्ठिकापर्यन्त स्थितिन्यास, दक्षिण अंगुष्ठ से वाम अंगुष्ठ तक उत्पत्तिन्यास और वाम अंगुष्ठ से दक्षिण अंगुष्ठपर्यन्त लयन्यास कहा जाता है। विन्दु सहित नकारादि वर्णों का तल और अनामिका में शिव का तथा दस दिशाओं में अस्त्र मन्त्र से अस्त्र का न्यास करे। पंचभूतों के स्वामियों के साथ निवृत्ति आदि पाँच कलाओं को हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रू मध्य और ब्रह्मरन्ध्र में धारण करे। ग्रन्थियों की शुद्धि के लिए पञ्चाक्षर मन्त्र का जाप करे। वायु को रोककर गुणसंख्या के अनुसार अस्त्र मुद्रा द्वारा भूतग्रन्थि को काट दे। ब्रह्मरन्ध्र से निकली प्राणवायु को सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्रेषित करके उसका अस्त्रतेज से जाप करे। वायु से देह सुखा करा कलाग्नि से उसका दहन करे, पुनः अमृत से प्लावित करके देह को यथास्थान स्थित करे और उसे भस्मि से अमृत स्नान करावे। ब्रह्मरन्ध्र से निर्गत तेज को शिवतेज समझ कर उसका हृदय में ध्यान करे और अमृत वर्षा से विद्यामय शरीर का सिञ्चन करे। पुनः करन्यास, देहन्यास तथा अंगन्यास करके अग्नि को कोणादि से लेकर क्रम से दिग्बन्ध करे।

तदनन्तर क्रमशः मातृका, ब्रह्म, प्रणव और हंस न्यासों का पूजन करे, उकार का सिर में, आकार का ललाट में, इ ई का नेत्र में, उ ऊ का श्रोत्रों में, ऋ ॠ का कपोलों, में, लृ ॡ का नासापुटों में, ए ऐ का ओष्ठों में, ओ औ का दन्त पंक्तियों में तथा अ का जिह्वा-तालु में न्यास करे। कवर्ग का सत्यहस्त की सन्धियों में, चवर्ग का वामहस्त की सन्धियों में, पवर्ग-टवर्ग का चरणों में, य फ का पसलियों में, न म का नाभि में, मकार का हृदय में, त्वचा से सात धातुओं में मकार

से सकार पर्यन्त वर्णों का, ह का हृदय के भीतर तथा क्ष का भृकुटि के मध्य न्यास करे। इसके उपरान्त क्रम से अघोर, वामदेव, प्रणव, हंसन्यास तथा पञ्चाक्षरीन्यास करे। इस प्रकार के ध्यान यज्ञ से आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पूजा-स्थान की पवित्रता के लिए सुवासित एवं पवित्र जल से प्रोक्षण करे। पात्रों को शुद्ध करके उनमें निर्मल जल भरे और उस जल में अक्षत, पुष्प तथा चन्दनादि डाले। तदनन्तर विनायक और नन्दीश्वर का पूजन करके शिवलिंग का पूजन करे। पञ्चगव्य से लिंग को स्नान कराकर चन्दनादि का लेप करे तथा सुन्दर वस्त्र, उपवीत तथा मुकुटादि आभूषण अर्पित करे। इसके पश्चात् नीराजन पात्र को उठाकर शिवलिंग के ऊपर तीन वार घुमावे। अन्त में शिवजी को प्रणाम करके भूल-चूक के लिए क्षमायाचना करे।

उपमन्यु जी बोले—हे कृष्ण ! शिवजी की पूजा से ब्रह्महत्यारा मद्यप, चोर, गुरुभार्यागामी जैसे महापापी भी पापमुक्त हो जाते हैं। वस्तुत: पापियों के उद्धार का तो एकमात्र आश्रय शिवपूजा ही है। सन्तों के लिए भी एकमात्र यही कल्याण का मार्ग है। दुर्लभ मनुष्य-देह पाकर शिवपूजन न करने वाला अजागलस्तनवत् है।

यज्ञ द्वारा शिवपूजा की विधि बताते हुए उपमन्यु कहते हैं कि कुण्डवेदी का निर्माण करके उसमें पीपल के पत्ते के समान योनि बनावे। गोबर-मृत्तिका से कुण्ड को लेप कर कुशा-पुष्पों से उसका प्रोक्षण करे। श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर से अग्नि लाकर योनिमार्ग से कुण्ड में स्थापित करे। दक्षिण पार्श्व में शिवमूर्त्ति का पूजन करके सात बीज मन्त्रों से हवन करे। घृत, सामग्री, उड़द, धान, जौ, सरसों तथा तिल आदि की आहुति दे। यज्ञ भगवान् का विसर्जन करके अग्नि की रक्षा करे। भस्म को ग्रहण करे और शिवशास्त्रानुसार बलिकर्म करे। अन्त में देव को निवेदन कर प्रसाद ग्रहण करे।

लोक-परलोक में शुभ फल देने वाली शिवजी की पूजा-विधि श्रीकृष्ण को बताते हुए उपमन्यु जी कहते हैं—श्रद्धालु भक्त श्वेत चन्दन के जल से शिवाशिव को स्नान कराकर श्वेत कमलों से पूजन और प्रणाम करे। रत्न, सुवर्ण आदि धातु से अंगुष्ठ प्रमाण का लिंग बनाकर कमल के दक्षिण भाग से उसे स्थापित करे और बेलपत्रों से उसका पूजन करे। लिंग के दक्षिण भाग में अगर, पश्चिम में मैनसिल,

उत्तर में चन्दन, पूर्व में हरताल के पुष्प लगावे। धूप-दीप, वस्त्र तथा

नैवेद्य अर्पण करके प्रदक्षिणा करे तथा स्तुति करके अपराध-क्षमापन कराए। इस प्रकार प्रतिदिन लिंगपूजा करने से इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण मिलता है।

श्रीकृष्ण के अनुरोध पर शिवाराधन की एक अन्य विधि—योग-साधन—उन्हें बताते हुए उपमन्यु जी कहते हैं :—

अन्तःकरण की सारी वृत्तियों को सभी विषयों से हटा कर महादेव में स्थिर करने के रूप में निश्चल भक्ति का नाम ही योग है। यह पाँच प्रकार का है :—मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग तथा महायोग। मन्त्रों के अभ्यास और वाच्यार्थ समझने से होने वाली मन की निश्चलता मन्त्रयोग है। मन्त्रसहित प्राणायाम द्वारा की जाने वाली मन की निश्चलता स्पर्शयोग है। मन्त्ररहित प्राणायाम द्वारा की जाने वाली मन की निश्चलता भावयोग है। सारे जगत् को विलीन कर विचार करने से प्राप्त मन की निश्चलता अभावयोग है और उपाधिरहित शिवस्वरूप के चिन्तन मनोवृत्ति की निश्चलता महायोग है।

दृढ़ तथा स्वर्गादि भोगों से विरक्त मन वाला साधक ही योग का अधिकारी है। विषयों में निरन्तर दोषदर्शन से विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। विरक्ति उत्पन्न होने पर प्राणायाम का अभ्यास अपेक्षित है। देहस्थित वायु का नाम प्राण है और उसकी गति को रोकना प्राणायाम है। वह रेचक, कुम्भक और पूरक तीन प्रकार का है। एक अंगुलि से नासापुट को दबा कर दूसरे पुट से वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक, लुहार की धौंकनी के समान वायु को भीतर भर लेने का नाम पूरक है और भीतर प्रविष्ट-वायु को न तो छोड़ें और न दूसरी वायु को आने दें, निश्चल कुम्भ के समान रहने से उसका नाम कुम्भक है। साधक को इन तीनों का अभ्यास करना चाहिये। जपध्यान सहित प्राणायाम सगर्भ और जपध्यान रहित अगर्भ कहलाता है। अगर्भ से सगर्भ अधिक फलदायक है। प्राणायाम से बढ़कर अन्य कोई योग नहीं।

आलस्य, व्याधि, संशय, अश्रद्धा, भ्रान्ति, दुःख, दौर्मनस्य आदि योग के विघ्न हैं। योगी प्रयत्न द्वारा इन विघ्नों को निकट आने से रोके। इन दोषों के शान्त होने पर सिद्धिसूचक छः— प्रतिमा, श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वादन और वेदना—उपसर्ग उत्पन्न होते हैं।

योग का प्रयोग उत्तम एवं सुरम्य स्थल में करना चाहिए और

प्राणायाम करते समय स्थूल शिवमूर्त्ति का ध्यान करना चाहिए और धीरे-धीरे मन को निर्विषय बनाना चाहिए। इस प्रकार के प्राणायाम से आपत्तिनाशरूपी शान्ति, अन्धकारनाशरूपी प्रशान्ति, प्रकाशप्राप्तिरूपी दीप्ति, बुद्धिस्वस्थतारूपी प्रसाद आदि सुलभ हो जाते हैं।

शिवजी के आराधन और प्रसादन का यह भी एक उत्तम साधन हैं।

महात्मा उपमन्यु द्वारा श्री कृष्ण को सुनाया तत्त्वज्ञान वायुदेव जी के मुख से सुनकर ऋषियों ने वायुदेव को प्रणाम करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उनकी अनुमति लेकर काशी को चल दिए। वहाँ पहुँच कर गंगा में स्नान कर सब ऋषियों ने श्रद्धासहित भगवान् विश्वनाथ शिवलिंग का पूजन किया। तब वहाँ ऋषियों ने आकाशमण्डल में एक दिव्य द्युतिमान् तेज देखा, जो उनके देखते ही देखते विलीन हो गया। उस तेज के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा लेकर ऋषिगण ब्रह्मा जी के पास गए तो ब्रह्मा जी ने उन्हें बताया कि आप लोगों के शिवपूजन पर प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने ही अपने तेजोरूप में आपको अपने दर्शन दिये हैं। आप लोगों का उद्धार होने वाला है। आप लोग पाशुपतव्रत धारण करो और शीघ्र ही सुमेरु पर्वत पर जाकर सनत्कुमार जी से तत्त्वज्ञान प्राप्त करो। वहाँ नन्दीश्वर पधारने वाले हैं, उनके दर्शनों से आपको अभीष्ट लाभ होगा।

ऋषि लोग ब्रह्मा जी के कथन पर सुमेरु पर्वत पर पहुँचे और सनत्कुमार जी के दर्शन कर कृतकृत्य हुए। इतने में वहाँ नन्दीश्वर पधार गए, सनत्कुमार ने उन्हें प्रणाम कर उनकी स्तुति की। सनत्कुमार जी के अनुरोध पर नन्दीश्वर ने उन सब ऋषियों को बन्धनमुक्त कर दिया और फिर वे सब शिवलोक को पहुँच कर शिवरूप हो गए।

सूत जी बोले—ऋषियो! शिवजी का परम रहस्यमय यह तत्त्वज्ञान नन्दीश्वर से सनत्कुमार ने और सनत्कुमार जी से हमारे गुरु व्यास जी ने सुना। व्यास जी से सुन कर मैंने आप लोगों को सुनाया है। ऋषियो! यह स्मरणीय है कि पुरुषार्थ चतुष्टय की सहज प्राप्ति कराने वाला यह 'शिव पुराण' नास्तिक तथा वेद-निन्दक को कभी नहीं सुनाना चाहिए। मैंने आप लोगों से स्नेह और शिवजी में आप की अटूट भक्ति के कारण ही यह दिव्य ज्ञान आप लोगों के समक्ष

प्रकाशित किया है। तत्पश्चात् ऋषियों को आशीर्वाद देकर सूत जी

काशी को चले गए और वहाँ विश्वनाथ का सतत पूजन करते हुए मुक्त हो गए।

आदरपूर्वक 'शिव पुराण' को पढ़ने-सुनने से पापक्षय, आयुः, बल की वृद्धि तथा यश का प्रसार होता है। 'शिव पुराण' शिवजी को अत्यन्त प्रिय है। शिवजी ही भुक्ति-मुक्ति के प्रदाता हैं और 'शिव पुराण' के द्वारा प्रसन्न होकर वे अपने भक्त को कृतकृत्य कर देते हैं। कलयुग में मोक्षप्राप्ति का इससे सुगम उपाय कोई नहीं।

□□

अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित

ज्योतिष सम्बन्धी अनुपम पुस्तकें

	पुस्तक	लेखक
१.	आइए, ज्तोतिष सीखें (खण्ड एक)	श्री गोविन्द शास्त्री
२.	आइए, ज्योतिष सीखें (खण्ड दो)	श्री गोविन्द शास्त्री
३.	आइए, ज्योतिष सीखें (खण्ड तीन)	श्री गोविन्द शास्त्री
४.	तन्त्र-विज्ञान	श्री गोविन्द शास्त्री
५.	यन्त्र-विज्ञान	श्री गोविन्द शास्त्री
६.	मन्त्र-विज्ञान	श्री गोविन्द शास्त्री
७.	ज्योतिष और रत्न	श्री गोविन्द शास्त्री
८.	भारतीय ज्योतिष	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
९.	कुण्डली-दर्पण	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१०.	ज्योतिष-योग-चन्द्रिका	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
११.	ज्योतिष-योग-दीपिका	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१२.	दशाफल-दर्पण	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१३.	फलित-ज्योतिष	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१४.	वर्षफल-दर्पण	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१५.	जन्मपत्री-रचना	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१६.	अंक-ज्योतिष	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१७.	अंक-दीपिका	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१८.	हस्ताक्षर-विज्ञान	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१९.	हस्तरेखा-विज्ञान	डॉ० सुरेशचन्द्र गौड़
२०.	मुखाकृति-विज्ञान	श्री गोचर शर्मा
२१.	ज्योतिष-विज्ञान	डॉ० हरिकृष्ण छंगाणी

प्रत्येक का मूल्य चार रुपया

पाँच पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक-व्यय माफ

प्रकाशक
अनुपम पॉकेट बुक्स

कमला नगर, दिल्ली-११०००७

श्री शिव पुराण

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में शिव पुराण को सब पुराणों का सिर-मौर माना जाता है। यह वह अमृतरूपी पुराण है, जो कल्पवृक्ष के समान मानव के सभी मनोरथों को पूर्ण कर देता है। यह वेदान्त और विज्ञान से परिपूर्ण एक अनुपम ग्रन्थ है, जो जीव में शिवोऽहम् की भावना को जगाकर उसे शिव बनाने में सहायता प्रदान करता है। यह लीजिये, इस अमूल्य ग्रन्थरत्न का सर्वप्रथम प्रामाणिक संस्करण, जिसे दिल्ली विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध भाषाविद एवं शिक्षाशास्त्री डाक्टर रामचन्द्र वर्मा ने अपनी पूर्ण धार्मिक आस्था, श्रद्धा एवं आस्तिक भावना के साथ, अत्यन्त विनीत भाव से धार्मिक जनता को समर्पित किया है।

अनुपम पा